प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

और है कोई लेनेहारा

ध्यानी नहीं शिव सारसा, ग्यानी सा गोरख।
ररै रमै सूं निसतिरयां, कोड़ अठासी रिख।।

हंसा तो मोती चुगैं, बगुला गार तलाई।
हरिजन हरिसूं यूं मिल्या, ज्यूं जल में रस भाई।।

जुरा मरण जग जलम पुनि, अै जुंग दुख घणाई।
चरण सरेवां राजरा, राख लेव शरणाई।।

क्यूं पकड़ो हो डालियां, नहचै पकड़ो पेड़।
गउवां सेती निसतिरो, के तारैली भेड़।।

साधां में अधवेसरा, ज्यूं घासां में लांप।
चल बिन जौड़े क्यूं बड़ो, पगां बिलूमै कांप।।

हुलकाझीणा पातला, जमीं सूं चौड़ा।
जोगी ऊंचा आभ सूं, राई सूं ल्होड़ा।।

होफां ल्यो हरनांव की, अमीं अमल का दौर।
साफी कर गुरु-ज्ञान की, पियोज आठूं प्होर।।

कहीं से आग मिले
इस बरफीली जगह में
कहीं से आंच मिले
इस ठंडे शहर में
कहीं से राग उठे
इस वीराने में
कहींशहनाई बजे
इस मनहूस मरघटी जमाने में

कहीं आम का पेड़ बौराए

सुनसान को तोड़े कोयल
हवा तेज और तेज चले
गले लगे शरमाए
दोपहरी भन्नाती है
धूप गरम और-और गरमाती है

मैं रुकी हूं
अभी भी...
किसीशाम के लिए
ये वक्त ठहरे, ठहर जाए
किसी लिए गए नाम के लिए
कहीं से आग मिले
इस बरफीली जगह में
कहीं से आंच मिले
इस ठंडे शहर में
कहीं से राग उठे
इस वीराने में
कहींशहनाई बजे
इस मनहूस मरघटी जमाने में

शहनाई तो सदा बजती रही है--सुनने वाले चाहिए। और इस भरी दुपहरी में भी शीतल छाया के वृक्ष हैं--खोजी चाहिए। इस उत्तप्त नगर में भी शीतल छांव है, पर शीतल छांव में शरणागत होने की क्षमता चाहिए। शीतल छांव मुफ्त नहीं मिलती। शहनाई बजती रहती है, लेकिन जब तक तुम्हारे पास सुनने का हृदय न हो, सुनाई नहीं पड़ती।

कृष्ण के होंठों से बांसुरी कभी उतरी ही नहीं है। बांसुरी बजती ही जाती है। बांसुरी सनातन है। कभी कोई सुन लेता है तो जग जाता है; जग जाता है तो जी जाता है। जो नहीं सुन पाते, रोते ही रोते मर जाते हैं। जीते ही नहीं, बिना जीए मर जाते हैं।

श्री लालनाथ के जीवन में बड़ी अनूठी घटना से शहनाई बजी। संतों के जीवन बड़े रहस्य में शुरू होते हैं। जैसे दूर हिमालय से गंगोत्री से गंगा बहती है! छिपी है घाटियों में, पहाड़ों में, शिखरों में। वैसे ही संतों के जीवन की गंगा भी, बड़ी रहस्यपूर्ण गंगोत्रियों से शुरू होती है। आकस्मिक, अकस्मात, अचानक--जैसे अंधेरे में दीया जले, कि तत्क्षण रोशनी हो जाए! धीमी-धीमी नहीं होती संतों के जीवन की यात्रा शुरू। शनैः शनैः नहीं। संत छलांग लेते हैं।

जो छलांग लेते हैं वही जान पाते हैं। जो इंच-इंच सम्हल कर चलते हैं, उनके सम्हलने में ही डूब जाते हैं। मंजिल उन्हें कभी मिलती नहीं। मंजिल दीवानों के लिए है। मंजिल के हकदार दीवाने हैं। मंजिल के दावेदार दीवाने हैं।

"लाल" दीवानों में दीवाने हैं। उनके जीवन की यात्रा, उनके संतत्व की गंगा बड़े अनूठे ढंग से शुरू हुई। और तो कुछ दूसरा परिचय न है, न देने की कोई जरूरत है; हो तो भी देने की कोई जरूरत नहीं है। कहां पैदा हुए, किस गांव में, किस ठांव में, किस घर-द्वार में, किन मां-बाप से--वे सब बातें गौण हैं और व्यर्थ हैं। संतत्व कैसे पैदा हुआ, बुद्धत्व कैसे पैदा हुआ? राजस्थान में जन्मे इस गरीब युवक के जीवन में अचानक दीया कैसे जला; अमावस कैसे एक दिन पूर्णिमा हो गई--बस वही परिचय है। वही असली परिचय है। न तो संत की जात पूछना, न पांत पूछना। पूछना ही मत व्यर्थ की बातें। पता-ठिकाना मत पूछना। उसका पता तो एक है--राम। उसका ठिकाना तो एक है--राम। उसका जन्म भी वही, उसकी मृत्यु भी वही। उसके जीवन का सारा उदघोष वही है।

लेकिन संतत्व की किरण कैसे उतरी, पहली किरण कैसे उतरी? फिर सूरज तो चला आता है। किरण के पीछे-पीछे चला आता है। मगर पहली किरण का उतरना जरूर समझने योग्य है। क्योंकि उसी पहली किरण की तुम तलाश में हो।

और तुम्हारे पास से भी कहीं ऐसा न हो कि किरण आए और गुजर जाए और तुम पकड़ भी न पाओ; किरण आए और नाचती गुजर जाए और तुम्हें उसके पगों में बंधे घूंघर सुनाई न पड़ें; किरण आए और शहनाई बजाए और तुम बहरे रहे आओ; किरण आए और तुम आंख बंद किए बैठे रहो!

... और किरण सदा अकस्मात आती है, अनायास आती है। किरण हमेशा अतिथि है, बिना तिथि बताए आती है। न कोई खबर देती है, न कोई पूर्व-आगमन की सूचना देती है। कब द्वार पर दस्तक दे देगा परमात्मा, कोई भी नहीं जानता। उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। सिर्फ इस जगत में एक चीज की भविष्यवाणी नहीं हो सकती, वह है परमात्मा और तुम्हारा मिलन। और सब तो कार्य-कारण में बंधा है, इसलिए उसकी भविष्यवाणी हो सकती है। सिर्फ परमात्मा प्रसाद है, कार्य-कारण के पार है; इसलिए उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती।

किसी ने सोचा भी न होगा कि लाल के जीवन में ऐसे परमात्मा का पदार्पण होगा। लाल गौना करा कर घर लौटते थे। संगी-साथी, बैंडबाजे, रंग-रौनक, उत्सव की घड़ी थी। रास्ते में लिखमादेसर गांव पड़ा। वहां पर एक अनूठे संत थे, कुंभदास। परमहंस थे! मस्तमौला थे! न कोई धर्म की चिंता, न कोई पंथ की, न कोई परंपरा की। धार्मिक थे, मगर किसी धर्म से बंधे हुए न थे। लुटाते थे दोनों हाथ, जो दिया था परमात्मा ने। और जो लुटाता है, उसे परमात्मा और-और दिए जाता है। यह संपदा ऐसी है कि चुकती नहीं। रोको तो नष्ट हो जाती है। लुटाते रहो, तो बढ़ती चली जाती है।

लौटते थे गौना करा कर, रास्ते में गांव पड़ा। सोचा कि दर्शन करते चलें। ऐसे संत के गांव से गुजर रहे हैं, जिसकी सुगंध दूर-दूर तक पहुंचने लगी थी। और निश्चित उस सुगंध के साथ लपटें भी थीं। यह सुगंध फूलों की सुगंध नहीं है--लपटों की सुगंध है, ज्वाला की सुगंध है! संतत्व के साथ ही साथ क्रांति की आग भी जलती है। दूर-दूर तक कुंभनाथ की सुवास भी पहुंच रही थी। जो सुवास पहचान सकते थे, उन्हें सुवास मिल रही थी। जो सुवास नहीं पहचान सकते थे, परंपरा से बंधे हुए रूढ़िग्रस्त लोग थे, उन्हें बेचैनी हो रही थी। उनके पास आग पहुंच रही थी। सोचा, दर्शन करते चलें। और ऐसे संत का आशीर्वाद ले लेना उचित है। जीवन का प्रारंभ हो रहा है, विवाह हो रहा है, नई दुनिया में प्रवेश हो रहा है, कौन न संत का आशीष लेने चला जाए। पता नहीं था क्या आशीष मिलेगा।

जब तुम संत के पास जाते हो तो अपने हिसाब से जाते हो। अपनी आकांक्षा, अपनी अभिलाषा... । लेकिन संत जब आशीष देता है तो तुम्हारी अभिलाषाओं के हिसाब से नहीं देता, न तुम्हारी आकांक्षाओं की पूर्ति करता है। संत तो वही देता है जो दे सकता है। कूड़ा-करकट नहीं देता, हीरे देता है। कंकड़-पत्थर नहीं देता, जवाहरात देता है।

लाल को अब तक अपने "लाल" होने का पता ही कहां था! अब तक अपने भीतर के हीरे की कोई पहचान न थी। किसी ने चौंकाया भी न था, किसी ने जगाया भी न था, किसी ने पुकारा भी न था, चुनौती भी न दी थी। सोए-सोए जिंदगी गई थी, और अब यह सोने का एक और बड़ा आयोजन हुआ जा रहा था। नींद की पूरी व्यवस्था हुई जा रही थी। मूर्च्छा, जिंदगी की आपाधापी अब पूरी तरह पकड़ने को थी। गए थे आशीष लेने, स्वाभाविक--विवाह हो रहा है, नये जीवन का प्रारंभ है; इससे शुभ क्या होगा और कि किसी संत के आशीष की छाया मिले!

लेकिन वहां गए तो कुछ और ही हाल पाया। कुंभनाथ जीवित समाधि लेने की तैयारी कर रहे थे। गड्ढा खोदा जा चुका था। बस प्रवेश की तैयारी थी। अंतिम विदा-वेला... उन्होंने प्रसाद बांटा। सबको प्रसाद बांट चुके। लाल को भी प्रसाद मिला। और फिर समाधि में उतरने के पहले, बड़ी अनूठी बात कुंभनाथ ने कही। जोर से पुकारा, चारों तरफ देखा और जोर से पुकारा और कहा--"और है कोई लेनेहारा?"

प्रसाद तो बांट चुके थे। सभी ने ले लिया था। लाल भी ले चुके थे प्रसाद। अब यह किसी और ही प्रसाद की बात थी जो दिखाई नहीं पड़ता। जो लेने-देने में नहीं आता; जो हस्तांतरित नहीं होता। मगर फिर भी छलांगें लेता है, एक हृदय से दूसरे हृदय में उतर जाता है। हाथोंहाथ तो नहीं जाता, आत्माओं से आत्माओं में जाता है। खड़े होकर उस गड्ढे पर, जिसमें जल्दी ही वे डुब जाने को हैं सदा को, उस मिट्टी में जिसमें मिल जाने को हैं--पुकारा जोर सेः "और है कोई लेनेहारा?" लोग तो इधर-उधर देखने लगे। सबको प्रसाद मिल चुका था। कोई बचा भी न था। और प्रसाद भी न बचा था। न तो कोई लेने वाला बचा था। न प्रसाद बचा था। यह किस प्रसाद की बात हो रही है?

हो गए होंगे विक्षिप्त, सोचा होगा लोगों ने। होंगे ही विक्षिप्त, नहीं तो कोई जीवित समाधि लेता है? आदमी जीने के लिए कितने आयोजन करता है! मरता रहे तो भी जीता है। सड़ता रहे तो भी जीता है। कीड़े पड़ जाएं शरीर में तो भी जीता है। कैंसर पकड़े, क्षयरोग हो, अंधा हो, लूला हो, लंगड़ा हो, कोढ़ी हो, नालियों में पड़ा रहे--तो भी जीता है, तो भी जीना चाहता है, ऐसी जीवेषणा है! यह होगा ही आदमी विक्षिप्त। अपने हाथ से अपनी कब्र खोदी है, अपनी कब्र में समाने को जा रहा है। जरूर अब इसका मस्तिष्क बिल्कुल खराब हो गया है।

प्रसाद बंट चुका, सभी को प्रसाद मिल चुका। न प्रसाद है पास, न कोई लेने वाला है और अब। और तब यह आदमी चिल्ला रहा है कि "और है कोई लेनेहारा!"

लोग तो एक-दूसरे की तरफ देखने लगे, लेकिन लाल पहुंच गए। हाथ भिखारी की तरह फैला कर बैठ गए सामने। आंखों से आंसुओं की धार... । कुछ घटा! कुछ वैसा घटा, जैसा बुद्ध और महाकाश्यप के बीच घटा था, कि बुद्ध लेकर फूल आए थे सुबह और बैठ गए थे फूल को देखते, देखते, देखते, देखते... । लोग थक गए। लोग प्रवचन सुनने आए थे। और ऐसा बुद्ध ने कभी भी न किया था कि हाथ में फूल लेकर बैठ गए और उसी को देखते रहे और लोगों को भूल ही गए। खैर दो-चार मिनट बीते तो ठीक था, घड़ी बीतने लगी, घंटा बीतने लगा। लोग

बेचैन होने लगे, उद्विग्न होने लगे। यह कब तक चलेगी बात? यह समय बहुत लंबा मालूम होने लगा। यह बुद्ध को आज क्या हो गया है!

और तब महाकाश्यप हंसा था। जोर से हंसा था। खिलखिला कर हंसा था। और बुद्ध ने आंखें उठाई थीं और महाकाश्यप को कहा था कि आ, मेरे पास आ। तेरी मुझे तलाश थी। जिसकी मुझे तलाश थी, वह मिल गया। यह फूल ले। जो मैं शब्दों से दे सकता था वह मैंने दूसरों को दे दिया है; जोशब्दों से नहीं दिया जा सकता वह मैं तुझे देता हूं।

जैसा महाकाश्यप और बुद्ध के बीच कुछ घटा था... जो देखने वालों को दिखाई नहीं पड़ा था कि क्या बुद्ध ने दिया, क्या महाकाश्यप ने लिया? सदियां बीत गई हैं अब, पच्चीस सौ वर्ष बीत गए हैं, बुद्ध को प्रेम करने वाले अब भी पूछते हैं, अब भी विचार करते हैं कि कौन सा हस्तांतरण हुआ था? फूल दिया था, वह तो दिखाई पड़ा था। मगर बुद्ध ने कहाः जो मैं नहीं दे सकता शब्दों से, वह तुझे देता हूं। वह क्या है? शब्दों के पार, शास्त्रों के पार, न कहा जा सके जो, अनिर्वचनीय है जो, अव्याख्य है जो--वह क्या है? बुद्ध ने क्या दिया था महाकाश्यप को?

लेकिन कम से कम बुद्ध ने फूल तो दिया था। कुंभनाथ और लाल के बीच तो फूल भी नहीं दिया-लिया गया। कुछ दिया ही लिया नहीं गया। लेकिन प्रसाद बरसा। शहनाई बजी। धूप खो गई, प्राण शीतल हुए। संगीत जन्मा। लाल तो रूपांतरित हो गए--उस झुकने में ही रूपांतरित हो गए। लाल को पहली दफा अपने भीतर का लाल दिखाई पड़ा। पहली बार अपने भीतर के खजाने का अनुभव हुआ। जैसे इस सत पुरुष की मौजूदगी में, इसकी रोशनी में अंधेरा टूटा, अपनी पहचान हुई, आत्म-परिचय हुआ! झुक गए चरणों में। मरते-मरते कुंभनाथ एक दीया जला गए, एक ज्योति जला गए--एक मशाल! जाते-जाते पूछते हैंः "और है कोई लेनेहारा?" मिल गया एक लेनेहारा। थे बहुत लोग। सैकड़ों लोग मौजूद थे। मगर एक ने पुकार सुनी। एक ने हाथ फैलाए। एक ने झोली फैलाई। एक झुकने को राजी हुआ। तो जोझुका, वह भर गया। एक मिटने को राजी हुआ; तो जो मिटा, वह जनम गया।

लाल की जिंदगी बदल गई। या यूं कहो, लाल का पहली दफा जन्म हुआ, जिंदगी मिली। अब तक जैसे एक नींद थी; नींद भी क्या--एक दुःस्वप्न! फूल खिले। कोयल बोली। अमावस मिटी, पूर्णिमा आई। अमृत बरसा। मृत्यु गई। गया वह सब, जिसे कल तक महत्वपूर्ण समझा था। और कल तक जिसकी खोज ही खबर न ली थी, उस तरफ आंख गई। उसकी पहचान हुई। अमृत से संबंध जुड़ा। एकदम जैसे भभक उठे। ज्योतिर्मय हो गए! हजारों लोगों ने यह चमत्कार देखा था। जब उठे तो दूसरा ही व्यक्ति था; जब हाथ फैलाने बैठे थे तो कोई और ही व्यक्ति था। जो बैठा था, एक साधारण सा युवक था, जो अभी विवाह करवा कर लौट रहा है। संगी-साथी हैं, बैंडबाजा है, बारात है... । जब उठे तो उन आंखों में कोई गहराई थी, जिसे मापने का कोई उपाय नहीं। उस चेहरे पर कुछ आभा थी, जो इस लोक की नहीं है।

मित्रों को तो बहुत हैरानी हुई। ईर्ष्या भी हुई होगी। चोट भी लगी। मित्रों ने ताने भी कसे। मित्रों ने कहा कि तब फिर विवाह ही क्यों किया? जब यही करना था, तो दो दिन पहले कर लेते। जब संन्यस्त होना था, तो दो दिन पहले हो लेते। जब यह गैरिक रंग में रंगना था, तो दो दिन पहले क्या बिगड़ा था? विवाह क्यों किया?

जवाब थाः "बेहड़ा लिखिया न टलै दीया अंट बुलाय।" लाल ने कहाः विधाता ने जो लिख दिया था, वह कैसे टल सकता था? फेरे लिखना हो चुका था, सो फेरे हुए। फेरे बदे थे, सो फेरे हुए। जो होना था सो हुआ। यह भी होना था। फेरों के बाद ही होना था, सो बाद में हुआ!

लेकिन जब वास्तविक क्रांति घटती है तो उसके दूरगामी परिणाम होते हैं। नववधू लाल में हुए रूपांतरण को देख कर स्वयं भी रूपांतरित हो गई। लाल भी डूब गए ध्यान में, नई-नई विवाहित युवती भी डूब गई ध्यान में। भूल गए दोनों संसार। गुरु जाते-जाते एक अपूर्व व्यक्ति को जन्म दे गए।

लाल के वचन सीधे-सादे हैं। संतों के वचन सदा ही सीधे-सादे होते हैं। जटिलता तो पंडितों के वचनों में होती है। और पंडितों के वचनों में जटिलता इसलिए होती है कि पंडितों के वचनों में सार कुछ भी नहीं होता। असार को छिपाने के लिए जटिलता का आवरण ओढ़ाना जरूरी है। जितनी असार बात हो, उसको उतना ही जटिल और कठिन करके कहना होता है, ताकि कोई देख न पाए कि असार है। जितनी थोथी बात हो उतने बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। शब्दों की बड़ी सजावट में थोथापन छिप जाता है। जितना कुरूप हो वक्तव्य, उसने सुंदर परिधान पहनाने होते हैं। और जितनी गंदगी हो भीतर, उतनी सुगंध छिड़कनी पड़ती है। लेकिन जब भीतर कुछ होता है, तो बात सीधी होती है, साफ होती है, नग्न होती है, निर्वस्त्र होती है।

संतों के वचन सदा सीधे-साफ हैं। वैसा ही कह दिया है जैसा जाना है। जाना है, इसलिए उलझाने की कोई जरूरत ही नहीं है। जिन्होंने नहीं जाना है, वे खूब उलझाते हैं। वे ऐसे गोल-गोल जाते हैं, ऐसे तिरछे-तिरछे चलते हैं कि तुम पहचान ही न पाओगे वे कहना क्या चाह रहे हैं। और लोग ऐसे मूढ़ हैं कि जिस बात को न समझ सकें, सोचते हैं बड़ी गहरी होगी, गंभीर होगी। जो समझ में न आए, लोग सोचते हैं जरूर बड़ी ऊंची होगी, पहुंची होगी।

सत्य तो सीधा-साफ है; दो और दो चार, ऐसा साफ है। दार्शनिक लिखते हैं बड़ी जटिल बातें। संत तो बोलते हैं सीधे-साफ। पक्षियों के गीत जैसे उनके गीत हैं। न कुछ जोड़ा है, न कुछ सजाया है, सीधा हृदय खोल कर रख दिया है। ऐसे ही लाल के वचन हैं। मगर अगर डुबकी मारोगे तो बहुत संपदा पाओगे। निमंत्रण सुनोगे तो एक यात्रा शुरू होगी। "और है कोई लेनेहारा?"... तो ही... तो ही समझ पाओगे इन सीधे-सादे वचनों को। ये बातें समझने की कम, लेने की ज्यादा हैं; सोचने की कम, पीने की ज्यादा हैं।

अंतिम निमंत्रण आज है!

वरदान पाने के लिए,
निर्माण पाने के लिए,
युग-युग तुम्हारे पास पंछी नीड़ में आता रहा;
अंतिम निमंत्रण आज है!

लघु श्वास के दो तार पर,
विश्वास के आधार पर,
जड़ विश्व के चेतन नियम हंस भूल ठुकराता रहा;
अंतिम निमंत्रण आज है!

संतोष पलकों से ढुलक,
बहता रहा था शाम तक,
नीरव निशा के शून्य में दृग-सिंधु यह गाता रहा।

अंतिम निमंत्रण आज है!

संतों का निमंत्रण सदा अंतिम निमंत्रण है। जब संसार के सब निमंत्रण चुक जाते हैं, उनकी व्यर्थता देख ली जाती है, उनकी असारता पहचान में आ जाती है--तो संतों का निमंत्रण समझ में आता है।

ये वचन कवियों के वचन नहीं हैं। ये मनोरंजन नहीं हैं, मनोभंजन हैं। ये मन को बहलाने के लिए नहीं, मन को मिटाने के लिए हैं। साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए। क्योंकि यह ऊपर की यात्रा है। उत्तुंग शिखरों का बुलावा है। सीधा-साफ, पर बड़े खतरे से भरा!

आखिर कुंभनाथ ने भी कोई बड़ी कठिन बात तो न कही थी लाल को, इतना ही कहा था--"और है कोई लेनेहारा?" कि जग गए कोई तार प्राणों में सोए हुए। जैसे किसी ने वीणा झनझना दी। कि किसी ने नींद में झकझोर दिया और आंखें खुल गईं और सुबह हो गई! ऐसे ही ये वचन हैं। ले सको तो धन्यभागी होओगे।

लाल के जीवन में अचानक वैराग्य उत्पन्न हो गया। लेकिन ऐसे समझने चलोगे, तो कुछ सूत्र पकड़ में आ सकते हैं जो काम के हों। राग में डूबने जा रहे थे और वैराग्य उत्पन्न हुआ। राग में उतरने-उतरने को थे कि वैराग्य उत्पन्न हुआ। फंसता ही था पक्षी, पिंजड़े में उतरने को ही था। द्वार बंद होने को ही था। फिर निकलना मुश्किल हो जाता। ठिठक गया।

एक बात याद रखोः जीवन में बहुत बार ऐसे क्षण होते हैं जब तुम जरा अगर चेत जाओ तो बड़ी झंझटों से बच जाओ। एक कदम और कि फिर झंझटों से बचना मुश्किल हो जाता है। झंझट पैदा हो जाए तो उसके बाहर आना कठिन है। झंझट में न जाना आसान है।

क्रोध में चले गए तो फिर निकलना मुश्किल है। क्रोध के द्वार पर ही जाग गए, चेत गए, तो वही क्रोध करुणा बन जाता है। वासना की दौड़ में चल पड़े, तो हर कदम और-और उलझनें खड़ी करता जाता है। फिर इतनी उलझनें हो जाती हैं कि निकलना मुश्किल होने लगता है। एक झूठ बोले, तो फिर दस झूठ बोलने पड़ेंगे। क्योंकि एक झूठ को बचाने के लिए दस झूठ जरूरी होते हैं। फिर दस झूठ बोले तो सौझूठ बोलने पड़ेंगे, क्योंकि हर-एक झूठ के लिए दस झूठ चाहिए। फिर यह फैलाव फैलता ही चला जाता है। इसका कोई अंत नहीं है। फिर लौटना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि उतने झूठ जो बोले, उतने झूठ प्रकट करने होंगे। फिर मन कंपता है। फिर छाती बैठती है।

वैराग्य का अर्थ हैः राग की व्यर्थता का बोध। राग का अर्थ होता हैः यहां सुख मिल सकेगा, इसकी आशा। वैराग्य का अर्थ होता हैः न कभी यहां किसी को सुख मिला, न यहां सुख मिल सकता है। यहां सुख है ही नहीं। सुख बाहर नहीं है, भीतर है। सुख संबंधों में नहीं है, अंतस्तल में है। सुख धन में, पद में, प्रतिष्ठा में नहीं है--ध्यान में है। सुख बहिर्यात्रा नहीं है, अंतर्यात्रा है।

वैराग्य का अर्थ होता हैः बाहर की दौड़, दौड़ ही दौड़ है। चलते बहुत हो, पहुंचना कभी नहीं होता, मंजिल कभी नहीं आती। मार्ग बहुत लंबा और बहुत जटिल है, मंजिल कभी नहीं आती। मंजिल तो नहीं आती, मौत आती है। बाहर की दौड़ पर मंजिल का धोखा बना रहता है। और मंजिल के नाम से मंजिल के पीछे छिपी एक दिन मौत आती है। और भीतर की यात्रा में मौत पहले ही घट जाती है। क्योंकि जो मरने को राजी है, वही आत्मा में प्रवेश करता है।

अंतर्यात्रा में मृत्यु पहले घट जाती है; उसी मृत्यु का नाम संन्यास है। संन्यास मृत्यु की कला है; जीते जी मर जाने का राज। और जो भीतर चलता है, मंजिल के पीछे छिपी अमृत की धार है। मंजिल के पीछे छिपा अमृत है। बाहर मंजिल के नाम से मौत धोखा दे रही है।

वो दिन होगा जहां के गम न होंगे,
वो दिन जब इस जहां में हम न होंगे
ये नूर-ओ-नार-ओ-नग्मा सब रहेंगे,
तेरी दुनिया में लेकिन हम न होंगे।
झुके होंगे जो उनके आस्तां पर,
वो कोई और होंगे हम न होंगे।
फकत यह जानने में उम्र गुजरी,
वो कैसे और कब बरहम न होंगे।
बहुत होंगे मेरे अरमान पूरे,
मेरे अरमान फिर भी कम न होंगे।
चले हैं "अश्क" इक्बाल-ए-गुनह को,
गुनाह उनके मगर यूं कम न होंगे।

यहां चले चलो, दौड़े चलो... । एक वासना पूरी नहीं हो पाती, और दस को जन्म दे जाती है। यहां आदमी भिखमंगे ही रहते हैं और भिखमंगे ही मरते हैं। खाली हाथ आते हैं, खाली हाथ जाते हैं। एक और मजा--आते हैं तब कम से कम मुट्ठी बंधी होती है; जाते हैं तब मुट्ठी भी खुल जाती है! यहां जो पास होता है, वह भी लुटा कर लोग जाते हैं। यहां लाल "पत्थर" होकर जाते हैं, जब कि यहां पत्थरों को "लाल" होकर जाना चाहिए।

इन वचनों को पीना; ये वचन रसायन हैं!

ध्यानी नहीं शिव सारसा, ग्यानी सा गोरख।
ररै रमै सूं निसतिरयां, कोड़ अठासी रिख।।

लाल कहते हैंः दो सूत्र समझ लेने चाहिए। एक तो ध्यान और एक ज्ञान।

ध्यानी नहीं शिव सारसा...

शिव जैसा ध्यानी नहीं है। ध्यानी हो तो शिव जैसा हो। क्या अर्थ है? ध्यान का अर्थ होता हैः न विचार, वासना, न स्मृति, न कल्पना। ध्यान का अर्थ होता हैः भीतर सिर्फ होना मात्र। इसीलिए शिव को मृत्यु का, विध्वंस का, विनाश का देवता कहा है। क्योंकि ध्यान विध्वंस है--विध्वंस है मन का। मन ही संसार है। मन ही सृजन है। मन ही सृष्टि है। मन गया कि प्रलय हो गई। ऐसा मत सोचो कि किसी दिन प्रलय होती है। ऐसा मत सोचो कि एक दिन आएगा जब प्रलय हो जाएगी और सब विध्वंस हो जाएगा। नहीं, जो भी ध्यान में उतरता है, उसकी प्रलय हो जाती है। जो भी ध्यान में उतरता है, उसके भीतर शिव का पदार्पण हो जाता है।

ध्यान है मृत्यु--मन की मृत्यु, "मैं" की मृत्यु, विचार का अंत। शुद्ध चैतन्य रह जाए--दर्पण जैसा खाली! कोई प्रतिबिंब न बने।

तो एक तो यात्रा है ध्यान की। और फिर ध्यान से ही ज्ञान का जन्म होता है। जो ज्ञान ध्यान के बिना तुम इकट्ठा करते हो, वह ज्ञान नहीं है, ज्ञान का धोखा है--मिथ्या ज्ञान है। शास्त्रों से, सिद्धांतों से, दूसरों से, अन्यों से तुम जो इकट्ठा कर लेते हो, वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो ध्यान में जन्मता है। ध्यान है शुद्ध बोध। उस बोध में तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू होता है--जीवन का अर्थ, जीवन का रहस्य। ध्यान तो है कुंजी, खोल देती है अनंत के द्वार।

ध्यानी नहीं शिव सारसा, ग्यानी सा गोरख।

और लाल कहते हैः न तो आज दिखाई पड़ते हैं ध्यानी, जिन्होंने शिव को निमंत्रण किया हो, जो शिव जैसे हो गए हों। हां, शिव की प्रतिमाएं पूजी जा रही हैं। गांव-गांव, घर-घर शिव के आराधन, पूजन के आयोजन चल रहे हैं। जितनी शिव की प्रतिमाएं हैं, उतनी तो किसी और की नहीं।

सरल भी है, कहीं से भी गोल पत्थर ढूंढ कर रख दो किसी भी झाड़ के नीचे और शिव की प्रतिमा निर्मित हो गई। शिवलिंग कहीं से भी ढूंढ लाओ और किसी भी पेड़ के नीचे बिठा दो। छप्पर की भी कोई जरूरत नहीं है।

शिव की जगह-जगह पूजा हो रही है, लेकिन शिव पूजा की बात नहीं है। शिवत्व उपलब्धि की बात है। वह जो शिवलिंग तुमने देखा है बाहर मंदिरों में, वृक्षों के नीचे, तुमने कभी ख्याल नहीं किया, उसका आकार ज्योति का आकार है। जैसे दीये की ज्योति का आकार होता है। शिवलिंग अंतर-ज्योति का प्रतीक है। जब तुम्हारे भीतर का दीया जलेगा तो ऐसी ही ज्योति प्रकट होती है, ऐसी ही शुभ्र! यही रूप होता उसका। और ज्योति बढ़ती जाती है, बढ़ती जाती है। और धीरे-धीरे ज्योतिर्मय व्यक्ति के चारों तरफ एक आभामंडल होता है; उस आभामंडल की आकृति भी अंडाकार होती है।

रहस्यवादियों ने तो इस सत्य को सदियों पहले जान लिया था। लेकिन इसके लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण उनके पास नहीं थे। लेकिन अभी रूस में एक बड़ा वैज्ञानिक प्रयोग चल रहा है--किरलियान फोटोग्राफी। मनुष्य के आस-पास जो ऊर्जा का मंडल होता है, अब उसके चित्र लिए जा सकते हैं। इतनी सूक्ष्म फिल्में बनाई जा चुकी हैं, जिनसे न केवल तुम्हारी देह का चित्र बन जाता है, बल्कि देह के आस-पास जो विद्युत प्रकट होती है, उसका भी चित्र बन जाता है। और किरलियान चकित हुआ है, क्योंकि जैसे-जैसे व्यक्ति शांत होकर बैठता है, वैसे-वैसे उसके आस-पास का जो विद्युत मंडल है, उसकी आकृति अंडाकार हो जाती है। उसको तो शिवलिंग का कोई पता नहीं है, लेकिन उसकी आकृति अंडाकार हो जाती है। शांत व्यक्ति जब बैठता है ध्यान में तो उसके आस-पास की ऊर्जा अंडाकार हो जाती है। अशांत व्यक्ति के आस-पास की ऊर्जा अंडाकार नहीं होती, खंडित होती है, टुकड़े-टुकड़े होती है। उसमें कोई संतुलन नहीं होता। एक हिस्सा बड़ा, एक हिस्सा छोटा; कुरूप होती है।

शिवलिंग ध्यान का प्रतीक है। वह ध्यान की आखिरी गहरी अवस्था का प्रतीक है।

और जिसने ध्यान जाना हो, उसके ही भीतर गोरख जैसा ज्ञान पैदा होता है। संतों की परंपरा में गोरख का बड़ा मूल्य है। क्योंकि गोरख ने जितनी ध्यान को पाने की विधियां दी हैं, उतनी किसी ने नहीं दी हैं। गोरख ने जितने द्वार ध्यान के खोले, किसी ने नहीं खोले। गोरख ने इतने द्वार खोले ध्यान के कि गोरख के नाम से एक शब्द ही हमारे भीतर चल पड़ा है--गोरखधंधा! गोरख ने इतने द्वार खोले कि लोगों को लगा कि यह तो बड़ी उलझन की बात हो गई। गोरख ने एकाध द्वार नहीं खोला, अनंत द्वार खोल दिए! गोरख ने इतनी बातें कह दीं, जितनी किसी ने कभी नहीं कही थीं। बुद्ध ने ध्यान की एक प्रक्रिया दी है, विपस्सना; बस पर्याप्त। महावीर ने ध्यान की एक प्रक्रिया दी है, शुक्ल ध्यान; बस पर्याप्त। पतंजलि ने ध्यान की एक प्रक्रिया दी है, निर्विकल्प

समाधि; बस पर्याप्त। गोरख ने परमात्मा के मंदिर के जितने संभव द्वार हो सकते हैं, सब द्वारों की चाबियां दी हैं।

लोग तो उलझन में पड़ गए, बिगूचन में पड़ गए, इसलिए गोरखधंधा शब्द बना लिया। जब भी कोई बिगूचन में पड़ जाता है, तो वह कहता है, बड़े गोरखधंधे में पड़ा हूं। तुम्हें भूल ही गया है कि गोरख शब्द कहां से आता है; गोरखनाथ से आता है। गोरखनाथ अदभुत व्यक्ति हैं। उनकी गणना उन थोड़े से लोगो में होनी चाहिए--कृष्ण, बुद्ध, महावीर, पतंजलि, गोरख... बस। इन थोड़े से लोगों में ही उनकी गिनती हो सकती है। वे उन परम शिखरों में से एक हैं।

लाल कहते हैंः गोरख सा ज्ञानी नहीं हुआ। क्योंकि गोरख ने जिस भांति अपने को मिटाया... ।

गोरख कहते हैंः

मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।

तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मरि गोरख दीठा।।

कहते हैंः योगियो, मरो; क्योंकि मरने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। अहंकार को गलाओ, जलाओ, भस्मीभूत कर दो।

मरौ हे जोगी मरौ...

क्योंकि मृत्यु से ही तुम अमृत पा सकोगे।

... मरौ मरण है मीठा।

गोरख कहते हैंः इससे बड़ी कोई मीठी अनुभूति नहीं है दुनिया में। अहंकार के जाने पर मिठास ही मिठास छूट जाती है। अहंकार कड़वा है, नीम सा कड़वा है। अहंकार जहर है, और हम उसी जहर से भरे जीते हैं। उसी को हम जिंदगी कहते हैं। फिर स्वभावतः हमारी जिंदगी में अगर सिवाय दुख, पीड़ा और कांटों के कुछ भी नहीं होता तो आश्चर्य नहीं है। फिर अगर हमारा जीवन एक नरक की कथा ही होती है तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

गोरख कहते हैंः मरौ मरण है मीठा! काश, तुम मर सको तो तुम इस जगत के अपूर्व मिठास को उपलब्ध हो जाओ! मगर मरने की कला है... तिस मरणी मरौ... उस मरण को सीखो... जिस मरणी मरि गोरख दीठा। गोरख भी मरा, और मर कर उसने देखा! मर कर पाया! मिट कर पाया!

बूंद जब मिट जाती है तो सागर हो जाती है, और बीज जब मिट जाता है तो वृक्ष हो जाता है। फिर आता है वसंत। और खिलते हैं फूल! और पक्षी गीत गाते हैं। और सूरज की किरणें नाचती हैं। और वृक्ष बदलियों से गुफ्तगू करता है। और फिर बहुत कुछ होता है। फिर रास रचता है जीवन का। उत्सव होता है। लेकिन पहले मरना होता है बीज को।

गोरख मरे। ध्यान में डूबे। गोरख ने पहले शिव को निमंत्रित कर लिया--विध्वंस के देवता को। ध्यान में जाना अर्थात शिव को निमंत्रण देना है कि आओ और मुझे मिटाओ। और जो मिट गया उसके भीतर ज्ञान का जन्म होता है। जो मिट गया, उसके भीतर ज्ञान की धारा उठती है। मोहम्मद मिटे, तो कुरान जन्मा। वेद के ऋषि मिटे, तो वेद जन्मे। उपनिषद किनसे गाए गए? उनसे गाए गए जो मिट गए थे। ऐसे ही गीता, ऐसे ही बाइबिल, ऐसे ही धम्मपद।

इस जगत में जो भी अनूठे गीत उतरे हैं, वे उनसे उतरे हैं जो बांस की पोली पोंगरी हो गए थे। जिन्होंने अपने को बीच से बिल्कुल हटा लिया था। और जिन्होंने कहा परमात्मा को कि तुझे जो गाना होगा, हम बाधा न

देंगे। अगर कुछ भूल-चूक होगी तो हमारी होगी, अगर कुछ ठीक होगा तो बस तेरा। सब ठीक तेरा, सब भूलें हमारी।

जो बिल्कुल हट गए, उनसे ज्ञान जन्मा। ज्ञान किताबों से नहीं मिलता। ज्ञान अध्ययन से नहीं मिलता। मनन से नहीं मिलता, चिंतन से नहीं मिलता। पांडित्य मिलता है अध्ययन, मनन, चिंतन से। ज्ञान तो ध्यान से मिलता है। इसलिए मौलिक अर्थों में तो ध्यान ही ज्ञान है।

ररै रमै सूं निसतिरयां...

राम में जो रम जाए, पूरा का पूरा, ऐसा रम जाए कि अलग बचे ही नहीं, न दिन, न रात का भेद रह जाए, चौबीस घंटे रमा रहे राम में, क्षण भर की दूरी न हो, कण भर की दूरी न हो--वही साधु है।

----कोड़ अठासी रिख।

ऐसे तो करोड़ों साधु-संन्यासी हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है। दो कौड़ी भी उनका मूल्य नहीं है। मूल्य उसका है जो ध्यान में उतर जाए और ज्ञान के मोतियों को ले आए। मूल्य उसका है जो डुबकी मारे ध्यान के सागर में और ले आए मोतियों को भर कर। जो शिव में डूबे और गोरख बन कर निकले, मूल्य उसका है।

ररै रमै सूं निसतिरयां! राम ही राम रह जाए जिसके जीवन में, दिन और रात एक ही धुन बजे, एक ही गीत उठे--वही साधु है। कोड़ अठासी रिख! ऐसे तो फिर करोड़ों साधु हैं।

हंसा तो मोती चुगैं, बगुला गार तलाई।

और अगर तुम हंस हो तो ऐसे साधु को खोज ही लोगे। हंसा तो माती चुगैं! हंस तो मोती ही चुगते हैं। इसलिए बुद्धों के पास केवल हंस इकट्ठे होते हैं। हर कोई बुद्धों के पास इकट्ठा नहीं होता। भीड़-भाड़ तो साधु-संतों, तथाकथित पंडित-पुजारियों के पास जाती है। भीड़-भाड़ तो परंपरावादी होती है, रूढ़िवादी होती है, अंधविश्वासी होती है। भीड़-भाड़ तो अंधों के साथ चलती है; क्योंकि खुद अंधे हैं, अंधों से उनका तालमेल बैठता है। अंधों की बातें उन्हें रुचती है, क्योंकि अंधों की बातें उनकी ही भाषा होती है, उनका ही अनुभव होती है। भीड़-भाड़ तो भेड़-चाल चलती है। बुद्धों के पास नहीं फटकती।

बुद्धों के पास तो सिर्फ साहसी, जीवन को दांव पर लगाने वाले लोग... "और है कोई लेनेहारा?" ऐसी आवाज की चुनौती को स्वीकार करने वाले लोग... बस थोड़े से लोग ही बुद्धों के पास इकट्ठे होते हैं। थोड़े से ही हंस हैं इस जगत में; बगुलों की भीड़ है।

हंसा तो मोती चुगैं, बगुला गार तलाई।

बगुले तो कीचड़ में बैठे रहते हैं। कहीं भी गंदे तालाबों की कीचड़ के पास बैठे रहते हैं। लगते हंसों जैसे ही हैं। और बड़े भगत भी मालूम होते हैं।

बगुले को देखा? हमारे पास एक शब्द ही बन गया है, बगुलाभगत। सदियों-सदियों में बगुले को हमने देखा है, बड़े भक्तिभाव से खड़ा होता है। क्या कोई योगी खड़ा होगा! एक ही पैर से खड़ा होता है। योगी भी सीखते हैं एक पैर से खड़ा होना; उसका नाम बगुलासन। बड़ी कठिनाई से खड़े हो पाते हैं। बगुला तो बड़ी सरलता से एक पैर से खड़ा रहता है। योगस्थ! बिल्कुल हिलता नहीं, डुलता नहीं। थिर, कूटस्थ! मगर इरादे क्या हैं? इरादे हैं कि कोई मछली फंसे। इतना जो खड़ा है बिल्कुल निस्पंद होकर, वह इसीलिए ताकि जल न हिले। क्योंकि जल हिले तो मछलियां भाग जाती हैं। इतना जो निस्पंद खड़ा है तो इसीलिए कि उसकी छाया जो जल में पड़ती है, वह भी न हिले। क्योंकि उसकी छाया हिलती है तो मछलियां भाग जाती हैं; समझ जाती हैं कि भगतजी पास ही हैं।

और देखते हैं, कैसी शुद्ध खादी पहनता है बगुला! बिल्कुल सौ प्रतिशत शुद्ध खादी पहनता है! कोई मिश्रित खादी भी नहीं, कि मानव-निर्मित किन्हीं रासायनिक धागों को उसमें जोड़ दिया गया हो। बिल्कुल हंस जैसा मालूम होता है। बस हंस जैसा मालूम ही होता है; हंस जैसा कुछ भी नहीं है।

हंस की खूबी क्या है? हंस मानसरोवर की खोज करता है। देखते हो, हमने हंसों की उस परम झील को, जो दूर हिमालय के पवित्र शांत, अदूषित वातावरण में है--"मानसरोवर" कहा है। सोच कर कहा है, क्योंकि ऐसे ही जो हंस हैं, वे भीतर की मानसरोवर को खोजते हैं--जहां मन समाप्त हो जाता है और चेतना का सागर ही लहराता रह जाता है। जहां मन के सारे दूषण, गंदी हवाएं विदा हो गई हों और जहां अछूती कुंआरी झील रह जाए--मानसरोवर उसी का नाम है। वह तुम्हारे भीतर है।

हिमालय के पहाड़ तुम्हें भी अपने भीतर चढ़ने होंगे, तो ही तुम उस मानसरोवर को खोज पाओगे। और वहां मोतियों से ही, मोतियों से भरी है झील। मोती ही हंस के योग्य हैं। इस संसार से जो तृप्त हो जाता है, समझ लेना कि बगुला है। कीचड़ से तृप्त हो गया, कमल से पहचान ही न हुई।

हंसा तो मोती चुगैं, बगुला गार तलाई।

हरिजन हरिसूं यूं मिल्या, ज्यूं जल में रस भाई।।

और जैसे जल में जल जाता है, ऐसे ही हरिजन वही है जो हरि से मिल गया।

महात्मा गांधी ने शूद्रों को हरिजन कह कर शूद्रों की तो प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश की, लेकिन एक बात भूल गए कि "हरिजन" शब्द की प्रतिष्ठा खो गई। शूद्रों की बढ़ी कि नहीं प्रतिष्ठा, कहना मुश्किल है। क्योंकि क्या फर्क पड़ता है, तुम चाहे शूद्र कहो, अछूत कहो, चाहे हरिजन कहो, बात वही की वही है। पहले लोग शूद्रों को जला रहे थे, अब हरिजनों को जला रहे हैं। पहले लोग शूद्रों को मार रहे थे, अब हरिजनों को मार रहे हैं। पहले लोग शूद्रों के विरोध में थे, अब हरिजनों के विरोध में हैं। उससे क्या फर्क पड़ता है? नाम बदलने से कहीं कुछ फर्क पड़ता है? लेकिन अक्सर हम ऐसे ही ऊपर के रूपांतरण को बड़ी क्रांतियां समझ लेते हैं, कि गांधी ने गजब किया कि शूद्रों को हरिजन कह दिया!

लेकिन हरिजन बड़ा कीमती शब्द है। यह तो बुद्धों के लिए उपयोग किया जाता है--जो हरि में रम रहे। इसको राजनीति में घसीट कर, इसको समाज की क्षुद्र समस्याओं में घसीट कर इस बहुमूल्य शब्द को नष्ट कर दिया। अब अगर कहो कि बुद्ध हरिजन हैं, तो लोगों कोशक होगा कि क्या शूद्र हैं? कहो कि कबीर हरिजन हैं, कि कृष्ण हरिजन हैं, तो लोग नाराज हो जाएंगे, मुकदमे चलाने लगेंगे कि मैंने कृष्ण को हरिजन कहा। क्योंकि हरिजन का अर्थ ही खराब कर दिया! एक परम पावन शब्द को आकाश से उतार कर धूल में गिरा दिया! ले आए मानसरोवर का शब्द और डाल दिया गांव की कीचड़ में, किसी गंदे तालाब के किनारे। हरिजनों को तो कुछ लाभ नहीं हो गया। हरिजन तो वही के वही हैं। हरिजन कहो या कुछ कहो, नामों से कहीं फर्क पड़े हैं?

लेकिन नामों से धोखे पैदा हो जाते हैं। हम गलत चीजों को ठीक-ठीक नाम दे देते हैं और धोखा खा लेते हैं। कोई मर जाता है, तो हम कहते हैं--महायात्रा। अब महायात्रा कहने से कुछ फर्क पड़ता है? कोई फर्क नहीं पड़ता। मृत्यु तो मृत्यु है, तुम चाहे महायात्रा कहो। दिल्ली में जो मरते हैं, उनको भी हम कहते है--स्वर्गीय। अगर दिल्ली में मरने वाले लोग भी स्वर्गीय होते हैं तो नरक खाली पड़ा होगा! फिर नरक का क्या होगा? नरक में बड़ी बेकारी होगी; शैतान और उसके शिष्य, सब बैठे-ठाले होंगे, बेकार बैठे होंगे। कुछ काम नहीं, कुछ धाम नहीं। स्वर्ग का मजा ले रहे होंगे क्योंकि विश्राम कर रहे होंगे, और काम ही क्या है? जो मरा, उसको हम स्वर्गीय कहते हैं। स्वर्गीय कह कर हम ढांक लेते हैं। हम शब्दों में बड़े जादूगर हैं।

और हम शब्दों से किसको धोखा दे रहे हैं? कांटे को गुलाब कहोगे तो कांटा गुलाब हो जाएगा? कांटा तो कांटा ही रहेगा। गुलाब कह देने से सिर्फ तुम धोखा खाओगे। और आज नहीं कल तुम्हारे ही हाथ में कांटा चुभेगा। तड़फोगे तब। और गुलाब कहोगे तो चुभेगा ही। क्योंकि गुलाब को तोड़ने जाओगे और कांटा तोड़ लोगे। लेकिन हम अच्छे शब्द उपयोग करने की कोशिश करते हैं। सत्य तो वैसे के ही वैसे बने रहते हैं।

महात्मा गांधी ने "हरिजन" जैसे प्यारे शब्द को बिल्कुल विकृत कर दिया। इससे दोहरे धोखे पैदा हुए। अछूत को लगा कि वह हरिजन है, अछूत नहीं। है वह वही का वही। न मंदिर में प्रवेश है। न कुएं पर पानी भर सकता है। न ब्राह्मण की बेटी से विवाह कर सकता है। न बनिए की दुकान पर बैठ कर चिलम पी सकता है। वही का वही है, मगर हरिजन की अकड़ आ गई। वह सोचता हैः मैं हरिजन हूं! कहां हम उनको हरिजन कहते थे जो पा गए राम को; जो पहुंच गए राम को। बहुत थोड़े से लोगों को हम हरिजन कहते थे।

गांधी ने शब्द को विकृत कर दिया। हरिजनों का धोखा हो गया और हिंदुओं को धोखा हो गया कि अच्छा शब्द दे दिया, अब और क्या चाहिए! लगा दिया लेबल अच्छा, अब और क्या चाहिए! अब इतने से तृप्त हो जाओ। दशा वही, दीनता वही, दुख वही, पीड़ा वही... । शब्दों से जरा सावधान रहना चाहिए!

हरिजन हरिसूं यूं मिल्या...

हरिजन तो वह है जो हरि से इस भांति मिल गया जैसे जल में जल को डाल दो और दोनों जल एक हो जाएं; जैसे नदी सागर में उतरे और एक हो जाए। जो राम से ऐसा मिल गया। जो हरि के साथ एक हो गया। सिर्फ बुद्ध पुरुषों को ही हरिजन कहा जा सकता है। ब्राह्मण भी हरिजन नहीं हैं, शूद्र तो हरिजन क्या होंगे। क्योंकि ब्राह्मण भी कहां ब्राह्मण हैं! ब्राह्मण होते तो हरिजन होते। ब्रह्म को जानते तो हरिजन होते। ब्राह्मण भी ब्राह्मण नहीं है, न हरिजन है। तोशूद्र तो क्या हरिजन होंगे! कभी-कभी कोई विरला व्यक्ति हरिजन हो पाता है।

हमको दुश्नाम की खू है, तू मगर देख कहीं
शहद होंठों का तेरे जहरे-हलाहल न बने।
तुन्दी-ए-शौक में तुफान से लड़ने वाले,
मसलहतकोशी-ए-साहिल तेरी मंजिल न बने।
जिस सफीने के मुकद्दर में तलातुम ही नहीं,
वोशनासा-ए-रमूज-ए-लब-ए-साहिल न बने।
चारा-ए-दर्द-ए-जिगर, मरहम-ए-आजार बने,
जो नजर तेरी खूदा-रा सम्म-ए-कातिल न बने।
हाय क्या दौर है, पहलू में धड़कती हुई शै,
संग या खार बने दर्द-भरा दिल न बने।
अपनी किस्मत को सराहे या गिला करता रहे,
जो कभी तीर-ए-नजर का तेरे घायल न बने।

जो परमात्मा की आंख से घायल होता है, जो कभी उसके तीर से घायल होता है, वह हरिजन है।
जो कभी तीर-ए-नजर का तेरे घायल न बने।

जो खोल देता है अपने हृदय को परमात्मा के लिए। कठिन है, बात तो कठिन है। बात आसान नहीं है। तूफानों से लड़ना होगा। और साहिल से, किनारों से समझौता करना छोड़ना होगा।

तुन्दी-ए-शौक में तूफान से लड़ने वाले,

मसलहतकोशी-ए-साहिल तेरी मंजिल न बने।

कहीं ऐसा न हो कि आज जो तू तूफान से लड़ने निकला है, जो तेरे भीतर शौक पैदा हुआ है तूफान से लड़ने का। जो एक पुकार उठी है, चुनौती ली है तूफान से लड़ने की--कहीं ऐसा न हो कि जल्दी ही तू भी किनारे से समझौता कर ले! किनारे की सुविधाएं हैं। किनारे की सुरक्षाएं हैं। किनारे की राहतें हैं। और इसीलिए तो अधिक लोग किनारों के साथ समझौता कर लिए हैं। धर्मों के साथ, मंदिरों और मस्जिदों के साथ, पंडित-पुरोहितों के साथ तुम्हारे समझौते, तूफान से बचने की तरकीबें हैं। तुमने अपनी नाव किनारों से बांध दी है, खूब जंजीरों से बांध दी है।

निश्चित ही किनारों से बंधे रहोगे तो नाव डूबेगी नहीं। लेकिन नाव का डूबना न, अपने आप में कोई मूल्य तो नहीं। नाव डूबे न, इतने के लिए ही तो नाव नहीं। नाव तो तिरने के लिए है; तिरो तो कुछ अर्थ है। और जिसे तिरना है, उसे तूफानों से टक्कर लेना सीखना ही होगा। और बिना तूफानों के कोई नाव नाव है? और बिना तूफानों की टक्कर लिए कोई नाव कभी मजबूत होती है? कोई प्राण कभी मजबूत होते हैं?

जिस सफीने के मुकद्दर में तलातुम ही नहीं,

वोशनासा-ए-रमूज-ए-लब-ए-साहिल न बने।

जिस नाव की जिंदगी में तूफान नहीं है, जिस नाव के भाग्य में तूफान नहीं है, वह अभागी है। और स्वभावतः जो किनारों से बंध कर बैठ गए हैं, उनसे ज्यादा अभागे लोग और नहीं हैं, क्योंकि दूसरा किनारा तो उन्हें मिलेगा ही नहीं। दूसरा किनारा, जो कि परमात्मा है। और जो किनारों से बंध कर बैठ गए हैं, वे डूबेंगे ही नहीं। जल से जल कभी मिलेगा ही नहीं। हरिजन का उनके भीतर जन्म नहीं होगा।

जुरा मरण जग जलम पुनि, अै जुंग दुख घणाई।

चरण सरेवां राजरा, राख लेव शरणाई।।

लाल कहते हैं अपने गुरु से, जब गुरु ने पुकार दी--"और है कोई लेनेहारा?"--तो लाल कहते हैं कि "जुरा मरण... " दिखाई पड़ गया मुझे कि बुढ़ापा है, फिर मौत है, फिर-फिर आना है। यही चक्कर है जन्म का और मरण का। और यह जीवन सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। उसे एक पुकार में दिख गया! यह देख कर ही कि गुरु अपने हाथ से कब्र में उतर रहा है--बुद्धि जिसके पास भी होती, उसको भी दिखाई पड़ जाता कि इस जगत में पाने योग्य कुछ भी नहीं है। इस जगत में अगर मरने की कला आ गई तो सब आ गया।

जुरा मरण जग जलम पुनि...

यहां है ही क्या? बुढ़ापा है, बीमारी है, दुख हैं, चिंताएं हैं, संताप हैं। फिर मौत है, फिर जन्म; और फिर वही सिलसिला है। बड़ा दुख है इस जीवन में।

चरण सरेवां राजरा...

कहते हैं गुरु कोः मुझे चरण छू लेने दो! इसके पहले कि तुम विदा हो जाओ, मुझे चरण छू लेने दो।

चरण सरेवां राजरा, राख लेव शरणाई।

जाने के पहले मुझे शरण दे दो। मिटने के पहले मुझे भी मिटा दो। तुम्हारी समाधि मेरी समाधि भी बन जाए। तुम्हारी मौत मेरी मौत भी बन जाए। बस एक ही आकांक्षा तुमने जगा दी कि तुम्हारे चरण छू लूं।

सदगुरु के चरण छूना ही पर्याप्त है। मगर हमारे मुल्क में तो चरण छूना औपचारिकता हो गई है। तुम तो जहां जाओ वहीं हर किसी के चरण छूते हो। चरण छूना एक शिष्टाचार हो गया। शिष्टाचार के कारण चरण छूने का जो राज था वह खो गया। चरण छूने का जो अपूर्व अर्थ था, वह खो गया। जैसे हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं, ऐसे ही बड़ा बुजुर्ग कोई मिला, उसके चरण छूकर नमस्कार कर लेते हैं। चरण छू लेते हो, मगर सिर झुकता नहीं। चरण छू लेते हो, मगर अहंकार झुकता नहीं।

इसलिए लाल कहते हैं कि मुझे अपने पर भरोसा नहीं है। तुम्हारी ही कृपा हो तो मैं तुम्हारे चरण छू पाऊं। मैं तो छू रहा हूं, मगर दो आशीर्वाद कि यह छूना सार्थक जो पाए। दो आशीर्वाद कि सच में छू पाऊं। कहीं हाथ ही चरण न छुएं, मेरे प्राण भी छू लें।

चरण सरेवां राजरा, राख लेव शरणाई।

इतनी ही विनती है कि अपनी शरण में मुझे ले लो।

बुद्धं शरणं गच्छामि!

संघं शरणं गच्छामि!

धम्मं शरणं गच्छामि!

लाल कहते हैंः ले लो मुझे अपनी शरण में। तुम हो बुद्ध, तुम्हारा एक घूंट पी लूं तो बस काफी। तुम्हीं हो मेरे संघ! तुम्हीं हो मेरे धर्म! तुमने मेरे भीतर एक पुकार उठा दी है। तुमने मुझे चौंका दिया, तुमने मुझे जगा दिया। अब मुझे छोड़ मत देना!

क्यूं पकड़ो हो डालियां, नहचै पकड़ो पेड़।

गउवां सेती निसतिरो, के तारैली भेड़।।

कहते हैंः लोगों को मैं देखता हूं तो डालियां पकड़ रहे हैं। डालियां पकड़ने से क्या होगा? क्यों नहीं जड़ पकड़ी जाए? क्यों नहीं पेड़ का प्राण पकड़ा जाए? अब तुम मिल गए मुझे--पेड़ के प्राण; मिल गए तुम जड़--अब तुम्हें छोड़ूंगा नहीं।

लोग सिद्धांतों को पकड़ रहे हैं--कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई। अरे पागलो! किसी जीसस को पकड़ो। किसी कृष्ण को पकड़ो! हिंदू होने से क्या खाक होगा? मुसलमान होने से क्या होगा? किसी मोहम्मद को पकड़ो। कहीं जहां ज्योति जलती हो, जहां अलख जगा हो, उन चरणों को पकड़ो।

और यह भी ख्याल रखना, तुम नहीं पकड़ पाओगे। तुमने अब तक गलत ही गलत किया है। इसलिए यह भी प्रार्थना कर लेना कि आशीर्वाद दो कि मैं तुम्हारे पैर पकड़ूं, मुझे पकड़ लेने दो। मुझे पकड़ा दो। हाथ में हाथ लेकर मुझे पकड़ा दो।

गउवां सेती निसतिरो, के तारैली भेड़।

बड़ा प्यारा वचन है! अगर नदी को तैरना हो तो गऊ की पूंछ पकड़ कर कोई तैर सकता है। लेकिन भेड़ कि पूंछ अगर पकड़ ली, तो डूबोगे। तुम भी डूबोगे, भेड़ तो डूबने ही वाली है। अगर किसी के साथ तिरना हो तो किसी को पकड़ो--किसी बुद्ध को, किसी महावीर को, किसी जरथुस्त्र को, किसी कबीर को, किसी नानक को। क्या भेड़ों को पकड़ रहे हो!

भेड़ प्रतीक है भीड़ का। भीड़ की चाल भेड़-चाल है। पंडित-पुरोहित तुम्हारे जैसे ही अंधे हैं। उनके पास भी आंख नहीं है। और उनको तुम पकड़े हो! नानक कहते हैंः अंधा अंधा ठेलिया दोनों कूप पड़ंत। अंधे अंधों को ठेल रहे हैं! अंधे अंधों का मार्गदर्शन कर रहे हैं। दोनों कुएं में गिर रहे हैं, गिरेंगे ही। कब तक बचेंगे? कहां तक

बचेंगे? मगर कतारें हैं। तुम अपने से आगे वाले को पकड़े हो। तुमसे आगे वाला उससे आगे वाले को पकड़े है। अगर मैं तुमसे पूछूं कि तुम हिंदू क्यों हो, तो तुम कहते होः मेरे पिता हिंदू, मेरी मां हिंदू। उनसे पूछो कि वे हिंदू क्यों हैं? वे कहते हैंः हमारे पिता हिंदू थे, हमारी मां हिंदू थी।

ऐसे तुम परंपरावत, रूढ़िग्रस्त, अंधविश्वास से भरे--सोचते हो किसी दिन परमात्मा को उपलब्ध हो सकोगे, उस पार जा सकोगे? किसी जलते हुए दीये का सहारा लो। ये बुझे दीये काम न आएंगे। और मंदिर-मस्जिदों में बुझे दीये हैं। किसी सदगुरु को पकड़ो। मगर सदगुरु को पकड़ना हिम्मत की बात है। पंडित-पुरोहितों को, तथाकथित साधु-संन्यासियों को--जिनको लाल कहते हैंः कोड़ अठासी रिख; करोड़ों ऋषि-मुनि घूम-फिर रहे हैं--इनको पकड़ना आसान है। क्यों? क्योंकि वे तुमसे कुछ जीवन को रूपांतरण करने के लिए नहीं कहते। और अगर कहते भी हैं तो ऐसी क्षुद्र बातों का रूपांतरण करवाते हैं कि जिनका कोई मूल्य नहीं।

कोई कहता है, पान खाना छोड़ दो। कोई कहता है कि बीड़ी न पीओ। कोई कहता है, रात भोजन न करो। कोई कहता है, पानी छान कर पीओ। ये कोई क्रांतियां हैं? पानी छान कर भी पीया तो तुम सोचते हो राम मिल जाएंगे? इतने से, बस पानी छान कर पी लेने से? और मैं नहीं कह रहा हूं कि पानी बिना छाने पीना, ख्याल रखना। छान कर पीओ; स्वास्थ्यप्रद है, लेकिन इससे राम के लेने-देने का क्या है? और मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि खूब दिल खोल कर बीड़ी-सिगरेट पीने लगना। लेकिन इतना मैं तुमसे कहूंगा कि बीड़ी-सिगरेट न पीओ तो यह मत सोचना कि स्वर्ग में तुम्हारे लिए कोई उत्सव मनाया जाएगा, कि स्वर्ग के द्वार पर परमात्मा खड़ा फूलमालाएं लिए स्वागत करेगा, जब तुम पहुंचोगे, क्योंकि तुमने कभी बीड़ी नहीं पी।

जरा सोचो भी तो, अगर परमात्मा तुमसे पूछेगा, तुमने किया क्या? तो तुम्हारे पास यही होगा बताने को कि बीड़ी नहीं पी! बात ही बेहूदी लगेगी। बात ही भद्दी लगेगी। किस मुंह से कहोगे? और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बीड़ी पीओ। मेरी बात को गलत मत समझ लेना। बीड़ी न पीना समझदारी है। बीड़ी पीना नासमझी है। लेकिन धर्म से क्या लेना-देना? बीड़ी पीने वाला मूढ़ है, पापी नहीं। मूढ़ है क्योंकि नाहक धुएं को बाहर-भीतर करता है। वैसे ही हवाओं में अब काफी धुआं है। अब तुम्हें बीड़ी इत्यादि पीने की जरूरत नहीं है। अब तुम बीड़ी पी ही रहे हो। धूम्रपान चल ही रहा है। न्यूयार्क या बंबई जैसे नगरों में हवा इतने धुएं से भरी है कि तुम श्वास ले रहे हो, यह धूम्रपान हो रहा है! अब न्यूयार्क में धूम्रपान किए बिना रहा ही नहीं जा सकता। हरेक आदमी धूम्रपान कर रहा है, अनजाने ही। हवाओं में इतना धुआं है कि वैज्ञानिक कहते हैं कि हमें आशा नहीं थी कि आदमी के फेफड़े इतने धुएं कोझेल सकेंगे। तीन गुना ज्यादा है मनुष्य की झेलने की क्षमता से। क्योंकि कारें हैं और फैक्ट्रियां हैं और ट्रेनें हैं, और हवाई जहाज हैं। और सब तरह के उपद्रव हैं। अब तुम सिगरेट-बीड़ी पीओ या न पीओ... ।

मगर, जो नहीं पीता, बुद्धिमान है। मगर बुद्धिमानी... । यह तो ऐसा ही हुआ कि तुम पैर के बल चलते हो। यह बुद्धिमानी है। तुम चारों हाथ-पैर से चलने लगो, तो यह नालायकी होगी। लेकिन फिर तुम परमात्मा से यह नहीं कह सकते कि मैं दो पैर से चलता था, चार हाथ-पैर से नहीं चलता था, तो मुझे स्वर्ग मिलना चाहिए। दो पैर से चलना कोई पुण्य नहीं है, समझदारी है।

और तुम्हारे साधु-संन्यासी तुमसे छुड़वाते क्या हैं? इस तरह की बेहूदगियों को अणु-व्रत कहा जाता है, छोड़ो कुछ, व्रत ले लो। बड़ा नहीं, चलो छोटा ले लो। महाव्रत महात्मा लेते हैं, तुम अणु-व्रत ही ले लो, चलो छोटा सही। अणु-व्रत भी खूब मजेदार लोग लेते हैं! कोई कहता है कि सप्ताह में एक दिन नमक नहीं खाएंगे। जैसे

परमात्मा नमक का दुश्मन है! मैं तुमसे कहता हूंः परमात्मा मीठा भी बहुत, नमकीन भी बहुत। ... कि कोई कहता है, एक दिन घी नहीं खाएंगे। क्या-क्या उपद्रव तुमने बना रखे हैं!

मगर ये बातें सस्ती हैं, सुगम हैं। इनको कोई भी कर सकता है। इनको करने के लिए थोड़ी बुद्धिहीनता चाहिए बस--थोड़ा बुद्धूपन! उतनी योग्यता हो तो इस तरह की बातें कोई भी कर सकता है। इस तरह की बातें जो लोग तुमसे करवा देते हैं, वे अच्छे लगते हैं। सस्ते में निपटा दिया। परमात्मा पक्का हो गया। मोक्ष निश्चित हो गया। अब बस दिल में आशाएं कर रहे हैं कि पान छोड़ दिया, तमाखू भी छोड़ दी, एक दिन नमक भी नहीं खाते, रात भोजन भी नहीं करते, पानी भी छान कर पीते हैं। अब दिल ही दिल में बैठे सोच रहे हैं कि उर्वशी स्वर्ग में मिलेगी या नहीं? अब और क्या चाहिए साधुता के लिए? अब दिल ही दिल में सोच रहे हैं कि अहा, झरने बहते हैं वहां शराब के!

अगर शराब की आदत हो तो ख्याल रखना। जब स्वर्ग के दरवाजे पर पूछा जाए तुमसे कि कौन से स्वर्ग जाना चाहते हो? फौरन कहनाः मुसलमानों के स्वर्ग जाना चाहते हैं। अगर शराब... क्योंकि वहां प्राहिबिशन नहीं है। मुसलमानों के स्वर्ग में प्राहिबिशन हो ही नहीं सकता, क्योंकि वहां झरने ही शराब के हैं। वहां पानी कोई पीता ही नहीं। पानी भी, कहां जमीन की बातें तुम स्वर्ग में उठा रहे हो! पानी भी कोई पीने की चीज है! वहां पीने वाले पीने वाली चीज पीते हैं। और वहां कोई ऐसा नहीं है कि कुल्हड़ में पी रहे हैं--नदियों में डुबकी मार रहे हैं! तुम सोच-समझ कर चुनना।

हिंदुओं के स्वर्ग के अपने मजे हैं। मुसलमानों के स्वर्ग के अपने मजे हैं। यहूदियों के स्वर्ग के अपने मजे हैं। ऐसी ही नरकों की भी हालत है।

मैंने सुना है, एक आदमी, था तो भारतीय, लेकिन जीवन भर रहा जर्मनी में। जब मरा तो नरक के द्वार पर उससे पूछा गया कि तुम किस नरक जाना चाहते हो? क्योंकि तुम्हारे संबंध में दुविधा है। पैदा तुम भारत में हुए, रहे तुम जर्मनी में, तो तुम्हारे लिए विकल्प है। तुम चुन सकते होः या तो जर्मनों का नरक या भारतीयों का नरक।

आदमी सोच-विचार वाला था, उसने पूछा कि दोनों में फर्क क्या है? उन्होंने कहाः फर्क... फर्क कुछ भी नहीं है। दोनों में आग में जलाए जाओगे। दोनों में मार पड़ेगी। दोनों में पीटे-कुटे जाओगे। दोनों में सताए जाओगे। सब एक सा ही है। कोई फर्क नहीं है।

उसने पूछाः फिर चुनाव के लिए क्यों पूछते हो? उसने कहाः तुम मेरी सलाह अगर लेते हो, तो थोड़े से फर्क हैं। जैसे भारतीय नरक में किसी दिन माचिस ही नहीं मिलती। माचिस भी हो तो लकड़ी नहीं जलती... गीली लकड़ी। मगर जर्मन नरक में ऐसी भूल-चूक नहीं होती। भारतीय नरक में मारने वाले सो जाते हैं, झपकी खाते हैं। जर्मन नरक में ऐसा नहीं होता। भारतीय नरक में हर आए दिन छुट्टी होती है--कभी रामनवमी, कभी कृष्णाष्टमी, कभी महावीर जयंती, कभी गांधी जयंती... कोई अंत ही नहीं है। तीन सौ पैंसठ दिन में करीब-करीब आधे दिन छुट्टियों में निकल जाते हैं। जर्मन नरक सिर्फ रविवार को बंद रहता है, मगर रविवार को जर्मन नरक के जो कर्मचारी हैं, वे अभ्यास करते हैं; छोड़ते नहीं। तुम्हारी मर्जी, जो भी चुनना हो।

उसने कहा कि मुझे एकदम भारतीय नरक में भेजो। तो तुम भी अगर जाओ--कभी न कभी जाओगे ही--तो थोड़ा सोच-समझ लेना। हर नरक, हर स्वर्ग की अपनी सुविधाएं-असुविधाएं हैं। और लोग छोटे-छोटे त्याग किए बैठे हैं और सोच रहे हैं बड़ी-बड़ी आशाएं कि उर्वशी थाल सजाए खड़ी होगी। थोड़े दिन की और है

मुसीबत, गुजार लो; थोड़े दिन और पानी छान कर पी लो--फिर तो उर्वशी ही उर्वशी। थोड़े दिन और तमाखू न खाओ।

बैकुंठ में तंबाकू चलती है। पुराने शास्त्रों में लिखा हैः ताम्बुल-चर्वण। और पान इत्यादि भी चलते हैं। विष्णु भगवान बैठे रहते हैं और लक्ष्मी जी पान बनाती रहती हैं।

तुम सोच लेना।

और इसी तरह के लोग हिसाब लगा रहे हैं। इसलिए अंधों के पीछे चलना सुगम हो जाता है, क्योंकि अंधे तुम्हें सब तरह की सुविधाएं देते हैं। किसी सदगुरु के साथ चलोगे तो कठिनाई होगी, क्योंकि वह असली जीवन को बदलने की चेष्टा करता है; ये नकली बाहर की बातों को बदलने की नहीं। तुम्हारी चेतना को बदलने की चेष्टा करता है। तुम्हारे व्यवहार को नहीं, तुम्हारे चरित्र को नहीं छूता; तुम्हारे अंतस्तल को रूपांतरित करता है।

क्यूं पकड़ो हो डालियां, नहचै पकड़ो पेड़।

गउवां सेती निसतिरो, के तारैली भेड़।।

कहीं भेड़ों को पकड़ कर कोई पार हुआ है! ऐसे ही डूबोगे, बुरे डूबोगे। समय रहते जाग जाओ। किसी तैराक का साथ करो। किसी उसका जो उस पार हो आया हो। किसी उसका जो उस पार से होकर लौटा हो और बुलाने आया हो और पुकार देने आया हो--"और है कोई लेनेहारा?"

साधां में अधवेसरा, ज्यूं घासां में लांप।

जल बिन जोड़े क्यूं बड़ो, पगां बिलूमै कांप।।

साधुओं में ऐसे बहुत से हैं--अधवेसरा, आधे-आधे, अधूरे, कुनकुने; इनसे बचना। ये न यहां के, न वहां के। न घर के न घाट के। ये धोबी के गधे हैं! ये न संसार के हैं और न परमात्मा के; ये बीच में अटक गए हैं। ये त्रिशंकु हैं।

साधां में अधवेसरा, ज्यूं घासां में लांप।

घास में ऐसी घास भी उगती है, जिसको जानवर भी नहीं खाते। वह कहने भर को घास है। तुम भैंस को छोड़ दो घास में, तुम चकित होओगेः वह कुछ घास खाती है, कुछ छोड़ देती है। वह जो भैंस छोड़ देती है घास, वह भी घास जैसा मालूम पड़ता है, लेकिन घास है नहीं। सिर्फ आभास भर है।

ऐसे ही कुछ साधु हैं, जो साधु जैसे मालूम पड़ते हैं लेकिन साधु नहीं हैं। अभी उन्हें परमात्मा का दर्शन नहीं हुआ; उसके बिना कैसी साधुता? अभी भीतर ज्योति नहीं जली; उसके बिना कैसी साधुता? अभी वे भी तुम्हारी ही तरह अंधेरे में टटोल रहे हैं। तुम दो बार भोजन करते हो, वे एक बार भोजन करते हैं। चलो इतना फर्क माना। तुम सिनेमा देख आते हो, वे सिनेमा नहीं देखते; मगर आंख बंद करके वे जो देखते हैं वह सिनेमा से बदतर है। तुम जरा साधुओं से पूछो तो कि जब आंख बंद करके बैठते हो तो क्या देखते हो? अगर वे ईमानदार हों, जरा भी ईमानदार हों, तो वे वही फिल्में देखते हैं जो तुम फिल्मों में बैठ कर देखते हो, कुछ फर्क नहीं है। वही कहानियां!

उनसे पूछो, उनके सपने क्या हैं? और उनके सपने वैसे ही हैं, शायद तुमसे भी ज्यादा भद्दे, बेहूदे। इसलिए साधु सोने तक से डरने लगते हैं, क्योंकि दिन में तो किसी तरह सम्हाले रखते हैं अपने को, मगर रात नींद में कैसे सम्हालेंगे? नींद में दिन भर का सम्हाला हुआ बांध टूट जाता है, सब संयम उखड़ जाता है। दिन भर ब्रह्मचर्य, रात सपने में कामवासना उभर आती है। दिन भर त्याग-तपश्चर्या, रात सपने में देखते हैं सम्राट हो गए। दिन से बिल्कुल उलटा होता है रात का सपना। और मैं तुमसे इतना कहता हूं क्योंकि साधुओं ने मुझे निकट

से कहा है; साधुओं को मैंने निकट से परखा है, जाना है, अवलोकन किया है। तुम्हारे सपने इतने रंगीन नहीं होते जितने साधुओं के होते हैं। तुम्हारे सपने इतने रंगीन हो ही नहीं सकते।

क्यों? किसी दिन उपवास करके देखो, तब रात में तुम्हें भोजन का मजा आएगा। तब रात में तुम्हें राज-भोज... एकदम राजा का निमंत्रण... । न अब राजा हैं, न राज-भोज होते हैं, मगर निमंत्रण तुम्हें राजा का मिलेगा। तुम्हारे नासापुट सपने में सुस्वादु भोजन की गंध से भर जाएंगे। तुमने कहानियों में पढ़े हैं छप्पन प्रकार के व्यंजन, वे सब तुम सपने में करोगे। अगर रूखी-सूखी रोटी दिन में खा ली होती तो यह सपना नहीं आता; जरूरत ही न रहती--रूखी-सूखी रोटी भी शरीर की तृप्ति कर जाती है; लेकिन शरीर तड़प रहा है, बेचैन हो रहा है, प्यास से भरा है, तो सपना पैदा होता है।

सपना, तुम जो भी दबाते हो, उसी की अभिव्यक्ति है। और चूंकि तुम्हारे साधु सर्वाधिक दबाते हैं उनके सपने बहुत रंगीन होते हैं। तुम्हारे सपने तो ऐसे समझो कि पुराने किस्म की फिल्में, बस काली और सफेद। और साधुओं के सपने टैक्नीकलर--बड़े रंगीन! थ्री-डायमेंशनल। तुमने जो ये कहानियां पढ़ी हैं कि ऋषि-मुनियों को सताने के लिए इंद्र अप्सराएं भेजता है। न कहीं कोई इंद्र है, न कहीं कोई अप्सराएं हैं। और किसी को क्या पड़ी है कि इन बेचारे गरीब ऋषि-मुनियों को जो बैठे अपने झाड़ के नीचे, न किसी को सता रहे, न किसी को परेशान कर रहे, जो सूख रहे सिर्फ अपने झाड़ों के नीचे बैठे, आत्महत्या कर रहे जोझाड़ों के नीचे बैठे--इनको सताने के लिए अप्सराएं भेजे! किसको पड़ी है? अप्सराएं खोजे-खोजे से नहीं मिलतीं, और झाड़ के नीचे बैठ गए आंख बंद करके और अप्सराएं आने लगीं... ! ये अप्सराएं आती नहीं हैं; ये ऋषि-मुनियों की दमित की गई वासनाएं हैं, जो इतने दमित की गई हैं कि अब वे खुली आंख भी सपना देख सकते हैं।

यह मनोविज्ञान का एक बुनियादी सत्य है कि अगर तुम तीन सप्ताह तक एकांत में जाकर बैठ जाओ, तो फिर तुम खुली आंख से सपना देख सकते हो, बंद आंख करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। क्योंकि अकेले बैठे-बैठे करोगे क्या? तीन सप्ताह एकांत में बैठे-बैठे तुम खुद से ही बात करने लगोगे। कभी-कभी तुम करते भी हो अपने बाथरूम में, खुद से ही बात। और कभी-कभी सड़कों पर चलते हुए लोगों को भी तुम देखोगे कि बात करते जा रहे हैं, हाथ से इशारा कर रहे हैं, कुछ गुफ्तगू चल रही है किसी से, कोई है नहीं साथ उनके। और ये कोई पागल नहीं हैं। तुम्हारे जैसे ही लोग हैं। पागल जरा और आगे चले गए कि वे दिल खोल कर बातें कर रहे हैं; खुद भी जवाब देते हैं। खुली आंख तुम्हें कोई नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन उनके पास कोई बैठा है जो उनको दिखाई पड़ता है। वही हालत उनकी हो जाती है जो दमन करते हैं।

दमन अगर करोगे तो धीरे-धीरे तुम हेल्युसिनेशन, एक तरह के विभ्रम में पड़ोगे। नहीं कोई अप्सराएं आकाश से उतरती हैं, नहीं कोई इंद्र का सिंहासन डांवाडोल होता है। न कोई सिंहासन है, न कोई इंद्र है। लेकिन तुम्हारा मन... और मन को अगर ठीक से न समझा और भेड़ों के पीछे चले, जिनको खुद भी मन का कोई पता नहीं है--तो तुम तड़फोगे, तुम व्यर्थ तड़फोगे!

साधां में अधवेसरा, ज्यूं घासां में लांप।

जल बिन जोड़े क्यूं बड़ो, पगां बिलूमै कांप।।

जरा सम्हलो। कीचड़ से भरे तालाब में उतरोगे, कीचड़ से सन जाओगे। जिसके चरणों में झुको, जरा समझो, जरा पहचानो। कोई मानसरोवर खोजो, नहीं तो कीचड़ में पड़ जाओगे। किसी बगुले के साथ दोस्ती कर ली तो कीचड़ में पड़ोगे। और बगुले बहुत हैं और बगुले बड़े अभ्यासी हैं; बड़े चरित्र का आवरण बना कर रखते

हैं! उस आवरण के बिना बगुले जी नहीं सकते। हंसों को चरित्र का आवरण बनाने की जरूरत नहीं होती; वह उनकी सहजता होती है; वह उनका स्वाभाविक, स्वस्फूर्त रूप होता है।

हुलकाझीणा पातला, जमीं सूं चौड़ा।

सदगुरु कौन? एक विरोधाभास है सदगुरु। हुलका झीणा पातला! हलका है, इतना हलका कि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण उसे खींच नहीं पाता। चलता है जमीन पर और जमीन से उसके पैर नहीं छूते। हुलका झीणा पातला! इतना महीन है, इतना सूक्ष्म है कि अगर तुम स्थूल हिसाब से नापोगे तो कभी नहीं पहचान पाओगे। स्थूल हिसाब से नापने वाला चूक जाएगा।

जैसे कोई बुद्ध के पास गया। अब अगर स्थूल हिसाब लेकर गया तो बुद्ध वस्त्र पहने बैठे हैं, उसने अगर स्थूल हिसाब बांध रखा है कि जो जिन हो जाता है उसे नग्न होना चाहिए, दिगंबर होना चाहिए, और बुद्ध दिगंबर नहीं हैं अभी तक, तो जिन नहीं हैं। इसलिए जैन बुद्ध को बुद्ध नहीं मानते, महात्मा मानते हैं, अच्छे आदमी हैं, मगर अभी पहुंचे नहीं। क्योंकि उनकी एक धारणा है कि उन्हें नग्न होना ही चाहिए, तो ही तीर्थंकर का पद हो सकता है, तो ही जिन का पद हो सकता है।

कृष्ण के साथ तो उनको बहुत दिक्कत है। बुद्ध कम से कम कपड़े पहने हैं, ठीक है, चलो चलने दो; थोड़ी सी बात है, कपड़े छूट जाएंगे। ये कृष्ण तो और भी उपद्रव हैं। ये तो पीतांबर और मोरमुकुट बांधे और बांसुरी बजा रहे हैं। और पैर में घुंघरू बांधे हैं और गोपियां नाच रही हैं। अब वह जो जैन की धारणा लेकर गया है वह तो एकदम आंख बंद कर लेगा कि यह मैं कहां आ गया, यह कहां उपद्रव में पड़ गया!

अगर तुमने स्थूल धारणाएं बना ली हैं, तुम कठिनाई में पड़ जाओगे। ऐसा ही उसके साथ होगा जिसने कृष्ण को ही धारणा बना ली है; वह महावीर के पास जाकर देखेगा, नंगधड़ंग खड़े हैं, दिमाग खराब है? होश में है यह आदमी? बांसुरी कहां है? पीतांबर कहां है? मोरमुकुट कहां है? बिना उसके कैसे कोई परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है?

जिन्होंने भी धारणाएं बना ली हैं--स्थूल धारणाएं--वे नहीं पहचान पाएंगे। सदगुरु दो एक जैसे नहीं होते। इसलिए बड़ी सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। जब भी नया सदगुरु पैदा होगा जगत में, तब तुम्हें नई दृष्टि पैदा करनी होगी। तुम्हारी पुरानी धारणाएं काम न आएंगी।

हुलकाझीणा पातला, जमीं सूं चौड़ा।

इतना हलका, इतना झीना, इतना ना-कुछ जैसा कि न उसका बोझ पड़ता, न उसके चलने से आवाज होती; फिर भी पृथ्वी से भी बड़ा विस्तीर्ण है। ऐसा विरोधाभास! सदगुरु सदा विरोधाभासी होगा, क्योंकि उसके भीतर सारे द्वंद्व समाप्त हो गए हैं और निर्द्वंद्व का जन्म हुआ है। दो मिल कर एक हो गए हैं। वह स्त्री जैसा कोमल, पुरुष जैसा कठोर। वह कमल जैसा कोमल और पत्थर जैसा कठोर; दोनों एक साथ होगा। वह छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा।

जोगी ऊंचा आभ सूं...

आकाश जैसी उसकी ऊंचाई होगी और विस्तार होगा।

... राई सूं ल्होड़ा।

और राई जैसा छोटा! दोनों एक साथ होंगे। एक तरफ वह कहेगाः मैं हूं ही नहीं! और दूसरी तरफ कहेगाः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! एक तरफ कहेगाः मेरा मुझमें कुछ नहीं! और दूसरी तरफ घोषणा करेगाः अनलहक! मैं

ही सत्य हूं! मैं ही द्वार हूं परमात्मा का! मैं ही मार्ग हूं! एक तरफ कहेगाः मैं मिट गया हूं। जीसस ने कहाः "मैं नहीं हूं"--एक तरफ; और दूसरी तरफ कहा कि जिनको भी पहुंचना है मुझसे ही पहुंचना होगा।

कृष्ण एक ओर शून्य हैं, बिल्कुल शून्य हैं। इसलिए तो हमने उन्हें पूर्णावतार कहा, क्योंकि शून्य में ही पूर्ण का अवतरण हो सकता है। और दूसरी तरफ अर्जुन से कहते हैंः सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज! छोड़-छाड़ सब धर्म इत्यादि, आ मेरी शरण!

होफां ल्यो हरनांव की...

और अगर चिलम ही भरनी हो तो गांजे की मत भरो, हरिनाम की भरो।

होफां ल्यो हरनांव की, अमीं अमल का दौर।

और अगर चिलम का दौर ही चलाना हो या अगर मधु का दौर ही चलाना हो, तो क्या छोटा-मोटा मधु--अमृत को ही क्यों न पीओ! क्यों न अमृत को ही ढालें हम!

फर्क समझना। साधारण अधकचरा साधु तुमसे कहेगाः चिलम मत पीओ! पहुंचा हुआ सिद्धपुरुष कहेगाः चिलम ही पीनी है, हरिनाम की पीओ! साधारण कुनकुना साधु तुमसे कहेगाः शराब नहीं पीओ! पहुंचा हुआ सिद्धपुरुष तुमसे कहेगाः शराब ही पीनी है, तो आओ मेरी मधुशाला में! यह क्या शराब तुम पी रहे हो जो अंगूरों से ढलती है! हम तुम्हें आत्मा से ढली हुई शराब पिलाएं। अमीं अमल का दौर! आओ अमृत को पीएं।

फर्क? साधारण साधु नकारात्मक होगा और सच्चा साधु विधायक होगा। कच्चा साधु छोड़ने पर जोर देगा--यह छोड़ो, यह छा.ेडो, यह छोड़ो। कच्चा साधु त्याग सिखाएगा। पक्का साधु भोग सिखाएगाः कहेगाः "परमात्मा को भोगो, यह क्या भोग रहे हो! आओ तुम्हें बड़े साम्राज्य की तरफ ले चलें।" तुम्हें और बड़ा सम्राट बनाएगा।

होफां ल्यो हरनांव की, अमीं अमल का दौर।

साफी कर गुरु-ज्ञान की...

चिलम को लपेटने का जो कपड़ा होता है, उसको कहते हैं, साफी। साफी कर गुरु-ज्ञान की! और चिलम को लपेटना है, तो गुरुज्ञान से लपेट।

... पियोज आठूं प्होर।

और ऐसा क्या कभी एकाध दम मारी, आठों पहर पी! दिल खोल कर पी! पीता ही रह, अहर्निश पी!

इस बात को अंततः फिर दोहरा दूं कि जीवन में जिन्होंने भी सत्य जाना है उन्होंने सदा कहा हैः परमात्मा को पाओ, फिर व्यर्थ तो अपने आप छूट जाता है। और जिन्होंने सत्य नहीं जाना, वे कहते हैंः पहले व्यर्थ को छोड़ो, फिर परमात्मा मिलेगा। और दूसरी कोटि की जो बात है, मूलतः गलत है। ऐसी ही गलत है जैसे कोई तुमसे कहेः पहले अंधेरे को हटाओ फिर दीया जलेगा। अगर तुम अंधेरे को हटाने में लग गए तो अंधेरा हटेगा ही नहीं, दीया तो जलेगा क्यों! अंधेरा कोई हटा सकता है?

नहीं; दीया जलाओ, अंधेरा अपने से चला जाता है। ठीक तो नहीं है कहना कि चला जाता है; भाषा की भूल है। क्योंकि अंधेरा था ही नहीं, कहीं जाता-आता नहीं। अंधेरा तो सिर्फ प्रकाश का अभाव है। जैसे ही प्रकाश का भाव होता है, अंधेरा नहीं पाया जाता। कोई अंधेरे को नहीं हटा सकता। कोई पाप को नहीं मिटा सकता। कोई अज्ञान को नहीं जला सकता।

ज्ञान की ज्योति जलाओ! ज्ञान का दिया जलाओ। और ज्ञान के दीये को जलाने का जो उपाय है, वह ध्यान है। ध्यान का तुम्हारे भीतर अंतस्तल हो तो उसमें अपने आप ज्ञान का दीया जलता है। वह दीया परमात्मा तक

पहुंचा देगा। वह दीया तत्क्षण परमात्मा को प्रकट करवा देगा। वह दीया पर्याप्त है--वेदों का वेद, उपनिषदों का उपनिषद! फिर सब शास्त्र फीके पड़ जाते हैं, जब अपने ही शास्त्र का जन्म होता है।

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

हीर कटोरा हो गया रीता

पहला प्रश्नः ओशो! कैसे पता चले कि प्रेम कितना सपना है और कितना सच?

योग चिन्मय! प्रेम तो बस सपना ही सपना है--लेकिन एक विशिष्ट सपना, जो जागरण के बहुत करीब है। भोर का सपना! सुबह-सुबह होने को है। नींद चली भी नहीं गई। नींद है, ऐसा भी कहना कठिन। हलकी-हलकी नींद है। हलका-हलका जागरण भी है। ऐसी मध्य की अवस्था है। संध्याकाल है प्रेम। न रात, न दिन। बस सुबह होने को है, मगर अभी हो नहीं गई। आकाश लाल होने लगा है। बदलियों में रंग आने लगा है सूरज की किरणों का, लेकिन सूरज अभी प्रकट नहीं हुआ, क्षितिज के नीचे दबा है। होता ही है। अब हुआ, अब हुआ।

प्रेम सपना है, लेकिन जागरण के सर्वाधिक करीब। और भी सपने हैं। घृणा भी सपना है, लेकिन जागरण से सर्वाधिक दूर। घृणा है आधी रात का सपना, प्रेम है भोर का सपना। इसलिए जिन्हें जागना है उन्हें प्रेम का सपना देखना होता है।

घृणा के सपने से जागना बहुत कठिन है। प्रेम के सपने से जागना आसान है; जागना जरूरी नहीं है, अनिवार्यता नहीं है। क्योंकि सुबह भी हो जाए और तुम न चाहो जागना, तो न जागो। सूरज भी निकल आए और तुम्हें सोना है तो तुम सोए ही रहो। तुम जाग कर भी तो आंखें बंद रख सकते हो।

एक दिन सुबह-सुबह उठ कर मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उससे कहाः मुल्ला, रात नींद में तुम बहुत मुझे गालियां दे रहे थे, बहुत गड़बड़ा रहे थे। बहुत अंटशंट बोल रहे थे।

मुल्ला ने कहाः कौन बेवकूफ सो रहा था?

सोए को जगाना तो आसान है; जागे को जगाना बहुत मुश्किल। जागा तो बन कर पड़ा है, चादर ओढ़ ली है, आंख बंद कर ली है। जागा तो तय कर लिया है कि जागेगा नहीं। सोया है तो झकझोर दो। उसे पता नहीं है सोया है, तो झकझोरने में जाग जाएगा। लेकिन जो जागा है, झकझोरो तो भी न जागेगा; उसे तो पता है। उसने तो तय किया कि जागना नहीं है।

तो सुबह हो जाने से ही कुछ नहीं होता। प्रेम हो जाने से ही कुछ नहीं होता। प्रेम हो-हो कर भी लोग चूक जाते हैं। मंदिर के द्वार तक आ-आ कर मुड़ जाते हैं। सीढ़ियां चढ़-चढ़ कर लौट जाते हैं।

प्रेम तो बहुत बार जीवन में घटता है, मगर बहुत थोड़े से धन्यभागी हैं जो जागते हैं। जो जाग जाते हैं, उनके प्रेम का नाम प्रार्थना है। जागे हुए प्रेम का नाम प्रार्थना है। सोई हुई प्रार्थना का नाम प्रेम है।

प्रेम तो सपना ही सपना है।

तुम पूछते होः कितना सपना, कितना सच?

कहीं सपना और सच मिलते हैं? कहीं सपने और सच का कोई तालमेल हो सकेगा, कि इतने प्रतिशत सपना, इतने प्रतिशत सच? कहीं अंधेरे और रोशनी को मिला पाओगे? या तो अंधेरा होगा या रोशनी होगी। कहीं जीवन और मौत को मिला पाओगे? या तो जीओगे या नहीं जीओगे; बीच में नहीं हो सकोगे।

प्रेम तो सपना ही सपना है--मगर बड़ा प्रीतिकर, मधुर, सुस्वादु, लेने योग्य।

और जब मैं कहता हूं प्रेम अनुभव करने योग्य सपना है, तो ध्यान रखना, यह वक्तव्य सापेक्ष है। सभी वक्तव्य सापेक्ष हैं। मैं घृणा की तुलना में कह रहा हूं कि प्रेम जीने योग्य सपना है। मैं प्रार्थना की तुलना में नहीं कह रहा हूं। प्रार्थना की तुलना में तो जितने जल्दी प्रेम से भी जाग जाओ, उतना शुभ। और फिर प्रार्थना के पार परमात्मा है।

तो प्रेम की तुलना में प्रार्थना बेहतर, लेकिन प्रार्थना में ही अटके मत रह जाना। पूजा-पाठ और अर्चन और प्रार्थना और निवेदन--यही सब न हो जाए। डूबना है ऐसे कि प्रार्थी और प्रार्थ्य दो न रह जाएं, कि भक्त और भगवान दो न रह जाएं।

प्रार्थना भी छूट जानी चाहिए एक दिन, क्योंकि प्रार्थना भी थोड़ा शोरगुल है। प्रार्थना भी थोड़ी सी विचार की छाया है। संसार गया, लेकिन उसकी कुछ रेखाएं छूट गई हैं। यात्री तो गुजर गया, उसके पदचिह्न रह गए हैं। यात्रा का तो अंत हो गया, लेकिन यात्रा में जमी धूल अभी भी तुम्हारे वस्त्रों पर है। उसे भी धो डालना है।

प्रार्थना में भी कहीं न कहीं थोड़ा सा "मैं" शेष रहता है। कौन करेगा प्रार्थना? और जहां "मैं" है वहां अभी भ्रांति मौजूद है। प्रेम में "मैं" कटता है, काफी कटता है। प्रार्थना में और भी कट जाता है; बस छाया रह जाती है। लेकिन छाया भी काफी है भटकाने को। छाया के पीछे भी चल पड़े अगर, तो भटक जाओगे, बहुत दूर चले जाओगे। छाया भी जानी चाहिए।

घृणा का जगत है, जहां लोग जी रहे हैं। चूंकि लोग घृणा में जी रहे हैं, मैं प्रेम की बात करता हूं। जो प्रेम में जीने लगेंगे, उनसे तत्क्षण मैं प्रार्थना की बात करना शुरू कर दूंगा। जो प्रार्थना में जीने लगेंगे, उनसे तत्क्षण मैं परमात्मा की बात करना शुरू कर दूंगा। छोड़ते चलना है, तोड़ते चलना है। अतिक्रमण और अतिक्रमण। अंततोगत्वा वहां पहुंच जाना है जहां "मैं" बचे ही न, "वही" बचे! तत्त्वमसि! एक ही बचे, दो न बचे।

जहां तक दो हैं, वहां तक सपना है। प्रेम करोगे न किसी को? दो हैं। जैसे घृणा करोगे न किसी को? तो दो हैं। मगर घृणा जहरीला नाता है और प्रेम--बड़ा मधुर, मीठा! प्रार्थना बड़ी अमृतपूर्ण है, पर फिर भी दो हैं--भक्त है और भगवान है। पराकाष्ठा तो तब है, जब दुई न रह जाए; जब भक्त और भगवान एक हो जाएं; जब भक्त भगवान हो, जब भगवान भक्त हो।

उस परम घड़ी की प्रतीक्षा करो। सत्य वहां है। उसके पहले तो सब असत्य की मात्राएं हैं--कम-ज्यादा। और जब तक असत्य की थोड़ी सी भी मात्रा शेष है, चाहे होम्योपैथिक मात्रा ही क्यों न हो, तो भी सजग रहना; उतनी मात्रा भी विदा करनी है।

किसने कहा--वह फूल है?
किसने कहा--वह शूल है?

प्रातः हुई--सब रूप है,
प्रातः हुई--सब रंग है,
दिन का प्रकाश उछाह है,
दिन का प्रकाश उमंग है।
पर मौन सूनी सी अमा,

निज "नास्ति" की ले कालिमा,
निःश्वास भर कर कह उठी--
"जो कुछ यहां वह भूल है!"

तब चेतना ले, ज्ञान ले
नभ पर यहां मानव चढ़ा
रवि-शशि बने उसके नयन,
निःसीम को उसने गढ़ा,

पर वह अचानक रुक गया,
पर शीश उसका झुक गया,
ले गोद में उसका धरा
ने कह दिया--"तू धूल है!"

यहां सब धूल है! यहां तुम जो भी देखोगे, सोचोगे, विचारोगे--मन का ही खेल है। तुम्हारा बड़े से बड़ा प्रेम भी, तुम्हारा श्रेष्ठ से श्रेष्ठ प्रेम भी सुंदर सपना है--सजा हुआ, हीरे-जवाहरात जड़ा, मणि-माणिक्य पटा, सिंहासन पर विराजमान! पर सपना फिर भी सपना है।

जागना है! पूरे जागना है! और जागरण में "मैं" नहीं पाया जाता। और जहां "मैं" नहीं, वहां कैसा सपना! कौन देखेगा सपना? जहां "मैं" नहीं, वहां रह जाती है सिर्फ साक्षी चेतना। वहां कोई दृश्य नहीं रह जाता--सिर्फ द्रष्टा रह जाता है। और द्रष्टा का जो अनुभव है उसे चाहो समाधि कहो, चाहे निर्वाण कहो, चाहे कैवल्य कहो, जो तुम्हारी मर्जी हो।

समाधि में, निर्वाण में, कैवल्य में सत्य है। उसके पहले बस ढंग-ढंग के असत्य हैं।

बहुत असत्य हैं इस बाजार में। यह असत्य का बाजार है। ढंग-ढंग के असत्य हैं, रंग-रंग के असत्य हैं। बहुत दुकानदार हैं और बहुत ढंग से सौदे को बेच लेने वाले कुशल होशियार लोग हैं। सावधान रहना! होशियार रहना! जागे रहना!

योग चिन्मय! प्रेम सपना ही सपना है।

लेकिन हमारी अड़चन क्या है? हमारी अड़चन यह है कि अगर मैं तुमसे कहूं प्रेम सपना ही सपना है, तो तुम कहते होः फिर प्रेम में क्या धरा? और मजा यह है कि प्रेम में क्या धरा, ऐसा सोच कर तुम प्रार्थना की तरफ न जाओगे, तुम्हारी जिंदगी में घृणा भर जाएगी। यह हजारों-हजारों संन्यासियों के जीवन में हुआ है। यह सारा देश इसी तरह पीड़ित है, परेशान है। सब सपना है, प्रेम सपना है। दया, ममता, मोह--सपना है। सब सपना है। बात सच है, लेकिन परिणाम क्या है? दया भी सपना है, करुणा भी सपना है; इससे क्रोध नहीं गया। तुमने दुर्वासा जैसे मुनि पैदा किए। इससे घृणा नहीं गई। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी इस जगत को बहुत घृणा करते हैं। साधारण आदमी तो कभी-कभी किसी को घृणा करता है, लेकिन तुम्हारे महात्मा तो आकंठ घृणा से भरे हैं। हर चीज से घृणा है! हर चीज की निंदा है। हर चीज पाप है। यह तो प्रेम तो नहीं आया; प्रार्थना की तो बात दूर; परमात्मा तो बहुत-बहुत दूर--यह तो पतन हो गया! यह तो घृणा सब कुछ हो गई।

ख्याल करते हो, कोई आदमी अपनी पत्नी को प्रेम करता है और फिर यह सोच कर कि सब प्रेम सपना है, पत्नी-बच्चों को छोड़ कर जंगल भाग जाता है--यह भागना सपना नहीं है? यह पति, पत्नी और बच्चों को छोड़ कर चला आया है; इसमें कहीं गहरी घृणा है, कहीं गहरा जहर है। यह सपना नहीं है? यह भी उतना ही सपना है।

अगर राग सपना है तो विराग भी सपना है। और अगर संसार सपना है तो त्याग भी सपना है। संसार ही अगर सपना है तो त्याग तो और भी बड़ा सपना है--सपने के भीतर सपना है।

अगर संसार है ही नहीं तो त्यागते क्या हो? जो नहीं है वह भी त्यागा जा सकता है? जो है वही त्यागा जा सकता है। तो त्यागियों का अहंकार भोगियों के अहंकार से ज्यादा गर्हित है, ज्यादा नारकीय है। भोगी का अहंकार क्षम्य है; त्यागी का अहंकार क्षम्य भी नहीं, क्योंकि वह और पतित हो गया। और तुम्हारे तथाकथित त्यागियों के अगर तुम पास बैठोगे तो सिवाय अहंकार के और कुछ भी न पाओगे। महा अहंकार पाओगे! भोगियों को तो वे ऐसे देखते हैं जैसे कीड़े-मकोड़े! भोगियों को तो वे नरक भेजने बैठे हैं। भोगियों को तो वे जानते हैं कि सबको नरक में सड़ना है--सड़ोगे! उनके भीतर यही बात उठ रही है बार-बार, कि सड़ोगे! अभी कर लो थोड़ा भोग, अभी कर लो थोड़ा मजा... ।

ईर्ष्या है इस भाव में कि सड़ोगे! क्योंकि अभी कर लो थोड़ा मजा, फिर हम मजा करेंगे शाश्वत तक, अनंतकाल तक--स्वर्ग में, मोक्ष में! और तुम सड़ोगे नरक में। याद रखना, भूल मत जाना। कीड़े-मकोड़े काटेंगे। आग के कड़ाहों में उबाले जाओगे। सब तरह की यातनाएं दी जाएंगी। कर लो अभी भोग थोड़ा।

तुम्हारे महात्मा बैठे-बैठे मन यह मजा ले रहे हैं कि कर लो थोड़ा, और चार दिन की कहानी, फिर अंधेरी रात! चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात! फिर हम देखेंगे बैठ कर ऊपर से, देखेंगे मुजरा। देखेंगे नाटक। फिर सड़ोगे नीचे, फिर गलोगे नीचे। फिर समझोगे। कितना समझाया था, पहले न समझे।

यह सब ईर्ष्या है।

संसार की निंदा जो कर रहा है, वह अभी समझा नहीं कि संसार सपना है। तुम्हारे शास्त्रों में संसार की ऐसी निंदा भरी है--और वे ही शास्त्र कहते हैं कि संसार माया है! फिर निंदा किसकी कर रहे हो? और तुम्हारे शास्त्रों में त्याग की बड़ी महिमा है--और साथ ही संसार माया है। जरा मूढ़ता देखते हो! ऐसा छोटा सा गणित भी तुम्हारी समझ में नहीं आता कि अगर संसार माया है तो फिर त्याग की महिमा क्या है?

जैन शास्त्र कहते हैंः महावीर ने इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने स्वर्ण-रथ त्यागे। अगर यह सब सपना है, तो गधे त्यागे कि घोड़े कि हाथी, क्या फर्क पड़ता है? तुम सुबह जाग कर यह तो घोषणा नहीं करते मोहल्ले में कि रात सपने में स्वर्ण-रथ देखे, त्याग कर दिए--सुबह उठते ही सब त्याग कर दिए! लोग हंसेंगे। तुम्हारे हाथी सपने के उतने ही झूठे हैं जितने गधे। और तुम्हारा स्वर्ण सपनों का उतना ही झूठा है जितनी मिट्टी।

महाराष्ट्र की ही एक प्यारी कथा है। रांका नाम का एक साधु हुआ। उसकी पत्नी को नाम मिला--बांका। इसी कहानी के आधार पर नाम मिला--बांका। बांकी औरत रही होगी। रांका को मात कर गई। दोनों त्यागी, फिर भी भेद दोनों में। पति तो त्यागी था ऐसा, जैसे त्यागी होते हैं--चेष्टा से, संयम से, समझा-बुझा कर, नियंत्रण से, अपने को रोक-राक कर, किसी तरह व्रत-उपवास में अपने को बांध कर। बोध से नहीं, योग से। संयमी था, त्यागी था।

लेकिन पत्नी अदभुत थी। बोध से... । वहां घोषणा भी न थी त्याग की। चुपचाप थी। स्वाभाविक थी। बात दिख गई थी कि सब व्यर्थ है, बस बात खत्म हो गई। छोड़ना क्या है, पकड़ना क्या है?

दोनों लड़कियां काट लाते, बेच लेते; जो मिल जाता उससे भोजन चल जाता। एक दिन तीन दिन तक वर्षा हो गई बेमौसम, आशा नहीं थी। वर्षा का पता होता तो लकड़ियां थोड़ी जोड़ लेते थे, मगर बेमौसम अचानक वर्षा हो गई, तो तीन दिन तक लड़कियां न काट सके। एक पैसा पास में न था। तो तीन दिन उपवास किया। तीन दिन के बाद गए लकड़ी काटने। लकड़ियां काट कर लौटते हैं; पति आगे है, पत्नी पीछे है। राह के किनारे रांका को दिखाई पड़ा कि किसी राहगीर की, किसी घुड़सवार की, मालूम होता है थैली गिर गई। थैली खोली तो स्वर्ण-अशर्फियों से भरी है। त्यागी आदमी था, महात्मा था! उसने कहाः छी छी! कहां मैंने सोना छू लिया! सोना तो मिट्टी है! फिर उसे ख्याल आया कि मेरी पत्नी पीछे आ रही है।

पतियों को पत्नियों पर तो कभी भरोसा होता ही नहीं! कम से कम त्याग के संबंध में तो नहीं होता। ... पता नहीं इसका मन डांवाडोल हो जाए! और शास्त्र कहते भी हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। अब यह मौका है, अगर यह जिद पकड़ गई, तो झंझट होगी। कहेगी कि "हमेशा के लिए झंझट मिट जाएगी, बस यह उठा लो। परमात्मा की भेजी हुई चीज है, क्यों छोड़ना! कोई हमने चुराई तो नहीं है! अगर इसका मालिक मिल जाएगा तो लौटा देंगे।" ऐसी सब बातें रांका के मन में उठीं कि कहीं पत्नी जोर न दे, तीन दिन की भूख भी है, प्यास भी है, उम्र भी बढ़ गई है, बुढ़ापा भी करीब आ रहा है, लकड़ी काटने में भी मुश्किल होने लगी है, कहीं मन डांवाडोल न हो जाए! कमजोर ही तो मन है आखिर।

तो इसके पहले कि पत्नी आए, उसने एक गड्ढे में डाल कर पूरी थैली को मिट्टी से ढांक दिया। बस आखिरी मिट्टी डाल रहा था कि पत्नी आ गई। पत्नी ने पूछाः रांका, क्या करते हो? कसम खाई थी सच बोलने की, इसलिए सच बोलना पड़ा।

ख्याल रखना, कसमों से जो सच बोले जाते हैं वे सच नहीं होते। सहज जो सत्य होते हैं, वे ही सत्य होते हैं। मजबूरी थी, आज बोलना तो झूठ चाहता था। कहना तो चाहता थाः कुछ नहीं। मन में तो सवाल उठा कि कह दूं कि एक सांप था, उसको मिट्टी से दबा दिया कि किसी राहगीर को काट न दे। मगर कसम खा ली थी कि सच बोलना है, झूठ नहीं। तो उसने कहाः क्षमा कर, तूने पूछा तो सच बोलना पड़ेगा। मगर बात यहीं समाप्त हो जाए, इससे आगे नहीं बढ़ानी है। यहां एक थैली पड़ी थी, खोली तो स्वर्ण-अशर्फियों से भरी थी। यह सोच कर कि कहीं तेरा मन न डोल जाए, थैली को डाल कर गड्ढे में मिट्टी से पूर रहा था, कि तुझे थैली दिखाई न पड़े।

उसकी पत्नी हंसने लगी और उसने कहाः तो तुम्हें अभी सोने और मिट्टी में भेद दिखाई पड़ता है? तो वह तुम मुझसे बार-बार कहते थे कि सोना मिट्टी है, वह बात सच नहीं थी फिर? फिर मिट्टी में मिट्टी को दबा रहे हो? थोड़े शर्म खाओ। थोड़ा होश सम्हालो। अगर सोना मिट्टी है, तो फिर मिट्टी में मिट्टी को क्या दबा रहे हो? और अगर सोना मिट्टी नहीं है, तो दबाने से क्या होगा? सोना सोना है। हालांकि तुमने छोड़ा, मगर तुम छोड़ नहीं पाए।

उस दिन उसकी पत्नी को नाम मिला--बांका। अदभुत महिला रही होगी। बड़े बोध की महिला रही होगी। लोग छोड़ भी देते हैं तो भी छूटता कहां? समझा-बुझा कर छोड़ देते हैं कि सब माया है, सब सपना है; मगर समझा-बुझा कर। यह दिखाई नहीं पड़ रहा है। यह उनका अंतर-दर्शन नहीं है।

तुम्हारे शास्त्र भरे पड़े हैं संसार की निंदा से और साथ ही कहते हैं कि संसार माया है। ये दोनों बातें सच नहीं हो सकतीं। अगर संसार माया है तो निंदा व्यर्थ है। और अगर निंदा सार्थक है तो संसार माया नहीं है।

तुम्हारे शास्त्र रांकाओं ने लिखे हैं, बांकाओं ने नहीं। कितनी महिमा गाई गई है त्याग की और कितनी निंदा संसार की! दोनों ही व्यर्थ बातें हैं। न संसार में कुछ महिमा गाने योग्य है और न कुछ निंदा करने योग्य है। देख लो, मुस्कुरा लो। समझ लो और सम्हल जाओ।

प्रेम तो सपना ही सपना है। लेकिन फिर याद दिला दूंः घृणा की तुलना में कह रहा हूं। क्योंकि यहां सभी वक्तव्य तुलना के होते हैं। कोई वक्तव्य निरपेक्ष नहीं हो सकता। वक्तव्य मात्र साक्षेप होते हैं।

जब अलबर्ट आइंस्टीन ने पहली बार सापेक्षता का सिद्धांत खोजा, तो बड़ी जटिल प्रक्रिया है उस सिद्धांत को समझने की। कहते हैं कि पृथ्वी पर केवल दस-बारह ही लोग ऐसे थे जो अलबर्ट आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को ठीक से समझते थे। मगर जहां भी अलबर्ट आइंस्टीन जाता, लोग उससे पूछते कि समझाइए, सापेक्षता का सिद्धांत क्या है? वह भी बड़ी मुश्किल में पड़ता था। समझाना कुछ आसान मामला था भी नहीं। बात बहुत जटिल है और सूक्ष्म है। मगर जीवन का बहुत गहरा सत्य है उसमें। महावीर ने इसी सापेक्षता के सिद्धांत का स्यातवाद कहा है। जो महावीर ने धर्म के जगत में किया था, वही अलबर्ट आइंस्टीन ने विज्ञान के जगत में किया है। ढाई हजार साल के फासले पर अलबर्ट आइंस्टीन ने पुनः उसी सिद्धांत की स्थापना की है जो महावीर ने की थी। मगर वैज्ञानिक आधारों पर! महावीर की बात तो केवल एक वैचारिक उदघोषणा थी।

महावीर की बात भी कठिन है, इसलिए महावीर को बहुत अनुयायी नहीं मिले। बात जटिल है। और जो महावीर के अनुयायी तुम्हें दुनिया में दिखाई भी पड़ते हैं, वे भी पैदाइशी हैं, उनकी भी समझ में कुछ नहीं है। कुछ थोड़े से लोग महावीर से दीक्षित हुए होंगे, बहुत थोड़े से लोग। आज भी जैनों की संख्या मुश्किल से तीस लाख है। अगर तीस जोड़े महावीर से दीक्षित हो गए हों तो पच्चीस सौ साल में उनके बाल-बच्चे बढ़ते-बढ़ते तीस लाख हो जाएंगे। कोई बहुत ज्यादा लोग महावीर से दीक्षित नहीं हुए होंगे। आदमी भी चूहों जैसे बढ़ते हैं, कम से कम इस देश में तो बढ़ते ही हैं।

अलबर्ट आइंस्टीन की बात भी बहुत लोग नहीं समझ पाते थे, तो उसने एक समझाने के लिए उदाहरण खोज रखा था। जब भी कोई पूछता तो वह कहता कि सिद्धांत तो जरा जटिल है, लेकिन एक उदाहरण, उससे शायद तुम्हें समझ में आ जाए। तो वह कहता कि तुम्हें किसी ने गरम तवे पर बिठा दिया, घड़ी सामने है, टिक-टिक करके घड़ी सेकेंड-सेकेंड आगे बढ़ रही है। तवा गर्म होता जा रहा है। तुम उत्तप्त होते जा रहे हो। तुम घबड़ाने लगे। और तुम पसीना-पसीना हुए जा रहे हो। तो तुम्हें कुछ ही सेकेंड ऐसे मालूम पड़ेंगे जैसे कुछ घंटे बीत गए। और अगर घंटे भर उस गरम तवे पर बैठे रहना पड़े तो ऐसा लगेगा जैसे कि वर्षों बीत गए हैं।

दुख में समय लंबा हो जाता है। घड़ी तो अपनी ही चाल से चलती है। लेकिन गरम तवे पर बैठे आदमी को लगेगा कि घड़ी भी बेईमान, आज धीमे चल रही है। टिक-टिक भी आज आहिस्ता-आहिस्ता हो रहा है। आज ही सूझा था इस घड़ी को भी! रोज जाती थी गति से, आज बड़ी मंथर है। आज जैसे झिझक-झिझक कर चल रही है। जैसे आज मुझे सताने का तय ही कर रखा है।

और आइंस्टीन यह भी कहता कि समझो कि वर्षों से बिछड़ी हुई तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिल गई आज। वही घड़ी। तुम अपनी प्रेयसी का हाथ हाथ में लिए, पूर्णिमा की रात, बैठे हो आकाश के तले। वही घड़ी, अब भी टिक-टिक कर रही है; लेकिन अब घंटे ऐसे बीत जाएंगे जैसे क्षण बीते। रात ऐसे बीत जाएगी जैसे अभी आई अभी गई, हवा के झोंके की तरह। तुम्हारा मन कहेगाः बेईमान घड़ी, आज बड़ी तेज चली!

घड़ी तो वही है, घड़ी की चाल वही है। घड़ी को पता भी नहीं है कि तुम कब गरम तवे पर बैठे थे और कब प्रेयसी का हाथ हाथ में लिए थे। घड़ी को न तुम्हारी अमावस का पता है, न तुम्हारी पूर्णिमा का। घड़ी तो

यंत्र है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो मनोवैज्ञानिक बोध है समय का, वह लंबा हो जाएगा, छोटा हो जाएगा। तुम्हारा मनोवैज्ञानिक जो बोध है समय का, वह तुम्हारी अनुभूतियों पर निर्भर होता है। जब सुखद होगी अनुभूति तो समय थोड़ा हो जाता है और जब दुखद होगी तो लंबा हो जाता है। बहुत दुखद होगी तो बहुत लंबा हो जाता है। बहुत सुखद होगी तो बहुत छोटा हो जाता है।

इसलिए परम आनंद का जो क्षण है, समाधि का जो क्षण है, उसमें समय मिट ही जाता है, समय बचता ही नहीं। और जो महादुख का क्षण है, जिसको हम नरक कहते हैं। ईसाइयों का कथन ठीक है कि नरक अनंत है। उस संबंध में मैं ईसाइयों से राजी हूं--बजाय हिंदू, जैनों, बौद्धों के। हालांकि उनका सिद्धांत तर्क से बैठता नहीं।

बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी--वाय आइ एम नॉट ए क्रिश्चियन? क्यों मैं ईसाई नहीं हूं? उसमें बहुत दलीलें दी हैं अपने ईसाई न होने की। उसमें खास दलील यह दी है कि ईसाइयत अन्यायपूर्ण है। छोटे-मोटे पापों के लिए अनंतकाल तक नरक भोगना पड़ेगा! और बात तर्कयुक्त है। और बर्ट्रेंड रसल इस सदी के सर्वाधिक तर्कयुक्त व्यक्तियों में एक था। उसका कहना ठीक है, कि मैंने इस जिंदगी में जितने पाप किए हैं, कठोर से कठोर न्यायाधीश भी मुझे चार साल से ज्यादा की जेल नहीं दे सकता। और अगर मैं वे पाप भी गिना दूं जो मैंने किए नहीं, करना चाहता था, तो भी आठ साल से ज्यादा की सजा मुझे नहीं दी जा सकती। चलो आठ नहीं, अस्सी साल दे दो; अस्सी नहीं आठ सौ साल दे दो; आठ सौ नहीं, आठ हजार साल दे दो--मगर अनंतकाल! टुच्चे-टुच्चे पापों के लिए अनंतकाल तक सड़ाओगे नरक में! यह बात ज्यादती की है। गणित में बैठती नहीं।

लेकिन बर्ट्रेंड रसल चूक गया, समझा नहीं। और मुझे हैरानी होती हैः क्यों चूक गया! क्योंकि बर्ट्रेंड रसल ने अलबर्ट आइंस्टीन के ऊपर सर्वाधिक महत्वपूर्ण किताब लिखी है--ए बी सी ऑफ रिलेटिविटी। शायद सर्वाधिक समझने योग्य किताब बर्ट्रेंड रसल ने ही लिखी है। अलबर्ट आइंस्टीन ने भी उसकी किताब की प्रशंसा की थी, कि इस किताब से बहुत लोग समझ सकेंगे, इतनी सुगमता से बात समझा दी है। ए बी सी! बिल्कुल क ख ग! सरलता से कि सामान्यजन, जो कोई विशेषज्ञ नहीं है भौतिकी का, वह भी समझ ले; गणित की जिसे बहुत ऊंचाई का पता नहीं है, वह भी समझ ले। तब मैं चकित होता हूं कि बर्ट्रेंड रसल ने सापेक्षवाद पर इतनी बहुमूल्य किताब लिखी, फिर भी उसे यह कभी ख्याल न आया सपने में भी कि यह नरक की अनंतता की बात भी कहीं सापेक्षवाद के सिद्धांत से संबंधित तो नहीं है!

उससे ही संबंधित है। अनंत नहीं है नरक। लेकिन नरक की पीड़ा इतनी चरम है कि अनंत मालूम होती है। जैसे समाधि का आनंद इतना गहन है कि कालातीत हो जाता है, समय विलीन हो जाता है--ऐसे ही नरक में समय ही समय रह जाता है, अंतहीन! अंत आता ही नहीं मालूम होता। नरक में कभी सुबह नहीं होती--रात इतनी लंबी मालूम होती है! स्वर्ग में कभी रात नहीं होती--दिन इतना लंबा मालूम होता है। ये अंतरप्रतीतियां हैं।

जिन लोगों ने कहा है कि त्याग बड़ा महिमापूर्ण है, निश्चित ही यह उनकी अंतरप्रतीति है कि वे अभी भोग से ग्रस्त हैं; अभी उनको धन ने पकड़ा है। धन के त्याग की चर्चा कर रहे हैं, क्योंकि धन में अभी उनका लोभ लगा है। अभी भी हाथी-घोड़ों की गिनती कर रहे हैं--कितने छोड़े!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। स्वर्ण-अशर्फियां लाया था भर कर एक झोले में। और आकर उसने रामकृष्ण के चरणों में चढ़ा दी झोली और कहा कि लें, ये हजार स्वर्ण-अशर्फियां हैं। कहना नहीं भूला--हजार! हजार जरा जोर से ही कहा। आस-पास बैठे सब लोगों को सुनाई भी पड़ जाए। हजार स्वर्ण-अशर्फियां उन दिनों

बहुत बड़ी बात थी। रामकृष्ण ने कहाः हजार हों कि दस हजार, अब यह झंझट, इनकी कौन देख-रेख करेगा? तू एक काम कर... तूने तो मुझे दे दी न?

उस आदमी ने कहाः आपके चरणों में समर्पित है। तो उन्होंने कहाः अब तू मेरी मान। इनको ले जा और गंगा में सिरा दे। गंगा मैया जाने। अब इनको कौन देखेगा? कभी मैं नहाने-धोने जाऊं तो अब इनके पीछे कोई बिठाओ कि यह देखे कोई। या फिर इनको ले जाओ गंगा साथ; फिर वहां नहाऊं तो भी नहा न पाऊं, क्योंकि घाट पर नजर रखूं कि वह अशर्फियां कोई लेकर न चल दे! अब यह झंझट तू ले आया, चल, तेरी भी कट गई झंझट, मेरी भी काट। तू गंगा में डुबा दे।

उस आदमी को बड़ा धक्का लगा। ऐसी आशा नहीं थी। उसने सोचा था, रामकृष्ण कहेंगेः "अहो, तू है भक्त! हे धन्यभागी! हे महापुरुष! जन्म-जन्म के पुण्यों का यह फल है। तू ही धन्य नहीं हुआ, तेरे पितर भी धन्य हो गए! इसी को त्याग कहते हैं! इसी की महिमा शास्त्रों में गाई है।" यह तो कुछ कहा नहीं, पीठ भी न ठोंकी, सिर पर हाथ रख कर धन्यवाद भी न दिया--उलटे कुछ नाराज मालूम हुए; उलटे कुछ ऐसा लगा कि अपनी झंझट मुझे दे रहा है। ... मेरी भी झंझट काट भैया, तू जाकर इनको गंगा में गिरा दे। गंगा पास ही बह रही है। ज्यादा दूर जाना भी न पड़ेगा।

बड़े बेमन से उस आदमी ने अपनी झोली उठाई। चला गंगा की तरफ। "नहीं" भी नहीं कह सकता। जब दे ही चुके तो अब तुम कौन हो कहने वाले! कई बार तो मन में आया कि भाग जाए बीच से, कौन रामकृष्ण पीछे आ रहे हैं। मगर डरा भी। लोग महात्माओं से डरते भी बहुत हैं कि पता नहीं कोई अभिशाप वगैरह दे दें। और देखते तो रहे ही होंगे, हालांकि दिखाई नहीं पड़ रहा हूं उन्हें, मगर अंतर्दृष्टि महात्माओं की तो खुली होती है। तीसरा चक्षु! देख रहे होंगे और पढ़ रहे होंगे मेरा विचार भी। यह ठीक नहीं है। अब झंझट में जो हो गया हो गया, भूल हो गई हो गई। अब निपटा दो।

मगर बड़ी देर हो गई, वह आदमी लौटा नहीं। तो रामकृष्ण ने कहा कि भई बड़ी देर लग गई, वह आदमी कहां है, अभी तक लौटा नहीं! चले, देखने उस आदमी को। वह आदमी क्या कर रहा था, मालूम है? घाट पर उसने बड़ी भीड़ इकट्ठी कर ली थी। सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए थे। वह एक-एक अशर्फी को बजाता था पहले घाट पर पत्थर पर गिरा कर। खन-खन, खन-खन उसको बजाता। गिनती करता। पांच सौ सतहत्तर, फिर गंगा में फेंकता। पांच सौ अठहत्तर, फिर गंगा में फेंकता। ऐसे ही धीरे-धीरे कर रहा था और खूब बजा-बजा कर फेंक रहा था। रामकृष्ण गए, खड़े हो गए और कहा कि अरे मूढ़! गिनती किसलिए कर रहा है? जब फेंकना ही है तो गिनती किसलिए? गिनती जोड़ते वक्त करनी होती है, फेंकते वक्त क्या गिनती करनी है? थैली की थैली फेंक देना था। और यह बजा क्यों रहा है? यह बजा-बजा कर लेना... लेते समय तो ठीक, क्योंकि कहीं कोई धोखा न दे रहा हो, कोई नकली सिक्के न पकड़ा रहा हो। लेकिन गंगा में फेंकते वक्त... गंगा को कोई फिकर नहीं है कि नकली है कि असली तेरा धन। गंगा को कुछ लेना-देना नहीं है कि नौ सौ निन्यानबे फेंकी कि पूरी हजार फेंकी। गंगा कुछ हिसाब-किताब तेरा रखेगी भी नहीं। मगर तू मूढ़ का मूढ़ रहा!

यह कहानी सोचने जैसी है। आदमी इकट्ठे करते वक्त भी गिनता है और छोड़ते वक्त भी गिनता है। जब मानता है कि धन सत्य है, तब भी गिनता है और जब मानता है कि धन असत्य है, तब भी गिनता है! दोनों हालत में गिनता है! तो महावीर ने कितने घोड़े, कितने हाथी, कितने रथ, कितना धन, कितनी अशर्फियां, मणि-माणिक्य छोड़े, जैन शास्त्रों में सिलसिला बड़ा लंबा है। ऐसा ही बौद्ध शास्त्रों में है, बुद्ध ने कितना छोड़ा। एक-दूसरे से होड़ लगी है। बढ़ाए चले जाते हैं।

तुम अगर शास्त्र उठा कर देखोगे तो जैसे-जैसे शास्त्र बाद में लिखे गए वैसे-वैसे संख्या बढ़ती चली गई। क्योंकि महावीर ने हजार स्वर्ण-रथ छोड़े, तो बौद्ध कोई पीछे तो नहीं रह जाएंगेः उन्होंने बुद्ध से एक हजार एक छुड़वा दिए। तो फिर जब शास्त्र लिखा गया तो जैनियों ने एक हजार दो छुड़वा दिए, क्योंकि वे कोई पीछे तो नहीं रह जाएंगे। महावीर-बुद्ध से तो कुछ लेना-देना नहीं है। न तो महावीर के पास इतने रथ थे और न बुद्ध के पास, क्योंकि दोनों का राज्य बहुत छोटा-छोटा था, छोटी-छोटी तहसीलों से ज्यादा नहीं। बुद्ध के जमाने में भारत में दो हजार राज्य थे, कोई बहुत बड़े राज्य हो नहीं सकते उनके पास। बुद्ध के बापदादों का कोई नाम इतिहास में नहीं है; वह तो बुद्ध की वजह से। महावीर के बापदादों का भी नाम कोई इतिहास में नहीं है; वह तो महावीर की वजह से थोड़ी याद रह गई है। तो ये हाथी-घोड़ों के कारण नाम नहीं थे इनके। लेकिन फिर भी हमारा मन तो वही है।

तो तुमसे मैं यह कहना चाहता हूंः घृणा की तुलना में कहता हूं, प्रेम को पकड़ो। लेकिन प्रेम को ही पकड़ कर बैठ मत जाना। और आगे चलना है। प्रार्थना की तुलना में प्रेम को जाने दो, प्रार्थना को पकड़ो। लेकिन प्रार्थना को ही पकड़ कर मत बैठ जाना। और आगे चलना है। चलना है तब तक जब तक कि चलने वाला शेष है। जब चलने वाला शेष न रह जाए, गंता न बचे और गति ही बचे, तब समझना कि आ गए घर। फिर सत्य है। तब तक तो सब सपने ही सपने हैं। अच्छे सपने, बुरे सपने, मीठे, कड़वे; स्वर्ग के, नरक के--मगर सब सपने हैं। सत्य तो एक है--साक्षी। शेष सब सपना है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! अहंकार होने का कोई भी कारण नहीं है, फिर भी अहंकार क्यों है?

मुकेश भारती! अहंकार होने का कारण तो कोई भी नहीं है, लेकिन अहंकार होने के निमित्त हैं। और निमित्त और कारण का भेद समझना होगा।

कारण तो यथार्थ होते हैं; निमित्त मनुष्य-निर्मित होते हैं। कारण तो अस्तित्व के हिस्से होते हैं; निमित्त मनुष्य के मन के हिस्से होते हैं। निमित्त यानी बहाने। बहाने बहुत हैं। तुम्हारा अहंकार बहानों की बैसाखियों पर टिका है। उसके कोई कारण नहीं हैं। कारण तो बिल्कुल नहीं हैं। अगर कारण देखने चलो तो अहंकार विलीन हो जाए। जो भी कारण की खोज में गए हैं उन्होंने अहंकार पाया ही नहीं। लेकिन तुम कारण की खोज ही कहां करते हो! तुम निमित्त की खोज करते हो, तुम बहाने खोजते हो।

जैसे तुम्हारे पास दस रुपये हैं, तो दस रुपये वाला अहंकार होगा तुम्हारे पास। स्वाभाविक। इससे बड़ा अहंकार कहां से लाओगे? दस के नोट से बड़ा नहीं हो सकता। फिर तुम्हारे पास दस लाख रुपये हैं, तो तुम्हारे पास और बड़ा अहंकार होगा--दस लाख रुपये वाला अहंकार होगा! निमित्त तुम्हारे पास बड़ा है; बैसाखी बड़ी है! तुम अपनी पतंग को आकाश में उड़ाओगे; डोर बड़ी है।

लोग निमित्त खोज रहे हैं--धन बढ़ जाए, पद बढ़ जाए, ज्ञान बढ़ जाए, त्याग बढ़ जाए। इसलिए मन की एक ही खोज है--और, और, और। अगर मन की तुम परिभाषा समझना चाहो तो यह जो "और की मांग" है, यही मन की परिभाषा है। और मन क्यों मांगता है और, और? और मजा ऐसा है कि यह और किसी भी चीज पर लागू हो सकता है--यह धन पाने में लागू हो सकता है, यह धन छोड़ने में लागू हो सकता है। इसलिए धन पाने वाला कहता हैः और धन मिले तो तृप्ति होगी। और त्यागी कहता हैः और छोडूं और छोडूं। अभी दिन में एक बार भोजन करता हूं; अब दो दिन में एक बार भोजन करूंगा, तब... तब उपलब्धि होगी। अभी दो ही वस्त्र

बचाए हैं; जब बिल्कुल नग्न हो जाऊंगा तब उपलब्धि होगी। नग्न तो हो गया हूं, धूप-धाप भी सहता हूं; लेकिन जब तक कांटों की शय्या बना कर न लेटूंगा तब तक उपलब्धि नहीं होगी। और की दौड़ जारी है!

धन के पीछे दौड़ने वाला भी और के पीछे लगा है और त्याग की दिशा में चलने वाला भी और के पीछे लगा है! और नहीं जाता। और निमित्त है, कारण नहीं है।

बच्चा जब पैदा होता है तो उसमें कोई अहंकार नहीं होता, कोई मैं-भाव नहीं होता। मनोवैज्ञानिकों ने इस संबंध में बहुत शोधकार्य किया है; खास कर पियागे ने बहुत काम किया है। बच्चा जब पैदा होता है, उसके पास कोई मैं-भाव नहीं होता। बच्चे थोड़े बड़े भी हो जाते हैं तब तक भी उनमें मैं-भाव नहीं होता। तुमने देखा होगा, छोटा बच्चा कहता है कि बेबी को भूख लगी है! यह नहीं कहता कि मुझे भूख लगी है? कहता है बेबी को भूख लगी है। जैसे बेबी कोई और। अभी मैं-भाव नहीं जन्मा है।

यह जान कर तुम चकित होओगे कि पहले "तू-भाव" पैदा होता है, फिर "मैं-भाव" पैदा होता है। पहले बच्चा समझने लगता है कि कुछ लोग हैं जो उससे भिन्न हैं। मां है; कभी उपलब्ध होती है, कभी उपलब्ध नहीं होती है। कभी भूख लगती है तो मां एकदम पास होती है, स्तन दे देती है और कभी भूख लगती है तो रोता है, चिल्लाता है और मां अपने काम में व्यस्त है, नहीं आती, नहीं आती। एक बात समझ में आने लगती है उसे कि मां मुझसे भिन्न है। ऐसी कोई भाषा में नहीं, ऐसी प्रतीति होने लगती है कि मां मुझसे भिन्न है; अन्यथा चौबीस घंटे उपलब्ध होनी चाहिए थी। अभी सब चीजें धुंधली-धुंधली होती हैं। अभी कुछ नहीं मिलता तो अपने पैर का अंगूठा ही पकड़ कर चूसने लगता है। अभी उसे यह भी पक्का नहीं है कि पैर का अंगूठा मेरा ही है, कि मैं अपना ही अंगूठा चूस रहा हूं, कि इससे ज्यादा बुद्धूपन का और क्या काम होगा! और इस अंगूठे से कुछ मिलने वाला नहीं है। अभी चीजें बिल्कुल धुंधली हैं, कुछ साफ नहीं है। अभी चीजें बिल्कुल ही पृथक नहीं हुई हैं।

लेकिन धीरे-धीरे पृथकता का बोध पैदा होगा। मां कभी होती है, कभी नहीं होती है। कभी खुश होती है, कभी नाखुश होती है। कभी थपथपाती है, कभी लापरवाही दिखाती है। एक बात साफ होने लगती है कि मां चौबीस घंटे मुझे उपलब्ध नहीं है, इसलिए मुझसे भिन्न है। ख्याल रखना, ऐसा कोई बच्चा तर्क नहीं करता, बच्चा ऐसा कोई तर्क नहीं कर सकता; मगर इसकी प्रतीतियां उसे होने लगती हैं, इसकी अंतःप्रज्ञा होने लगती है। पहले "तू" का जन्म होता है। फिर पिता को देखता है, भाई-बहन को देखता है। वे कभी आते हैं, कभी जाते हैं; आते-जाते देखता है, धीरे-धीरे "तू" स्पष्ट होने लगता है कि लोग मुझसे भिन्न हैं। और तब इसके परिणाम-स्वरूप यह उसे याद आती है कि मैं भी भिन्न हूं। जब लोग मुझसे भिन्न हैं तो मैं उनसे भिन्न हूं।

पहले "तू" पैदा होता है, फिर "मैं" पैदा होता है। तू की बैसाखी पर मैं टिक जाता है। फिर मैं को और-और बैसाखियां चाहिए--मेरा खिलौना, मेरा झूला, मेरी साइकिल, कोई दूसरे को छूने न दूंगा। फिर मेरे का फैलाव शुरू होता है--मेरा कमरा, मेरी मां, मेरे पिता।

छोटे-छोटे बच्चे जब घर में कोई नया बच्चा पैदा होता है तो बड़ी ईर्ष्या से भर जाते हैं, भयंकर ईर्ष्या से भर जाते हैं! तुम छोटे बच्चों को इतने भोले मत समझना जितना तुम मानते हो। तुम्हारे छोटे बच्चों में वे सब बीमारियां मूल-रूप में मौजूद हैं जो तुम में प्रकट होती हैं बाद में। घर में नया बच्चा पैदा होता है, छोटे बच्चे बड़े ईर्ष्या से भर जाते हैं; चाहते हैं कि मर ही जाए। यह और झंझट कहां से आ गई! क्योंकि इस बच्चे के आने की वजह से अब मां का ध्यान इस नये बच्चे पर लग जाता है, बड़े बच्चे की उपेक्षा होने लगती है। बाप भी आता है तो इस छोटे बच्चे को पुचकारता है। सारे घर का ध्यान इस पर लगता है। पड़ोस के लोग भी देखने आते हैं नये बच्चे को। बड़ा बच्चा एक कोने में खड़े होकर देखता है--उपेक्षित, निरादृत। अचानक अब तक वही केंद्र था, अब केंद्र से

हट गया, परिधि पर पड़ गया। कभी-कभी छोटे बच्चे गर्दन भी दबाना चाहते हैं नये आगंतुक की। कल्पना तो बहुत बार करते हैं कि कोई भूत-प्रेत आएगा और ले जाएगा; कोई बाबा आएगा और ले जाएगा; इससे कैसे छुटकारा हो!

यह "मैं" ने संघर्ष करना शुरू कर दिया। पहले तू का सहारा लिया, फिर मेरे का सहारा लिया। अब ईर्ष्या जन्मी, अब और दीवालें मजबूत होने लगीं। फिर प्रतिस्पर्धा जन्मेगी--स्कूल में मुझे प्रथम आना है। फिर स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक स्वर्ण-पदक पाना है। फिर प्रतिस्पर्धा, गलाघोंट प्रतिस्पर्धा... यह "मैं" फिर और-और निमित्त खोज रहा है। फिर विश्वविद्यालय से निकल कर बड़ी पदवी पानी है, बड़ी नौकरी पानी है, देश का प्रधानमंत्री बनना है। छोड़ती ही नहीं यह बात, मरते दम तक नहीं छोड़ती! झूले से पकड़ती है और कब्र तक नहीं छोड़ती। और कारण कुछ भी नहीं है--निमित्त।

कारण का तो अर्थ होता है--वास्तविक; निमित्त का अर्थ होता है--कल्पित। जिस दिन भी तुम आंख बंद करके भीतर झांकोगे, पाओगे वहां कोई अहंकार नहीं है। आत्मा तो है, अहंकार नहीं है। आत्मा का अर्थ ही होता है निर-अहंकार अस्तित्व। तो जिन्होंने भीतर झांका उन्होंने कहा अहंकार झूठ है। और जो बाहर ही दौड़ते रहे उन्होंने माना कि अहंकार ही एकमात्र सत्य है। उठते रहो ऊंचे से ऊंचे सिंहासनों पर; बस यही एकमात्र जीवन का अर्थ है। और फिर गिर जाओ एक दिन कब्र में और मिल जाए धूल धूल में और गिर जाएंगे तुम्हारे सारे अहंकार।

च्वांगत्सु एक कब्रिस्तान से गुजरता था। सांझ का वक्त था, अंधेरा हो रहा था। कब्रिस्तान में पड़ी एक खोपड़ी से उसका पैर टकरा गया। वह एकदम घुटने टेक कर बैठ गया, खोपड़ी को हाथ जोड़े। उसके शिष्य तो बड़े चौंके। च्वांगत्सु एक बुद्धपुरुष था। यह क्या कर रहा है, पागल तो नहीं हो गया! लेकिन शिष्य चुपचाप खड़े रहे, देखते रहे कि वह क्या कर रहा है। उसने बड़ी प्रार्थना की। उस खोपड़ी से कहाः माफ करना! आप कोई छोटी-मोटी खोपड़ी नहीं हैं, क्योंकि मुझे पक्का पता है यह बड़े लोगों का कब्रिस्तान है। यहां केवल राजा-महाराजा, पुरोहित, महात्मा, वे ही दफनाए जाते हैं। आप जरूर किसी महात्मा की या किसी राजा-महाराजा की खोपड़ी हैं। यह तो संयोग की बात है कि आज आपके ऊपर चमड़ी नहीं है और भीतर अहंकार का ढोल नहीं बज रहा है, नहीं तो मेरी मुश्किल हो जाती। यह तो बिल्कुल संयोग की बात है कि बच गए। जान बची और लाखों पाए... । अगर भीतर अहंकार का ढोल बज रहा होता और ऊपर चमड़ी चढ़ी होती और हाथ-पैर में चलने की गति होती, तो आज हम मारे गए थे। मगर फिर भी हो तो आप किसी न किसी बड़े आदमी की खोपड़ी, माफी तो मांग ही लूं।

खोपड़ी को उठा लाया। उसे अपने पास ही रखता था। शिष्य पूछते भी कि यह आप क्या कर रहे हो? तो वह कहता कि इससे मुझे याद बनी रहेगी और तुम्हें भी याद बनी रहेगी कि अपनी खोपड़ी की यह गति होनी है। अब ये सज्जन, महाराजा रहे होंगे, कि कोई महात्मा रहे होंगे। अब इनकी हालत देखते हो, मारो ठोकर, खेलो फुटबॉल! कुछ कर सकते नहीं!

च्वांगत्सु कहता है कि इससे मुझे बड़ा लाभ हुआ है। इसको मैं रखे ही रहता हूं पास। कल ही एक आदमी आया और गाली देने लगा। वह गाली देता था, मैं खोपड़ी की तरफ देखने लगा। उसने पूछाः क्या कर रहे हो? मैंने कहाः मैं इस खोपड़ी की तरफ देख रहा हूं। उसने कहाः मैं कुछ समझा नहीं। मैंने कहाः तुम समझोगे भी नहीं। मगर समझना चाहो तो मैं समझाने को राजी हूं। आया था गाली देने, समझने को बैठ गया! कहने लगा कि समझाइए, क्यों? मैं गाली दे रहा हूं, आप खोपड़ी क्यों देख रहे हैं?

तो च्वांगत्सु ने कहाः मैं खोपड़ी देख कर यह सोच रहा हूं कि यह हालत अपनी भी होने वाली है। खोपड़ी कल पड़ी होगी। यही आदमी लात मारेगा तो हम यह भी न कह सकेंगे कि "क्यों रे! तूने लात मारी? मजा चखाऊंगा तुझे! तूने समझा क्या है? तू समझता क्या है कि मैं कौन हूं?" यह भी न कह सकूंगा। तो एक दिन बाद जो बात होनी है... आज यह गाली दे रहा है, दे लेने दो, क्या बनता-बिगड़ता है! यह खोपड़ी तो धूल में मिल जाने वाली है। यह सब तो धूल में गिर जाने वाला है।

जो भीतर झांकेगा वह पाएगा कि बाहर का तो सब गिर जाने वाला है--धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा, यश-मान। हां, भीतर कुछ एक अस्तित्व है जो बचेगा। वह अस्तित्व कोरा अस्तित्व है--आकाश जैसा निर्मल! उस पर न कभी कोई धूल पड़ती है, न वहां कोई मैं का भाव है।

मैं के लिए कारण तो कोई भी नहीं है, मुकेश। निमित्त तुमने खोज लिए हैं। और जब तक तुम निमित्त खोजते रहोगे, अहंकार बना रहेगा। अहंकार तो ऐसा है जैसे कोई साइकिल को चलाता है; पैडल मारते रहो तो साइकिल चलती है। पैडल मारना बंद कर दो, तो हो सकता है, दस-पांच कदम चली जाए पुरानी गति के आधार पर, लेकिन फिर गिर जाएगी। अहंकार को पैडिल मारते रहो रोज-रोज, तो चलता है। आज पैडल मारना बंद कर दो, तो दो-चार दिन में गिर जाएगा।

मेरी दृष्टि में अहंकार को पैडल मारना बंद कर देने का नाम ही संन्यास है। अहंकार के लिए निमित्त की और तलाश न करना, यही संन्यास है। और जिस दिन तुम तलाश न करोगे अहंकार के लिए नये निमित्तों की, पुराने निमित्त ज्यादा दिन काम नहीं आएंगे। पुराने निमित्त बस गिर जाएंगे, अपने से गिर जाएंगे। उनको रोज-रोज नया करना होता है, तो ही जीवित रहते हैं। उनमें रोज-रोज प्राण डालने होते हैं।

और बड़ा महंगा सौदा है यहः आत्मा को गंवा कर अहंकार हाथ में लगता है। और अहंकार बिल्कुल झूठ है, आभास मात्र है। आत्मा तो खो जाती है, छाया बचती है।

जर्मन कहानी है एक कि एक आदमी ने बहुत दिन तक तपश्चर्या की। देवदूत प्रकट हुआ। उस फरिश्ते ने कहा कि मांग ले कुछ मांगना हो। तो उस आदमी ने कहाः कुछ ऐसी चीज दो जो कभी किसी को न दी हो। मांगने वाले तो बहुत हुए होंगे; मैं तो कोई ऐसी चीज मांगता हूं जो कभी हुई न हो और कभी हो भी नहीं। उस फरिश्ते ने कहाः तो ठीक, ऐसा ही किए देते हैं। कल से तेरी छाया न बनेगी। धूप में चलेगा, तो भी छाया नहीं बनेगी।

वह आदमी तो बड़ा खुश हुआ। उसने कहा कि गजब हुआ! सारी दुनिया में ख्याति हो जाएगी। ऐसा आदमी न कभी इतिहास में हुआ, न कभी होगा--कि जो धूप में चले और जिसकी छाया न बने! भागा, पहाड़ वगैरह छोड़ दिया, जहां बैठ कर तपश्चर्या कर रहा था। तपश्चर्या ही इसलिए कर रहा था, वह तपश्चर्या भी अहंकार के लिए नये निमित्त खोजने की तलाश थी। और इससे बड़ा निमित्त और क्या मिल सकता था, जरा सोचो तुम कि तुम धूप में चलो और तुम्हारी छाया न बने! सारी दुनिया चरण छूने आएगी।

आया नगर में, घूमा। बात कुछ उलटी ही हो गई। लोग उससे बचने लगे। लोग कन्नी काट जाएं। जहां से निकले, कोई दूसरा आदमी आ रहा हो परिचित, तो वह बगल की दुकान में घुस जाए आदमी, या बगल की गली से निकल जाए। अपने बिल्कुल पराए होने लगे। मित्र पास न आएं, गांव भर में खबर फैल गई कि यह आदमी भूत-प्रेम हो गया, या क्या मामला है! इसकी छाया नहीं बनती! कहानियों में तो सिर्फ भूत-प्रेतों की छाया नहीं बनती या देवताओं की छाया नहीं बनती। तो देवता तो यह हो नहीं सकता। देवता तो कोई मान

नहीं सकता इसको। कोई इस दुनिया में किसी दूसरे को देवता मानने को आसानी से राजी नहीं होता। भूत-प्रेत हो गया है।

घर के लोग अपना दरवाजा बंद कर लिए, जब वह आया! पत्नी ने कहाः क्षमा करो, पतिदेव! अपनी गुफा में ही रहो! आखिर हमें भी जीना है। बाल-बच्चे हैं, इनको बड़ा करना है। तुम गए सो गए, वह ठीक है; अब हमें और बरबाद न करो। तुम्हें देख कर डर लगता है। बच्चे जो एकदम झूल जाते थे उसके गले से आकर, वे मां के पीछे छिप कर खड़े हो गए। डैडी भूत हो गए! मित्रों ने दरवाजे बंद कर लिए। होटलों में लोग एकदम दरवाजे बंद करने लगें, भोजन देने को कोई राजी नहीं। छाया नहीं बनती, लेकिन भूख तो लगती ही थी। पानी पिलाने को कोई राजी नहीं। और लोगों ने कहा कि अगर तुमने गांव नहीं छोड़ा तो हम पुलिस को पकड़वा देंगे।

बड़ा हैरान हुआ कि यह भी क्या मैंने वरदान मांग लिया! हट जाना पड़ा उसे गांव से। बड़े अपमान में।

यह कहानी बड़ी अर्थपूर्ण है। उस आदमी की छाया खो गई थी और ऐसी हालत हो गई। और तुम्हारी आत्मा खो गई है, सिर्फ छाया बची है। तुम्हारी हालत तो सोचो! उस आदमी की आत्मा तो बची थी, छाया खो गई थी। तुम्हारी छाया बची है, आत्मा खो गई है।

छाया है अहंकार। और फिर अहंकार के लिए निमित्त जितने मिल जाएं उतना बड़ा हो सकता है। निमित्त टूट जाएं, उतना छोटा हो जाता है। इसलिए तो जो व्यक्ति एक बार जिस पद पर पहुंच जाता है उसको छोड़ता ही नहीं।

दिल्ली में तुम देखो न, किस्सा कुर्सी का खत्म थोड़े ही हो गया है! किस्सा कुर्सी का कभी खत्म होता ही नहीं। हरेक अपनी कुर्सी को ऐसे पकड़ कर बैठा है! और छुड़ाने वाले भी चारों तरफ लगे हैं, चींटों की तरह! जैसे चींटे गुड़ पर लगे हों! वे भी अपनी खींचतान में लगे हैं। किसी को फिक्र ही नहीं कि कुर्सी बचेगी भी कि नहीं। कोई फिकर नहीं कुर्सी की, एक टांग ही हाथ लग जाए तो भी ठीक। कुर्सी के लिए इतनी खींचतान! और जो जिस कुर्सी पर पहुंच जाता है उससे हटता नहीं, चाहे कितने ही जूते पड़ें और चाहे कितनी ही फजीयत हो; मगर बिल्कुल बैठा ही रहता है अकड़ा। कुर्सी को पकड़े ही रहता है जब तक मर ही न जाए!

किसी को कुर्सी से उतारना मुश्किल है। जो चढ़ गया वह चढ़ गया। पहले चढ़ने के लिए कोशिश करो; फिर चढ़ जाओ तो पकड़ने की कोशिश करो। जब तक चढ़े नहीं थे तब तक जो अपने मित्र थे, चढ़ जाने के बाद दुश्मन हो जाते हैं, क्योंकि वे ही खींच-तान शुरू करते हैं। दुश्मन फिर दुश्मन नहीं रह जाते। दुश्मन तो बहुत दूर रहते हैं कुर्सी से। जो अपने हैं, जो मित्र हैं, जिनके कंधों पर चढ़ कर तुम पहुंच गए कुर्सी तक, अब वे ही कहते हैं कि अब बैठ लिए काफी, अब हमें बैठने दो! अब हम भी थोड़ा आराम करें!

मगर जो बैठ गया कुर्सी पर, कुर्सी नहीं छोड़ता। क्योंकि कुर्सी छोड़ते ही उसकी हालत बुरी हो जाएगी। कुर्सी छोड़ते ही अहंकार को सिकुड़ना पड़ेगा। फैलने में तो अहंकार को अच्छा लगता है, सिकुड़ने में बड़ी पीड़ा होती है।

जिसके पास धन है, धन नहीं छोड़ सकता। जिसके पास यश है, यश नहीं छोड़ सकता। यश के लिए जो भी करना पड़े करने को राजी रहता है। उपवास करवाओ तो करेगा, क्योंकि महात्मा, नहीं तो महात्मा नहीं रहेगा। सिर के बल खड़ा करो तो सिर के बल खड़ा होगा, नहीं तो महात्मा नहीं रहेगा।

मैं एक गांव में गया। लोगों ने कहाः गांव में एक महात्मा हैं। वे दस साल से खड़े हुए हैं, बैठते ही नहीं। मैंने कहाः तुम बैठने नहीं देते होओगे। उन्होंने कहाः नहीं, हम तो कुछ नहीं करते। मैंने कहाः तुम्हें पता नहीं है, लेकिन तुम बैठने नहीं देते होओगे। चलो मैं जरा देखूं।

महात्मा की हालत बड़ी बुरी हो गई। उनका नाम ही खड़ेश्री बाबा हो गया। वे खड़े ही हैं। अब खड़ा होना दस साल कोई आसान मामला नहीं है। तो दोनों हाथों में बैसाखियां लगा दी गई हैं। ऊपर हाथ जंजीर से बांध दिए गए हैं, क्योंकि कहीं भूल-चूक से बैठ न जाएं।

मैंने कहाः ये जंजीर किसने बांधी हैं? ये बैसाखियां किसने लगाई हैं?

और उनके पैर हाथी-पांव हो गए हैं, क्योंकि सारा खून शरीर का उतर कर पैरों में चला गया है। वह आदमी बड़े कष्ट में है। अब तो वह बैठना भी चाहे तो नहीं बैठ सकता। उसके पैर न बैठने देंगे। अब पैर म.ुडेंगे भी नहीं, दस साल हो गए। और इस खड़े होने में ही तो सारी उसकी प्रतिष्ठा है। लोग आते रहते हैं, दिन-रात मजमा लगा रहता है। पैसे चढ़ रहे हैं, सिर झुकाएं जा रहे हैं, मनौतियां मनाई जा रही हैं, बैंड-बाजे बजाए जा रहे हैं। और वह आदमी बिल्कुल मुर्दे की तरह खड़ा है। न उसकी आंखों में कोई ज्योति है, न चेहरे पर कोई भाव है।

इस आदमी को क्या हुआ? यह आदमी भीड़ का शिकार है, जैसे और सारे लोग भीड़ के शिकार हैं। कोई प्रधानमंत्री होकर शिकार है; यह आदमी खड़े होकर महात्मा हो गया है, अब यह चक्कर में पड़ गया है। अब बैठ नहीं सकता। अब बैठे तो सब प्रतिष्ठा गई। अगर खड़ेश्री महाराज बैठ जाएं तो कौन आएगा फिर, फिर कौन पूजा करेगा!

मेरे पास जैन मुनि कभी-कभी आ जाते थे। दो जैन मुनि आए--आचार्य तुलसी के शिष्य। उन्होंने कहा कि हमने आज्ञा तो ले ली है तुलसी जी से, मगर उन्होंने कहाः किसी को पता न चले! क्योंकि यहां तो मेरे पास आना ही खतरनाक है, अगर किसी को पता चल जाए... ! तो चुपचाप जाना, छिप कर जाना। दोनों ध्यान करने आए थे।

मैंने कहाः करो ध्यान। मगर ध्यान ऐसा है कि छिप कर हो न सकेगा। इसमें उछलना पड़े, कूदना पड़े।

उन्होंने कहाः हम मुनि हैं, हम बहुत दिन से उछले-कूदे भी नहीं। बचपन के बाद उछले-कूदे ही नहीं।

मैंने कहाः वह तुम सोच लो। इसमें शोरगुल भी मचाना पड़ेगा।

उन्होंने कहाः तो कमरा बंद करके अगर करें?

मैंने कहाः कमरा बंद करके करना हो तो कमरा बंद करके करो। जैसी तुम्हारी मर्जी।

किसी को पता तो न चलेगा?

मैंने कहाः ध्यान का अगर पता भी चल जाए तो हर्ज क्या? कुछ बुराई है?

उन्होंने कहा। बुराई यह है कि हमारे श्रावक क्या सोचेंगे? वे तो सोचते हैं कि हम आत्म-ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। और हम उछल-कूद रहे हैं!

मैंने कहाः वैसे तुम्हारी मर्जी है। अगर आत्मज्ञान को उपलब्ध हो गए हो तो फिर कोई हर्जा नहीं, फिर तो उछलो-कूदो! अब तुमसे कोई क्या चीज छीन लेगा?

कहा कि नहीं, अभी उपलब्ध तो नहीं हुए। तो मैंने कहाः फिर तो उछलना-कूदना ही पड़ेगा। नहीं तो उपलब्ध न हो सकोगे।

दोनों उछले-कूदे। चैतन्य भारती से मैंने कहा कि दोनों की तस्वीरें ले लेना। तस्वीरें हैं! बाद में उनको पता चला। मांगने आए कि तस्वीरें हमारी दे दें। मैंने कहाः तस्वीरें तो रहने दो। एक प्रमाण रहेगा कि महात्मा भी उछले-कूदे। बड़े उदास थे कि यह ठीक नहीं हुआ कि किसी ने तस्वीरें ले लीं। हमको पता ही न चला। हमारी तो आंख पर पट्टी बंधवा दी थी आपने।

मैंने कहाः आंख पर पट्टी इसलिए बंधवाई जाती है कि जिसमें तस्वीर लेने वालों को कोई अड़चन न हो। वे तो चले गए, लेकिन उनके शिष्य कई बार आ चुके हैं कि वे तस्वीरें दे दें।

तस्वीरों से तुम्हें क्या फिकर है?

उनको डर लगा है कि किसी दिन वे तस्वीरें प्रकट न हो जाएं, नहीं तो प्रतिष्ठा का क्या होगा? तेरापंथी मुनि और आंख में पट्टी बांध कर और नाच रहे हैं, हू-हू कर रहे हैं! और बड़े ज्ञानी-मुनि! एक की उम्र कोई होगी साठ-सत्तर साल, दूसरे की होगी कोई पैंतीस-चालीस साल। और उनकी बड़ी ख्याति है। नाम उनका न बताऊंगा, क्योंकि नाहक क्यों उनको कष्ट देना! उनकी बड़ी ख्याति है। सैकड़ों लोग उन्हें मानते हैं। उनको डर है बहुत, कि कहीं पता न चल जाए! किसी को अगर जरा पता चल गया तो प्रतिष्ठा गिर जाएगी।

यह तो वही अहंकार का खेल चल रहा है! भेद कहां है? कोई कुर्सी पकड़े है, कोई अपना यश पकड़े हैं। कोई धन पकड़े है, कोई ज्ञान पकड़े है। ये निमित्त हैं।

मुकेश! अहंकार का कोई कारण नहीं है। लेकिन निमित्त बहुत हैं। और निमित्त तुम्हारे निर्मित हैं। इसलिए एक सुषमाचारः चूंकि तुम्हारे ही हाथ से बनाए हुए निमित्त हैं, तुम जिस दिन चाहो, जिस क्षण चाहो उस क्षण अहंकार से मुक्त हो सकते हो। यह सुषमाचार। तुम मालिक हो! यह तुम्हारी बनावट है। यह तुम्हारा नाटक है। यह तुम्हारा प्रपंच है। इसमें परमात्मा का कोई हाथ नहीं है। इसे तुम अभी गिरा सकते हो। यह रेत का घर तुमने बनाया, अभी उछल-कूद कर इसको मिटा सकते हो।

आत्मा का कारण है, अहंकार अकारण है। जो है उसका कारण होता है। जो नहीं है उसकी सिर्फ कल्पना होती है। अहंकार सिर्फ तुम्हारी कल्पना है। तुम अलग नहीं हो अस्तित्व से। तुम पृथक नहीं हो अस्तित्व से।

अहंकार का अर्थ इतना ही होता है कि मैं अलग, मैं थलग, मैं भिन्न। निर-अहंकार का अर्थ होता हैः मैं एक--वृक्षों से, चांद-तारों से, पृथ्वी से, आकाश से। हम अलग नहीं हैं। हम इसी एक ऊर्जा की तरंगें हैं। हम इसी एक संगीत के स्वर हैं। हम इसी एक गीत की कड़ियां हैं। यह जो महागीत गाया जा रहा है, यह जो महागीता चल रही अस्तित्व की, हम इसकी छोटी-छोटी कड़ियां हैं--कि छोटे-छोटे शब्द, कि छोटी-छोटी मात्राएं, कि अर्धविराम, पूर्णविराम। हमारा इस विराट महागीत से कोई भिन्न अस्तित्व नहीं है। जिस दिन यह जानना चाहोगे उसी दिन क्रांति हो जाएगी। क्षण में रूपांतरण हो जाएगा।

लेकिन साहस चाहिए मरने का। क्योंकि अभी तो तुम अहंकार को ही अपना जीवन समझे हो। अहंकार की तरह मरने की जिसकी क्षमता है वह आत्मा की तरह जन्मता है। अहंकार को दो सूली, तो तुम्हें आत्मा का सिंहासन मिले। अहंकार को दो कब्र, तो तुम्हें पुनरुज्जीवन मिले, तुम्हें शाश्वत जीवन मिले। तब तुम जान सकोगे, आनंद; तब तुम जान सकोगे, सच्चिदानंद। तब तुम जान सकोगे--जो है उसे। अभी तो तुमने मान रखा है कुछ-कुछ, अपनी मान्यताओं में जी रहे हो। और जब तक मान्यताओं में जीते रहोगे तब तक जीना तुम्हारा एक दुख है, एक पीड़ा है, एक लंबी व्यथा!

तुम्हारी कथा ही क्या है--सिवाय व्यथा के?

जागो! जाग कर थोड़ा देखो। भीतर आंख खोलो। वहां कोई नहीं है--वहां सन्नाटा है! वहां अस्तित्व की शून्यता है। वहां अस्तित्व की पूर्णता है। वहां परमात्मा विराजमान है!

तीसरा प्रश्नः ओशो!

हीर कटोरा हो गया रीता

भय कैसा यह तीखा-मीठा!
तेरे लिए ही मैं सरजाई
मैं तो मर गई ओ हरजाई!
तूने बांधी महा सगाई
मैं तो मर गई ओ हरजाई!

जया! भय तो लगेगा, बहुत भय लगेगा! क्योंकि जिस अहंकार को हमने अब तक अपना सब कुछ समझा, सर्वस्व समझा, जब हाथ से छूटेगा तो पैर तो कंपेंगे, तो प्राण तो थर्राएंगे।

जैसे बीज जब मरेगा भूमि में, तो डरेगा नहीं? डरेगा। क्या भरोसा कि वृक्ष होगा कि नहीं होगा! बीज तो श्रद्धा से मर जाता है। मगर श्रद्धा से ही मरता है; आश्वासन तो कोई भी नहीं।

गंगा जब सागर में उतरती है तो क्या आश्वासन है कि बचेगी? बचती भी कहां? हां, सागर हो जाती है; मगर गंगा तो खो जाती है। तो गंगा भी डरती होगी।

खलील जिब्रान ने लिखा है कि जब कोई नदी सागर के किनारे आती है तो मैंने उसे थर्राते देखा है, कंपते देखा है, झिझकते देखा है; लौट-लौट कर पीछे देखते देखा है। याददाश्तें मीठी-कड़वी, वे सारी याददाश्तें पहाड़ों की, उत्तुंग शिखरों की, घाटियों की, फूलों की, पक्षियों की, लोगों की, तीर्थ स्थानों की, नावों की, चांद-तारों की, किनारों की, किनारों पर खड़े वृक्षों की, छायाओं की, धूप की--न मालूम कितने खेल, न मालूम कितने सपने, न मालूम कितने अनुभव, अनूठे अनुभव, उन सबकी याद तो आती होगी नदी को! मन तो होता होगा कि रुक जाए, ठहर जाए; यह क्या खतरा मोल लेती! सागर में उतरना मतलब किनारों को छोड़ना। किनारों को छोड़ना मतलब अपनी परिभाषा को छोड़ना। सागर में उतरना--फिर गंगा गंगा नहीं रहेगी और ब्रह्मपुत्र ब्रह्मपुत्र नहीं रहेगी और सिंध सिंध नहीं रहेगी। सागर में उतरे तो फिर व्यक्तित्व कहां? फिर अस्मिता कहां? और गंगा की अस्मिता होगी, जरूर होगी--उसके किनारे कितने तीर्थ, कितना पुण्य! लंबी यात्रा। सारी यात्रा याद तो आती होगी! मन फिर-फिर करके उन क्षणों में जीने का होता होगा।

ठीक वैसा ही होता है, जया! जब अहंकार के छूटने का क्षण आता है तो बहुत भय लगता है। मृत्यु जैसा भय लगता है। शायद मृत्यु से भी ज्यादा भय लगता है, क्योंकि जिसको हम मृत्यु कहते हैं उसमें तो सिर्फ शरीर मरता है, मन तो बच जाता है, अहंकार बच जाता है। और जिस मृत्यु के तू करीब आ रही है, जिस मृत्यु के करीब मेरे संन्यासियों को आना है, आ रहे हैं--उस मृत्यु में शरीर तो जैसा का तैसा रहता है; और भी गहरी बात मरती है--मन मरता है, अहंकार मरता है और शरीर की मृत्यु कोई असली मृत्यु थोड़े ही है। इधर शरीर मरा उधर फिर नया शरीर मिला। जिसका मन मरा फिर उसे शरीर नहीं मिलता। मन की मृत्यु महामृत्यु है।

वह एक छोटा-सा विहग
अपनी उमंगों से उमग
निज पंख फैला चल पड़ा
उस नील नभ को नापने!

उर में भरा उल्लास था,

स्वर में भरा उच्छवास था
संगीत जीवन का रचा
उसकी विसुध प्रति सांस ने!

थे मौन गिरी-पर्वत खड़े
थे मौन वन-उपवन पड़े
वह गा रहा, वह जा रहा,
था सामने, बस सामने!

ऊंचा अधिक उड़ता गया,
ओझल हुई उससे धरा,
पर सामने निःसीम था,
उसके लगे पर कांपने!

शुरू-शुरू में तो संन्यास की यात्रा सुगम मालूम होती है, सरल मालूम होती है। शुरू-शुरू में तो ध्यान शांतिदायी होता है। लेकिन एक ऐसी घड़ी आती है उड़ते-उड़ते...

ऊंचा अधिक उड़ता गया,
ओझल हुई उससे धरा,
पर सामने निःसीम था,
उसके लगे पर कांपने!

जब धरती दूर हो जाती है और दिखाई भी नहीं पड़ती, जब देह दूर हो जाती है और दिखाई भी नहीं पड़ती--देह यानी धरती--और जब भीतर के आकाश में सिर्फ नीलिमा ही नीलिमा रह जाती है, अनंत आकाश में, और आगे कोई ओर-छोर नहीं दिखाई पड़ता--तो स्वाभाविक है कि पर कंपने लगें, मन घबड़ाने लगे! मन कहने लगेः लौट चलो, लौट चलो, अभी भी लौट चलो। अभी भी देर नहीं हो गई है। अभी भी लौटा जा सकता है। पृथ्वी यद्यपि दिखाई नहीं पड़ती, मगर पता है हमें पक्का कि है, लौटा जा सकता है।

लेकिन उस घड़ी से लौटना सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। उसी घड़ी की तो तलाश है कि हम उस बिंदु पर पहुंच जाएं, जहां से लौटा न जा सके। कितनी बार तो लौटते रहे धरा पर, कितनी बार तो लौटते रहे देह में! कितनी-कितनी देह धरीं, कितने-कितने जन्म, कितनी मृत्युएं, कितने खेल रचे! और हर खेल व्यर्थ गया। हाथ आखिर में राख लगी। हर खेल के बाद पता चलाः व्यर्थ ही दौड़े-धापे; न कोई मंजिल मिली, न कोई मार्ग मिला। चले तो बहुत, कोल्हू के बैल की तरह चले।

ठीक वैसी ही घड़ी जया आ रही करीब।

तू कहती हैः "हीर कटोरा हो गया रीता... "

वही तो मेरी शिक्षा हैः रीतो! शून्य हो जाओ! क्योंकि शून्य होना पूर्ण होने की पात्रता है। घड़ा खाली हो तो ही तो भरा जा सकेगा न! घड़ा पहले से ही भरा हो तो कैसे भरा जा सकेगा? भरे घड़े को बरसते हुए आकाश के नीचे भी रख दोगे, तो भी कुछ लाभ न होगा। इसलिए तो पहाड़ खाली रह जाते हैं क्योंकि पहले से ही भरे हैं; खाई-खड्ड भर जाते हैं और झीलें बन जाते हैं क्योंकि खाली हैं। खाली होना गुण है, बड़ा गुण है! सबसे बड़ा धार्मिक गुण है।

अगर तुम मुझसे पूछते हो तो सबसे बड़ी धार्मिक कला एक ही है--वह है रीतने की कला। रीत जाओ, बिल्कुल रीत जाओ! ऐसे कि तुम में कुछ भी न बचे। बस बिल्कुल सूने घड़े हो जाओ। जिस दिन तुम पूरे रीत जाओगे, उसी दिन तुम पाओगेः आ गया परमात्मा, आ गया नाचता परमात्मा! उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। उसके पैर के घूंघर बजने लगेंगे। उसकी बांसुरी की आवाज आने लगेगी। आ गया, आ गया! तुम्हारे प्राणों में समा गया!

लेकिन तुम खाली हो जाओ, जगह खाली करो, उसके लिए स्थान रिक्त करो। तुम सिंहासन पर बैठे हो, उसके बैठने के लिए जगह कहां? तुम बीच में अड़े हो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

महावीर ने कहा हैः तुम्हीं हो शत्रु, तुम्हीं हो मित्र। अगर हट जाओ तो तुम मित्र हो; अगर अड़े रहो तो तुम शत्रु हो।

"हीर कटोरा हो गया रीता"... तू कहती है। अच्छा हुआ। असल में रीत जाता है तभी तो कटोरा हीरे का होता है; उसके पहले तो मिट्टी। उसके पहले तो बस मिट्टी। उसके पहले तो दो कौड़ी इसका मूल्य नहीं है। भरे कटोरे का कोई मूल्य नहीं है। तुम भरोगे किस चीज से? कचरे से ही भरोगे! कोई धन से, कोई पद से, कोई प्रतिष्ठा से, कोई त्याग से, कोई ज्ञान से। तुम भरोगे किस चीज से? कूड़ा-कचरा जो चारों तरफ उपलब्ध है, इसी से भरोगे न! तुम्हारी भरावट के कारण तुम्हारा हीरे का कटोरा भी मिट्टी का हो जाएगा।

मैं एक मित्र के साथ कुछ दिन रहा। उनका घर ऐसा भरा था कि चलने-फिरने को भी जगह नहीं थी। चोरों की तो बात दूसरी, घर का मालिक भी अगर भरे उजाले दिन में चले तो भी टकराए। बस चीजें ही चीजें भरी थीं। जो कुछ भी मिल जाए वह भर लेते थे। और कुछ छोड़ते तो थे ही नहीं। पुराना फर्नीचर तो रहता ही था, नया आता जाता था। पुराने रेडियो तो रखे थे, नये भी आ गए थे। पुराना टेलीविजन तो था ही, नया भी आ गया था। और हर चीज कहीं भी पड़ी मिल जाए, वे जोड़ लेते थे--जोड़ने में बड़े कुशल थे।

एक दिन तो मैं बहुत चकित हुआ। हम दोनों घूमने निकले थे। सुबह का वक्त। रास्ते के किनारे एक साइकिल का हैंडल पड़ा था। किसी का टूट गया होगा। थोड़े तो झिझके मेरे कारण। थोड़े तो सकुचाए। लेकिन फिर उनकी आदत ने बल मारा। कहाः क्षमा करें। मैंने कहाः क्या बात है, किस बात की क्षमा मांगते हैं?

उन्होंने कहाः बस क्षमा करें। यह हैंडल तो मैं उठा कर ले जाऊंगा।

मैंने कहाः इस हैंडल का करोगे क्या?

उन्होंने कहाः अब आपसे क्या छिपाना! एक चाक भी मैंने पहले इकट्ठा कर रखा है, एक पैडल भी मेरे पास है। ऐसे ही धीरे-धीरे साइकिल भी हो जाएगी। आप देखना!

पैसे वाले थे, गरीब नहीं थे कोई। इसी तरह तो लोग पैसे वाले हो जाते हैं। इधर से हैंडल मिल गया, उधर से चाक मिल गया, उधर से पैडल मिल गया। फिर कोई सीट भी पड़ी मिल जाएगी। फिर बचा ही क्या? और तब तक जोड़ने की कला भी सीख लेंगे।

कूड़ा-करकट लोग इकट्ठा कर रहे हैं! मैं उनसे कहता कि करोगे क्या इसका?

वह कहतेः कब कोई चीज काम पड़ जाए, कब काम पड़ जाए, क्या पता!

एक बंगाली कहानी मैं पढ़ रहा थाः एक सज्जन हैं उनको यह आदत है कि वे अगर सफर को भी जाते हैं तो घर का सारा सामान ले जाते हैं। रेडियो भी, ग्रामोफोन भी, रिकॉर्ड-प्लेयर भी और सब अंट-शंट! उनकी पत्नी स्वभावतः परेशान है। इतना सारा सामान लादना, थर्ड क्लास का सफर--और भरतीय ट्रेनें! जब भी सफर की बात उठती है, उनकी पत्नी के प्राण कंपते। गर्मी आ रही है, अब फिर सफर की तैयारी शुरू हो रही है, घर भर का सामान बांधा जा रहा है। भर दिया जाकर एक कमरे में। संयोग की बात थी, कमरा बिल्कुल खाली था। बड़े चकित थे, पत्नी भी बड़ी चकित थी। और पति ने कहाः देखा! मैंने कहा नहीं कि ऊपर वाला सबकी फिकर करता है! पूरी ट्रेन भरी है, एक कमरा बिल्कुल खाली है। यह बस अपने लिए समझो। सारा सामान भर दिया कमरे में। वह कमरा इसलिए खाली था कि वह मिलिटरी के लिए था। मिलिटरी का अफसर आया, उसने कहा कि यह क्या मामला है! तीसरे स्टेशन के बाद तुम्हें उतरना पड़ेगा। क्योंकि तीन स्टेशन तक कोई बात नहीं, तुम बैठे रहो; तीसरे स्टेशन के बाद हमारे लोग सफर करने वाले हैं।

उसने कहाः कोई फिकर नहीं। वह शांत ही बैठा रहा, अपना हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। हुक्का भी साथ लाया है। सब चीजें साथ हैं। पूरा घर ही साथ है। चोरों के लिए कुछ छोड़ ही नहीं आए पीछे। पत्नी बहुत डरी और उसने कहा कि अब क्या होगा? अब इतने सामान को उतारना, फिर किसी दूसरे डब्बे में चढ़ाना। गाड़ी पूरी भरी है।

उसने कहाः तू बिल्कुल फिकर मत कर। अरे जिसने चोंच दी है वह दाना भी देता है।

तीसरा स्टेशन आ गया। वह उतरने को राजी नहीं। गाड़ी वहां दो ही मिनट रुकती है। मिलिटरी के लोग अलग नाराज, वह उतरने का राजी नहीं, खींचा-तानी की बात हो गई। मिलिटरी के लोग भी अंदर घुस गए। गाड़ी छूट गई। अब बड़ी कलह मची है, मगर वह अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहा है। आखिर उस मिलिटरी के प्रमुख ने कहा कि फेंक देंगे तुम्हारा सामान, एक-एक चीज उतर देंगे। उसने कहाः देखें कौन उतारता है!

चौथा स्टेशन आया और मिलिटरी के लोगों ने सबने मिल कर उसका सारा सामान नीचे उतार दिया। वह खड़ा अपना हुक्का गुड़गुड़ाता रहा। यही स्टेशन है जहां उसे उतरना है। वह अपनी पत्नी से कहा रहा हैः देखा, अरे जो चोंच देता है वह चना भी देता है! अब ये बुद्धू देख रहे, सामान उतार रहे हैं! सामान उतारने तक की भी अपने को जरूरत नहीं।

ऐसे लोग हैं चारों तरफ, तुम्हें जगह-जगह मिल जाएंगे, जो कूड़ा-कर्कट भरे हैं। और उसको भी सोचते हैं कि परमात्मा की देन है। सोचते हैं वह भी परमात्मा की भेंट है!

इस कूड़े-कर्कट से रीते हो जाओ। यह परमात्मा की भेंट नहीं है। हां, कटोरा परमात्मा का है और कटोरा जरूर हीरे का है। कटोरा दिव्य है। तुम दिव्य हो। तुम कूड़ा-कर्कट भरने के लिए नहीं हो। तुम्हारे भीतर परमात्मा उतरे तो ही शोभा है, तो ही गौरव है, तो ही गरिमा है।

आ गई वह घड़ी जया।

तू कहती हैः

"हीर कटोरा हो गया रीता

भय कैसा यह तीखा-मीठा!"

भय लगेगा--और तीखा और मीठा दोनों। तीखा, क्योंकि पता नहीं किस अज्ञात में उतरना होगा! और मीठा, क्योंकि अज्ञात की पुकार और चुनौती! तीखा, क्योंकि अतीत जाएगा। और मीठा, क्योंकि नये का पदार्पण

होगा। तीखा, क्योंकि आदतें पुरानी, सुविधाएं पुरानी, सुरक्षाएं पुरानी, सब छिन जाएंगी। और मीठा, निर्भार होने का क्षण आ गया। मुक्त होने का क्षण आ गया। उड़ने का मौका आ गया। अब खुला आकाश अपना है, सारा आकाश अपना है!

तू कहती हैः

"तेरे लिए ही मैं सरजाई

मैं तो मर गई ओ हरजाई!

तूने बांधी महा सगाई

मैं तो मर गई ओ हरजाई!"

मरना ही तो है। और धन्य हैं वे जो परमात्मा के लिए मरते हैं। ऐसे तो सभी मरते हैं, मगर शेष सब कुत्ते की मौत मरते हैं। कुत्ते की मौत मत मरना। कुत्ते की मौत का अर्थ है कि जबरदस्ती मरते हैं; मौत आती है तो मरते हैं। साधु की मौत का क्या अर्थ होता है? स्वेच्छा से मर जाना, स्वेच्छा से अपने अहंकार को समर्पित कर देना--और कहनाः जैसी तेरी मर्जी हो, जो तेरी मर्जी हो!

जीसस के अंतिम वचन सूली पर यही थेः हे प्रभु, तेरी मर्जी पूरी हो, मेरी नहीं! यह है मृत्यु, यह है परम मृत्यु! और ऐसी मृत्यु अमृत का द्वार बन जाती है। और ऐसी मृत्यु में निश्चित ही महा सगाई हो जाती है। ऐसी मृत्यु में ही व्यक्ति लीन हो जाता है और समष्टि से एक हो जाता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! "है कोई लेवनहारा," आपकी यह पुकार सुन कर मेरी झोली आपके सामने फैलती गई। प्रवचन-उपरांत आपने पास से गुजरते समय झोली भर दी। धड़कते दिल से पूछती हूंः मैं आपसे क्या पूछूं, ओशो!

योग शुक्ला! पूछने की कोई जरूरत नहीं, पूछने को कुछ है भी नहीं। गुनगुनाओ, गाओ! पूछना क्या है? नाचो, उत्सव मनाओ! पूछना क्या है? पूछने दो उन्हें जिनके मस्तिष्क में खुजलाहट है। पूछने दो उन्हें जो खुजली के बीमार हैं।

अगर तेरी झोली भर गई तो नाच, तो सब लोकलाज छोड़ कर नाच! अब तो नाचने से ही कहा जा सकेगा। अब तो गा कर ही कहा जा सकेगा।

कुछ बातें हैं जो सिर्फ गुनगुनाई जा सकती हैं; और उनके कहने का कोई उपाय नहीं है। कुछ बातें हैं जो चुप्पी में ही कही जाती हैं, मौन ही उनकी भाषा है। इसलिए स्वाभाविक तुझे लगता है कि अब क्या कहूं! कहने की कोई जरूरत ही नहीं है। तेरे बिन कहे मैंने सुना। जब तेरी झोली भरते देखी, तो तूने ही थोड़े ही देखी, मैंने भी देखी। तुम्हारी झोली मेरे बिना जाने तो न भर जाएगी! देखी तेरी आंखों की चमक, देखा तेरा अहोभाव!

कितना मोहक रूप,

नयन ही बतलाएंगे,

कितना पागल प्यार,

सपन ही समझाएंगे।

हर पपड़ी है एक जलधि

की शेष निशानी,

कितनी गहरी प्यास, अधर से जान सकोगे।
चरणों का इतिहास डगर से जान सकोगे।

पल-पल का है साथ,
मगर पल-पल की दूरी,
फीका स्वर्ण-प्रभात,
विफल संध्या सिंदूरी।
तन छूती जलधार
मगर जीवन रेतीला,

तट के मन की पीर लहर से जान सकोगे।
चरणों का इतिहास डगर से जान सकोगे

संध्या की थाली में
कितने दीप हंसे थे,
मावस की स्याही ने
कितने दीप डसे थे!
किस कुर्बानी ने
सूरज की भाग्य लिखा था--

ऊषा की रंगीन नजर से जान सकोगे।
चरणों का इतिहास डगर से जान सकोगे।

प्रतिभा वाले बीज
अंगारों में पलते हैं।
गीतों वाले फूल
अश्रु-तट पर खिलते हैं।
मधुर मिलन का पता
विरह-पुर में पाओगे,

मधु-मदिरा का मोल जहर से जान सकोगे।
चरणों का इतिहास डगर से जान सकोगे।

तेरी झोली भरते मैंने भी देखी। जैसे तूने देखी वैसे मैंने देखी। मैंने नहीं भरी तेरी झोली। झोली भरने वाला तो कोई और ही है। मैंने तो बस पुकार दी, मैंने तो बस इतना ही कहा--"है कोई लेवनहारा!" और तूने झोली फैला दी। लेने वाली तू, भरने वाला कोई और। मैं तो बस बीच का संदेशवाहक, पत्रवाहक, डाकिया! तेरी आंखों में देखा एक क्षण को--एक लपट, एक चमक, एक फूल का खिलना, एक गीत का उभरना! मगर ध्यान रहे, यह झोली जरा में खाली हो सकती है। जरा सी भूल और झोली खाली हो जाए। यह झोली बार-बार भरेगी, बार-बार खाली होगी, अगर चूकें होती रहीं। इसलिए जब झोली भरे तो बहुत सम्हाल लेना।

कबीर कहते हैंः

हीरा पायो गांठ गठियायो, बाको बार-बार क्यों खोले?

कबीर ठीक कहते हैंः हीरा मिल जाए, जल्दी से गांठ गठिया लेना, छिपा लेना। खोल-खोल कर बार-बार मत देखना, क्योंकि कई जेबकट भी मौजूद रहते हैं। ऐसे बार-बार देखा... जेबकट को पता ही ऐसे चलता है। जो होशियार हैं वे खाली जेब को बार-बार देखते हैं। जो नासमझ हैं वे भरी जेब को बार-बार टटोलते हैं। भरी जेब को बार-बार टटोला कि कटेगी। क्योंकि वे जो चोर हैं वे जानते हैं कि जिसकी जेब भरी है वह बार-बार टटोल कर देखता है, कि कहीं कोई ले तो नहीं गया, कहीं कोई चुरा तो नहीं गया! अगर होशियार हो तो खाली जेब को बार-बार टटोल कर देखना, तो खाली जेब को ही काटेगा कोई काटेगा तो; भरी जेब को कोई छुएगा ही नहीं।

हीरा पायो गांठ गठियायो... फिर बहुत सम्हालने की जरूरत है। जिनके पास कुछ नहीं है उनके पास तो सम्हालने को भी कुछ नहीं है। एक लिहाज से वे सुविधा में हैं; उनको झंझट नहीं है ज्यादा।

जापान की एक प्राचीन कहानी है। एक सम्राट रोज रात निकलता है--राजधानी में चक्कर मारने, वेश बदल कर देखने--कहां क्या हो रहा है? व्यवस्था ठीक चल रही या नहीं चल रही? सिपाही जागे हैं या नहीं? एक बात उसे बड़ी हैरान करती है कि एक फकीर हमेशा उसे जागा मिलता है। एक वृक्ष के नीचे। न तो उसके पास कुछ है, मगर हमेशा जागा हुआ मिलता है, हमेशा सावधान, सचेत। न इतना केवल कि सावधान, सचेत; अकेला बैठा-बैठा खुद से ही कहता हैः जागते रहो, जागते रहो! सो मत जाना! कोई और है नहीं तो खुद से ही कहता है। सम्राट की भी जिज्ञासा बढ़ी। और आदमी भी थोड़ा मस्त लगता है, अलमस्त लगता है! कुछ बात है! कोई हीरे-जवाहरात तो नहीं रखे हुए हैं! पा गया हो कहीं, फकीरों का क्या! कहीं गुदड़ी में लाल छिपाए बैठा हो! जागते रहो, सो मत जाना--कह किससे रहा है? खुद से ही कह रहा है!

एक दिन सम्राट से न रहा गया। उत्सुकता बढ़ती चली गई, तो उसने पूछा कि महाराज, पूछ सकता हूं? दिन में भी आकर देखा, आपको जागते पाया; रात में भी आकर देखता हूं, जागते पाया। जागते ही नहीं पाता हूं, कहते भी पाता हूं कि जागते रहो, सो मत जाना! सावधान! किसको सावधान कर रहे हैं, किसको जगा रहे हैं? किसलिए? आपके पास है क्या जो इतनी चिंता? सोओ मजे से, पैर पसार कर सोओ। हमें तो सोने की सुविधा नहीं, सेना भी चाहते हैं तो सो नहीं पाते, नींद नहीं आती। तुम तो घोड़े बेच कर सो सकते हो।

वह फकीर कहने लगाः बात उलटी है। तुम चाहो तो घोड़े बेच कर सोओ, तुम्हारे पास खोने को क्या है? मेरे पास खोने को कुछ है। मेरी झोली भर गई। अब मुझे जागे ही रहना है, जागे ही रहना है। अपने को ही चेताता रहता हूं--सो मत जाना!

उसने सम्राट से कहाः तुम अगर सो जाओ तो तुम्हारे पास खोने को भी क्या है--कूड़ा-करकट! खो भी गया तो क्या, बचा भी रहा तो क्या! न ऐसे कोई मूल्य है, न वैसे कोई मूल्य है। मेरे पास कुछ खोने को है।

शुक्ला! अब तेरे पास कुछ खोने को है। जागी रहना, होश सम्हाले रखना! झोली भरे तो फिर बड़ी ही सावचेतता की आवश्यकता है। अन्यथा झोली जरा में खाली हो जाती है! भरती बड़ी मुश्किल से है, खाली बड़ी जल्दी हो जाती है।

जीवन के जो परम मूल्य हैं, मिलने तो बहुत मुश्किल से हैं, लेकिन खो बड़े जल्दी जाते हैं। इन पर्वत-शिखरों पर चढ़ना तो बहुत दूभर है लेकिन गिर जाना बहुत आसान है। गिरना मत, सम्हल कर चलना!

जो तुझे हुआ है, और बहुत संन्यासियों को हो रहा है। बाहर से आए हुए दर्शकों को दिखाई भी न पड़ेगा। क्योंकि यह झोली कोई दृश्य नहीं है, और यह हीरे कोई हाथों से नहीं छुए जा सकते। जो तुझे हो रहा है बहुतों को हो रहा है। जो दीवाने यहां इकट्ठे हुए हैं वे इकट्ठे ही इसलिए हुए हैं। जो पियक्कड़ यहां आ गए हैं वे कुछ ऐसे ही नहीं बैठे हैं। जी भर कर पी रहे हैं! पी रहे हैं तो ही यहां टिके हैं। अन्यथा हजार बाधाएं हैं--समाज की, राज्य की, व्यवस्था की। हजार बाधाएं हैं। यहां आना आसान तो नहीं है। यहां आना केवल दुस्साहसियों का काम है। लेकिन जो आ गए हैं और जिन्हें स्वाद लग गया, उनके जाने का भी उपाय नहीं है।

तेरीझोली भरी, ऐसी सबकी झोली भरे! है कोई लेवनहारा!

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

अमि तो किछु नाई

पहला प्रश्नः ओशो! बाबा अलाउद्दीन अपने जीवन के अंतिम दिनों में कहा करते थेः

सब माटी होए गैलो,

अमि तो किछु नाई,

नाद-सुर को पार न पायो।

क्या उन्हें सदगुरु न मिला, इसलिए वे ऐसा कहते हुए मरे या कि नाद-सुर अनंत हैं, उसके पार होने का उपाय ही नहीं है, इसलिए? कृपा करके समझाएं!

नरेंद्र बोधिसत्व! संगीत, सत्य, सौंदर्य--सभी अनंत हैं। उनके पार पाने का कोई उपाय नहीं है। अथाह हैं। जो डूबेगा खो जाएगा; लौट कर थाह की खबर न दे सकेगा।

रामकृष्ण कहते थेः ऐसी ही है सत्य की खोज जैसे कोई नमक का पुतला सागर में डुबकी मारे थाह लगाने को। नमक का पुतला और सागर में डुबकी--गल ही जाएगा! जैसे गहरा जाएगा, वैसे ही गलता जाएगा। जैसे-जैसे गहराई बढ़ेगी वैसे-वैसे मिटेगा। परम गहराई में शेष ही न रह जाएगा; लौट कर खबर देने को कोई भी न बचेगा।

जीवन अपने सभी आयामों में अनंत है। यहां मनुष्य की बनाई हुई चीजों की ही सीमाएं हैं। परमात्मा का बनाया हुआ कुछ भी सीमित नहीं हो सकता। उसके हाथ की जिस चीज पर छाप है वही अनंत है, वही असीम है। न आदि है उसका, न अंत है उसका।

और नाद गहरे से गहरा आयाम है।

भौतिकविद कहते हैं कि अस्तित्व का निर्माण हुआ है विद्युत-ऊर्जा से। रहस्यवादी कहते हैंः अस्तित्व का निर्माण हुआ है ध्वनि से, नाद से। और दोनों बातें भिन्न दिखाई पड़ती हैं भिन्न नहीं हैं, क्योंकि नवीनतम खोजें यह भी कहती हैं कि विद्युत-ऊर्जा को नाद में बदला जा सकता है, नाद को विद्युत-ऊर्जा में बदला जा सकता है। वे दोनों एक ही मौलिक शक्ति की अभिव्यक्तियां हैं।

यह जो तुमने कहानी सुनी है शायद कहानी ही हो, लेकिन उसमें सत्य का बड़ा अंश छिपा है। तुमने जरूर सुना है कि एक समय था, ऐसे संगीतज्ञ भी थे जो दीपक राग बजा सकते थे, जो ऐसा राग उठा सकते थे कि बुझे दीये जल जाएं। ऐसा कभी हुआ हो या न हुआ हो, मगर ऐसा हो सकता है। विज्ञान आज इसके लिए गवाही देता है। क्योंकि अगर विद्युत ध्वनि बन सकती है और ध्वनि विद्युत बन सकती है, तो फिर एक विशिष्ट नाद में बुझे दीये जल सकते हैं, जले दीये बुझ सकते हैं। यह ऊर्जा की ही दो अभिव्यक्तियां हैं। जिन्होंने बाहर से खोजा--विज्ञान ने, भौतिक शास्त्रियों ने--उन्होंने विद्युत-ऊर्जा को पाया। विद्युत-ऊर्जा मालूम होती है--देह है अस्तित्व की। और नाद, ओंकार--प्राण हैं अस्तित्व का। जिन्होंने भीतर खोजा, जो अंतर्तम में गए, उन्होंने नाद की बात कही।

इस देश में तीन धर्म हैं। उनमें हर बात में भेद हैः हिंदू हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं; उनमें किसी बात में तालमेल नहीं है। बाद में भी जो और धर्म पैदा हुए, जैसे सिक्ख, उनमें भी बड़े भेद हैं। लेकिन एक बात के संबंध में वे सब

राजी हैं, और वह है ओंकार का नाद। जैन मानते हैं कोई ईश्वर नहीं है। अब इससे बड़ा विरोध और क्या होगा हिंदू-विचार का? हिंदू-विचार ईश्वर में आस-पास ही नृत्य करता है। हिंदू-विचार ही ईश्वर की बांसुरी के बिना अर्थ नहीं रखेगा! ईश्वर ही केंद्र-बिंदु है। वही केंद्र है; हिंदू-चिंतन उसकी परिधि है। लेकिन जैनों ने ईश्वर को इनकार कर दिया और एक धर्म बनाया जो अदभुत है--अनीश्वरवादी धर्म। और आज से ढाई हजार साल पहले!

अभी पश्चिम में इस पर विचार चलता है। अनीश्वरवादी धर्म हो सकता है या नहीं, इसका विचार ही चल रहा है अभी। लेकिन यहां हमने अनीश्वरवादी धर्म निर्मित भी किया। नास्तिक भी धार्मिक हो सकता है, हमने उसके लिए भी द्वार खोले। आस्तिक होना अनिवार्य शर्त न रखी। नास्तिक के लिए भी धर्म उतना ही सुगम और सुलभ बनाया जितना आस्तिक के लिए। यह बड़ी क्रांति थी। फिर बुद्ध तो और एक कदम आगे गए--महावीर से भी आगे एक कदम लिया। कम से कम महावीर आत्मा को तो मानते हैं। बुद्ध ने तो कहाः आत्मा भी नहीं है। न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है। शून्य है। नास्तिक भी इतनी हिम्मत नहीं करता, बुद्ध महा-नास्तिक हैं! नास्तिक भी इतनी हिम्मत नहीं करता कि मैं नहीं हूं; भला नास्तिक कहता होशाश्वत आत्मा नहीं है, लेकिन इतना तो मानेगा अभी हूं! बुद्ध कहते हैंः अभी भी नहीं हूं। आत्मा है ही नहीं। क्षणभंगुर भी नहीं है, शाश्वत की तो बात ही छोड़ दो। न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है; फिर भी धर्म हो सकता है! धर्म हुआ और बुद्ध के पीछे चल कर अनंत-अनंत लोगों ने जीवन का परम स्वाद पाया।

इन तीनों धर्मों में हर चीज का विरोध है--यज्ञ का, हवन का, वर्णाश्रम-धर्म का, विधि-विधानों का कोई तालमेल नहीं है। मगर एक संबंध में तीनों राजी हैं कि उस अंतर्तम में, जिसको महावीर आत्मा कहते हैं, हिंदू परमात्मा कहते हैं, बुद्ध शून्य कहते हैं--एक नाद उठता है, एक अपूर्व नाद उठता है! एक वीणा बजती है। वीणा नहीं है वहां--और बजती है। कोई संगीतज्ञ नहीं है वहां--और संगीत उठता है। इस संबंध में तीनों राजी हैं। अगर हम गौर से समझें तो इसका यह अर्थ हुआ कि ईश्वर से भी ज्यादा, आत्मा से भी ज्यादा महत्वपूर्ण विचार है नाद का, संगीत का, इसका कोई पार नहीं हो सकता।

अलाउद्दीन ठीक कहते हैं कि नाद का कोई पार न पाया... "नाद-सुर को पार न पायो।" और इस सदी में जो लोग नाद-सुर की गहराई में गए हैं, उनमें बाबा अलाउद्दीन का और कोई मुकाबला नहीं है। बाबा अलाउद्दीन तो कहीं से भी नाद में उतर जाते थे। कोई वीणा ही नहीं चाहिए, कोई सितार ही नहीं चाहिए; लोहे के दो टुकड़े पड़े मिल जाएं, उन्हीं को बजा देंगे और उन्हीं से अदभुत संगीत का जन्म हो जाएगा! चम्मच से थाली को बजाने लगेंगे और मंत्रमुग्ध कर देंगे। एक बार जिसे स्वाद आ गया, एक बार जिसे उसका बोध आ गया, वह उसे कहीं से भी पुकार ले सकता है। लेकिन जितनी गहराई बढ़ी उतना ही यह भी अनुभव बढ़ा कि पार पाया न जा सकेगा। मैं मिट जाऊंगा लेकिन पार पाया न जा सकेगा।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ।।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ।।

ऐसा अपूर्व उनका अनुभव हुआ होगा। इसी अपूर्व अनुभव के कारण कहते हैंः सब माटी होए गैलो! सब प्रयत्न, प्रयास, अभ्यास, सब मिट्टी हो गया। जीवन भर चेष्टा की, सब मिट्टी हो गई। मनुष्य की चेष्टा मिट्टी हो ही

जाती है। मनुष्य के किए कुछ हुआ है, कि होगा? होता है उसके किए। हम नाहक ही अकड़ लेते हैं। हम नाहक ही बीच में अपने अहंकार को भर लेते हैं।

दो व्यक्ति नदी के किनारे बैठे हैं--एक युवक और युवती। सांझ का समय है। बाढ़ में आई नदी है। बड़ी लहरें उठ रही हैं। पूर्णिमा की रात है। नदी चांदी हो गई है। दोनों प्रेम में हैं, नये-नये प्रेम में हैं। प्रेम का गहरा अंधापन है अभी, अभी हर चीज हरी-हरी सूझती है--और ऐसी रात! और दूर पपीहे की पुकार और नदी के किनारे का सन्नाटा! युवक कहने लगाः "आओ लहरो आओ, नाचो लहरो नाचो।" और लहरें आने लगीं! आ ही रही थीं लहरें तो। और लहरें नाचने लगीं! नाच ही रही थीं लहरें तो। युवती और पास आ गई, गले से लग गई युवक के और कहाः तो नदी की लहरें भी तुम्हारी आज्ञा मानती हैं। धन्य हो तुम! तुम्हें पाकर मैं भी धन्य हूं। फूल खिल ही रहे हैं, चांद-तारे चल ही रहे हैं। यह विराट अस्तित्व तुम्हारे किए से नहीं हो रहा है। तुम नहीं थे तब भी चल रहा था। तुम नहीं रहोगे तब भी चलेगा। मगर बीच में दो घड़ी को तुम अकड़ लेते हो, नाहक अकड़ लेते हो! और बड़े प्रयास करते हो, बड़ी चेष्टाएं करते हो--अपने को सिद्ध करने की, छोड़ जाने की हस्ताक्षर, छोड़ जाने की कुछ चिह्न समय की रेत पर। जो जानते हैं, वे ऐसा ही कहेंगेः सब माटी होए गैलो! वह जो किया-धरा था सब मिट्टी हो गया। और जिसने ऐसा अनुभव कर लिया कि मेरा किया-धरा सब मिट्टी हो गया, उसके ऊपर सोने की वर्षा हो जाती है। लेकिन वह प्रसाद-रूप है, वह प्रसाद ही है। प्रयास नहीं, प्रयत्न नहीं। वह प्रसाद उतरता तभी है जब तुम बिल्कुल निष्प्रयत्न, अप्रयास में, शून्य, आतुर, उन्मुख, राजी, द्वार खोले बैठे होते हो--आता है अतिथि, जरूर आता है। तुम्हारे बुलाने से नहीं आता। न तुम्हारे बुलाने से सूरज की किरणें कमरे के भीतर आती हैं, न हवा के झोंके आते हैं, न पानी की बूंदें आती हैं। हां, इतना ही तुम करो कि द्वार खुला रखना; सूरज उगे तो आए; हवा बहे तो आए, पानी बरसे तो बूंदाबांदी हो। इतना ही करना कि तुम द्वार खुला रखना। इससे ज्यादा मनुष्य को करने को और कुछ भी नहीं है।

अलाउद्दीन ठीक कहते हैंः

सब माटी होए गैलो,
अमि तो किछु नाई।

अब मैं कुछ भी नहीं हूं। खो गए, मिट गए। सब मिट्टी हो गया प्रयास। और जब प्रयास मिट्टी हो जाता है तो अहंकार को बनने की कोई जगह नहीं रह जाती, खड़े होने को कोई स्थान नहीं रह जाता, सहारा नहीं रह जाता, कोई टेका नहीं रह जाता। जब तुम्हारे सारे प्रयास मिट्टी हो जाएंगे, जब तुम पाओगे कि तुम्हारे सारे प्रयास व्यर्थ हैं, तो तुम कैसे कह सकोगे कि मैं हूं? मैं को कैसे निर्मित करोगे? मैं के लिए प्रयास की ईंटें चाहिए, तो मैं का भवन बनता है, बड़ा भवन बनता है। हालांकि भवन होता है सिर्फ ताश के पत्तों का; हवा के जरा से झोंके में गिर जाता है, देर नहीं लगती। मौत आती है और देर नहीं लगती, पत्ते बिखर जाते हैं, महल भूमिसात हो जाते हैं। पत्तों के महल ही नहीं बिखर जाते, पत्थरों के महल भी बिखर जाते हैं। यहां सभी कुछ मिट्टी हो जाता है।

अलाउद्दीन का वचन महत्वपूर्ण है। संगीत से उन्होंने परमात्मा को जाना, संगीत से उन्हें परमात्मा की झलक मिली। संगीत में ही उन्हें सदगुरु मिला।

सब माटी होए गैलो,
अमि तो किछु नाई,
नाद-सुर को पार न पायो।

सीधे-सादे आदमी थे। पर बड़ी चेष्टा की, जीवन भर चेष्टा की। नाद-सुर में सब कुछ समर्पित किया था। और पार नहीं मिला। और यही धन्यता है। पार मिल जाता तो उसका अर्थ थाः नाद-सुर को जाना ही नहीं, नाद-सुर के नाम पर खेल-खिलौने सीखे; नाद-सुर के नाम पर आदमी के ही बनाए हुए वाद्य-यंत्रों में उलझे रहे; नाद-सुर न जाना।

जिसका पार मिल जाए, जानना वह आदमी की ही बनावट है। जिसका पार न मिले, समझना कि प्रभु से जुड़े, प्रभु के निकट आए। अपार को ही तलाशो, अनंत को ही तलाशो। और तलाश के लिए तुम्हें कोई कृत्य नहीं करना है--तुम्हें मिटना है, तुम्हें ना-कुछ होना है। तुम शून्य हो जाओ तो पूर्ण आज उतरने को राजी है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! ईश्वर-प्राप्ति में कार्य-कारण नहीं, तो फिर ध्यान का औचित्य समझाने की कृपा करें।

रामनाथ शर्मा! ध्यान का कोई औचित्य नहीं है। उचित-अनुचित की भाषा बहुत पीछे छूट जाती है। ध्यान उचित-अनुचित का अतिक्रमण है। उचित और अनुचित तो मन के विचार हैं; और ध्यान अ-मन की अवस्था है। उचित-अनुचित तो बाजार की बातें हैं; ध्यान तो अंतर्यात्रा है। उचित-अनुचित तो व्यवहार है; ध्यान तो अंतर्दशा है।

लेकिन मैं तुम्हारा प्रश्न समझा। तुम यह पूछ रहे हो कि ईश्वर-प्राप्ति में कार्य-कारण नहीं। निश्चित ही ईश्वर-प्राप्ति में कोई कारण नहीं। तुम ऐसा कुछ भी नहीं कर सकते जिससे ईश्वर पाया जा सके। तुम कुछ कर सकते तो कारण होता। तुम्हारे किए ईश्वर मिलता तो कुछ कारण होता। ईश्वर पाने में कोई भी कारण काम नहीं आता। इसीलिए तो ईश्वर विज्ञान का अंग नहीं है, इसीलिए तो विज्ञान ईश्वर को अंगीकार नहीं कर पाता। क्योंकि विज्ञान का एक मौलिक आधार है और वह है कार्य-कारण का सिद्धांत। जो चीज कार्य-कारण के सिद्धांत के भीतर है वह विज्ञान स्वीकार करेगा।

सौ डिग्री तक पानी गर्म करो, भाप बनता है; फिर सौ डिग्री तक गर्म चाहे मस्जिद में करो, चाहे मंदिर में, चाहे गुरुद्वारा में, चाहे चर्च में, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि मंदिर में निन्यानबे डिग्री पर बन जाएगा भाप और मस्जिद में थोड़ा देर लगाएगा कि यह मांसाहारियों की जगह है। सौ डिग्री पर ही बनेगा, चाहे मस्जिद हो, चाहे मंदिर हो, हिंदू-मुसलमान का कोई भेद न करेगा। फिर चाहे भारत हो और चाहे पाकिस्तान हो और चाहे चीन हो, चाहे जापान हो, सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। सौ डिग्री गर्मी कारण है। जैसे ही कारण पूरा हुआ, पानी को भाप बनना ही पड़ेगा। लेकिन इसका एक अर्थ हुआ कि पानी गुलाम है। सौ डिग्री तक तुमने गर्मी पैदा कर दी तो अब पानी मालिक नहीं है कि कह सके कि आज दिल नहीं, कि आज भाप न बनेंगे, कि आज उमंग ही नहीं हो रही, आज आकाश में उड़ने का इरादा ही नहीं है, फिर कभी देखेंगे, कि आज चित्त बहुत खिन्न है। पानी कुछ भी न कह सकेगा। पानी की कोई स्वतंत्रता नहीं है।

कार्य-कारण का सिद्धांत स्वतंत्रता का अंत है--हत्या है। जहां कार्य-कारण का सिद्धांत लागू होता है वहां नियति है, वहां भाग्य है। यह पानी का भाग्य है कि उसे सौ डिग्री पर भाप बनना ही पड़ेगा। यह अपरिहार्य भाग्य है, अनिवार्य भाग्य है। इससे बचने का कोई उपाय नहीं है।

परमात्मा कार्य-कारण के भीतर नहीं है, नहीं तो गुलाम होता। ... कि किसी आदमी ने सौ उपवास कर दिए कि परमात्मा को आना ही पड़ेगा। तब तो परमात्मा आदमी से छोटा होता, जैसे पानी आदमी से छोटा है। तब तो हमारी मुट्ठी में होता; जैसा चाहते वैसा नचाते, जहां चाहते वहां बिठाते। फिर तो परमात्मा प्रयोगशाला

में होता। फिर तो हम नई-नई तरकीबें खोज लेते। जैसे पुराने जमाने में लोग पानी गर्म करते तो लकड़ी जलाते, बामुश्किल लकड़ी जलती, फिर पानी गर्म होता, घंटों लगते। अब हम जानते हैं कि बिजली से क्षण में हो जाए। और विद्युत से क्षण में होता है, अणु की भट्टी से तो क्षण भी न लगे। जैसे गर्म तवे पर पानी की बूंद बस छन्न से उड़ जाती हवा में, ऐसे सागर के सागर उड़ सकते हैं अणु-ऊर्जा से--क्षण में!

अगर कार्य-कारण का सिद्धांत परमात्मा पर लागू होता हो तो महावीर ने बारह साल में पाया, पच्चीस सौ साल में हमने ऐसी तरकीबें खोज ली होतीं कि बारह साल लगते? बारह मिनट में पाते। ... कि और भी जल्दी कर लेते, नये-नये यंत्र खोजते, नई-नई व्यवस्था करते। अगर उपवास से ही परमात्मा मिलता हो, तो उपवास करता क्या है? तुम्हारे शरीर में से एक पौंड रोज वजन कम करेगा। तुम्हारे भोजन के यंत्र को निष्क्रिय कर देगा, तुम्हारे पेट की अंतड़ियों को खाली कर देगा। लेकिन यह सब तो विज्ञान के द्वारा घड़ियों में हो सकता है, इसके लिए महीनों की क्या जरूरत है? इसमें तो कोई बड़ी अड़चन नहीं है। अगर इससे परमात्मा मिलता हो तो महावीर ने बारह साल उपवास किए, यह तो दो-चार दिन में हो जाएगा। तुम्हारे शरीर की इतनी शुद्धि तो ऐसे ही हो सकती है।

लेकिन विज्ञान की सीमा के बाहर है परमात्मा; पकड़ में नहीं आता; किसी प्रयोग में नहीं आता। कार्य-कारण का तो कोई संबंध परमात्मा से नहीं है। इसलिए रामनाथ का प्रश्न ठीक हैः फिर ध्यान का क्या औचित्य?

प्रश्न इसलिए उठ रहा है कि रामनाथ के मन में यह भाव होगा कि ध्यान कारण है और परमात्मा कार्य है। ध्यान कारण नहीं है। ध्यान केवल अवसर है, कारण नहीं। ध्यान निषेधात्मक है, कारण विधायक होता है। इस भेद को समझो।

जैसे मैंने अभी तुमसे कहाः सूरज निकला। यह तुम्हारी इच्छा से नहीं निकल सकता कि तुम जब चाहो तब निकल आए। लेकिन एक काम तुम कर सकते हो कि सूरज निकला रहे और तुम आंख बंद किए बैठे रहो। तो लाख सूरज सिर पटके, तुम्हारे लिए तो नहीं निकला सो नहीं निकला। सूरज तुम्हारी इच्छा से नहीं निकलता; लेकिन तुम्हारी इच्छा से तुम चाहो न देखना तो नहीं देखो, जन्मों-जन्मों तक न देखो, आंख बंद रख सकते हो। द्वार-दरवाजे बंद रख सकते हो। परदे मोटे लटका सकते हो कि तुम्हारे कमरे में अंधकार ही रहे, दिन में भी अंधकार रहे। यह तुम कर सकते हो।

ध्यान का भी ऐसा ही निषेधात्मक प्रयोजन है। ध्यान कहता हैः परदे खोलो। परदे खोलने से सूरज के पैदा होने का कोई संबंध नहीं है। ध्यान कहता हैः खिड़कियां, द्वार-दरवाजे खोलो। द्वार-दरवाजे खुलने से ही सुबह नहीं हो जाएगी; लेकिन द्वार-दरवाजे खुले हों तो जब सुबह होगी तब तुम्हारे जीवन में रोशनी भर जाएगी। सुबह तो जब होगी तब होगी। सुबह के तो अपने राज हैं, अपने रास्ते हैं, अपना मार्ग है।

परमात्मा को जब आना है तब आएगा; तुम खींच कर नहीं ला सकते। लेकिन इतना तुम कर सकते हो कि जब परमात्मा आए तो तुम मौजूद रहो। द्वार पर बंदनवार बांध सकते हो, दीये जला सकते हो; द्वार पर बांसुरी बजा सकते हो; उसके स्वागत में फूल बिछा सकते हो, पलक-पांवड़े बिछा सकते हो। आएगा तब आएगा। कार्य-कारण की बात नहीं कि सौ डिग्री हमने पूरी कर दी, अब आना ही पड़ेगा; ऐसी कोई अपरिहार्यता नहीं है। आएगा तब आएगा। प्रसाद जब बरसेगा जब बरसेगा। लेकिन इतना तुम कर सकते हो कि प्रसाद बरसे तो तुम वंचित न रह जाओ। तुम अपना सारा कूड़ा-कर्कट खाली कर सकते हो कि जब आए अतिथि तो तुम्हें रहने योग्य पाए। तुम मंदिर बन सकते हो।

ध्यान परमात्मा को नहीं लाता, तुम्हें मंदिर बनाता है। ध्यान परमात्मा को नहीं लाता, तुम्हारी आंखों को खोलता है। ध्यान परमात्मा को नहीं लाता, लेकिन तुम्हें उसके स्वागत के लिए तत्पर करता है। ध्यान उत्सव है, अवसर है।

ध्यान में औचित्य मत खोजो। लेकिन हमारा मन ऐसा है कि हर चीज में साधन-साध्य की बातें सोचता है। हमारा मन दुकानदार का हैः लाभ क्या होगा?

लोग मुझसे आकर पूछते हैंः "ध्यान करेंगे तो लाभ क्या होगा?" जरा सोचते हो, लाभ की भाषा और ध्यान! ... "मिलेगा क्या?" आदमी पहले पूछता हैः मिलेगा क्या? ध्यान तो उत्सव है, अपने आप में आनंद है। द्वार खुला हो, पक्षियों के ये गीत तुम्हारे द्वार पर प्रवेश करने लगें; ये वृक्षों की सुगंध तुम्हारे नासापुटों में भर जाए! यह सूरज, ये चांद-तारे तुम्हें दिखाई पड़ने लगें। यह अस्तित्व तुम्हारे अनुभव में आने लगे। परमात्मा कहीं और थोड़े ही है--यहीं है, यही है, अभी है। कण-कण में है! मगर तुम जड़ हो। ध्यान परमात्मा को नहीं लाएगा; तुम्हारी जड़ता को तोड़ेगा।

ध्यान को तुम परमात्मा से जोड़ो ही मत। इसीलिए तो बुद्ध भी ध्यान की शिक्षा दे सके। क्योंकि परमात्मा से कोई लेना-देना ही नहीं है। महावीर भी ध्यान की शिक्षा दे सके क्योंकि परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है।

चकित होओगे जान कर तुम कि पतंजलि ने परमात्मा को भी ध्यान करने के लिए एक निमित्त माना है। यह तुम चकित होओगे जान कर, उलटी हो गई बात। आमतौर से लोग सोचते हैं कि ध्यान कारण है, परमात्मा कार्य; ध्यान निमित्त है, परमात्मा उसका लक्ष्य। पतंजलि ने कहा है कि परमात्मा ध्यान करने में सिर्फ एक आलंबन है, एक निमित्त। कुछ लोग हैं जो बिना परमात्मा के ध्यान नहीं कर सकते, तो चलो भाई, मान लो परमात्मा को और ध्यान तो करो। चलो इसीलिए ध्यान करो कि ध्यान करने से परमात्मा मिलेगा। हालांकि ध्यान करने से परमात्मा के मिलने का कोई संबंध नहीं है। ध्यान तुम करोगे तो तुम खुलोगे, तुम प्रकट होओगे। तुम्हारी कली जो बंद-बंद है, विकसित होगी, कमल बनेगा। और उस कमल की अनुभूति का नाम ही भगवत्ता है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है--खुले हुए कमल की अभिव्यक्ति। वह आनंद जो फूल के खिलने पर उपलब्ध होता है, जब तुम्हारी चेतना का कमल खुलेगा तो उस आनंद का नाम भगवत्ता है।

कार्य-कारण का कोई संबंध नहीं है। औचित्य की कोई बात नहीं है। ध्यान तो एक दीवानगी है। यहां लाभ-हानि का हिसाब, इतनी होशियारी से नहीं चलेगा। पहले पक्का हो जाए कि क्या मिलेगा, तब ध्यान करोगे, तो कभी ध्यान ही न कर सकोगे।

जीवन में कुछ तो रहने दो जो औचित्य के पार हो! जीवन में कुछ तो बचने दो जो साधन न हो, कारण न हो। जीवन में कुछ तो बचने दो जो बस अपने आप में अपना साध्य हो। नाचने का मजा अपने में है। नाचना क्या अपने में काफी नहीं? हां, जो न नाच सकते हों, बिल्कुल ही पंगु हों, लकवा खा गए हों, उनके लिए जरूरत हो तो भगवान की धारणा को बना लें। पहले कृष्ण की मूर्ति खड़ी कर लें, फिर नाचें। अगर तुम नाच सकते हो तो कृष्ण की मूर्ति की भी कोई जरूरत नहीं है। किसी आलंबन की कोई जरूरत नहीं है, नृत्य पर्याप्त है। कृष्ण के आस-पास नाचने का सवाल नहीं है; जहां तुम नाचोगे, कृष्ण आस-पास होंगे। नाचोगे तो कृष्ण को आस-पास होना ही है। नृत्य की भाव-भंगिमा भगवत्ता है।

जब तुम शून्य होकर बैठ जाओगे तो परमात्मा नहीं तो और कौन होगा? जब तुम मिट जाओगे तो जो बचेगा उसका नाम परमात्मा है।

तीसरा प्रश्नः ओशो!

स्वर सभी असमर्थ मेरे, कैसे अभिनंदन करूं
जी यही कहता, तुम्हारा मूक अभिनंदन करूं!

जगदीश भारती! मौन हो जाना ही, चुप हो जाना ही गहरी से गहरी बात कहने का उपाय है। शब्द तो केवल सतह छूते हैं; मौन अतल गहराइयों को। सत्य तो अतल गहराई में है। और शब्द तो सतह पर है। इसलिए कोई शब्द सत्य को अभिव्यक्त नहीं कर पाता। न कोई शब्द प्रेम को अभिव्यक्त कर पाता है। न कोई शब्द सौंदर्य को अभिव्यक्त कर पाता है। सत्य बड़ा असमर्थ है; बोल ही नहीं सकता, अबोल है। और शब्द भी बड़े असमर्थ हैं, नपुंसक हैं, बस कामचलाऊ दुनिया में ठीक हैं, लेन-देन की दुनिया में ठीक हैं। जैसे गहरे चले वैसे ही शब्द व्यर्थ हुए।

अभिनंदन मौन ही होगा। अभिनंदन समर्पण है, झुक जाना है। क्यों सदियों-सदियों में लोग प्रार्थना में झुके हैं? क्या तुम सोचते हो पृथ्वी पर सिर रख देने से कुछ धार्मिकता हो जाती है? पृथ्वी पर सिर रख देने से कुछ धार्मिकता नहीं हो जाती। लेकिन क्या करे आदमी? शब्द काम नहीं पड़ते और धन्यवाद देना है। धन्यवाद दिए बिना भी नहीं बनता, क्योंकि जब इतना प्रसाद बरसता हो तो लाज आती, संकोच लगता, धन्यवाद देने का मन होता; धन्यवाद न दो तो लगता है अपराध हुआ। तो करे क्या आदमी? असमर्थ, असहाय--झुक जाता है! वह झुकना केवल मनुष्य की असमर्थता है, शब्द की असमर्थता है, बोल की असमर्थता है। पृथ्वी पर सिर टेक देता है कि अब और क्या करूं?

अर्पित मेरी भावना--इसे स्वीकार करो!

तुमने गति का संघर्ष दिया मेरे मन को,
सपनों को छवि के इंद्रजाल का सम्मोहन,
तुमने आंसू की सृष्टि रची है आंखों में,
अधरों को दी है शुभ्र मधुरिमा की पुलकन!
उल्लास और उच्छवास तुम्हारे ही अवयव,
तुमने मरीचिका और तृषा का सृजन किया,
अभिशाप बना कर तुमने मेरी सत्ता को,
मुझको पग-पग पर मिटने का वरदान दिया।

मैं हंसा तुम्हारे हंसते-से संकेतों पर,
मैं फूट पड़ा लख बंक भृकुटि का संचालन,
अपनी लीलाओं से हे विस्मित और चकित!
अर्पित मेरी भावना--इसे स्वीकार करो!

अर्पित है मेरा कर्म--इसे स्वीकार करो!

क्या पाप और क्या पुण्य? इसे तो तुम जानो,
करना पड़ता है, केवल इतना ज्ञात यहां।
आकाश तुम्हारा और तुम्हारी ही पृथ्वी,
तुममें ही तो इन सांसों का आघात यहां।

तुममें निर्बलता और शक्ति इन हाथों की,
मैं चला कि चरणों का गुण केवल चलना है,
ये दृश्य रचे, दी वही दृष्टि तुमने मुझको,
मैं क्या जानूं क्या सत्य और क्या छलना है।

रच-रच कर करना नष्ट तुम्हारा ही गुण है,
तुममें ही तो है कुंठा इन सीमाओं की,
हे निज असफलता और सफलता से प्रेरित!
अर्पित है मेरा कर्म--इसे स्वीकार करो!

अर्पित मेरा अस्तित्व--इसे स्वीकार करो!

रंगों की सुषमा रच मधुऋतु जल जाती है,
सौरभ बिखरा कर फूल धूल बन जाता है,
धरती की प्यास बुझा जाता गल कर बादल,
चट्टानों से टकरा कर निर्झर गाता है!

तुमने ही तो पागलपन का संगीत दिया,
करुणा बन गलना तुमने मुझको सिखलाया,
तुमने ही मुझको यहां धूल से ममता दी,
रंगों में जलना मैंने तुमसे ही पाया!

उस ज्ञान और भ्रम में ही तो तुम चेतन हो।
जिनसे मैं बरबस उठता-गिरता रहता हूं,
निज खंड-खंड में हे असीम, तुम हे अखंड,

अर्पित मेरा अस्तित्व--इसे स्वीकार करो!

झुको! झुक जाओ पृथ्वी पर! झुक जाओ धूल में! कुछ मंदिरों की तलाश करनी जरूरी नहीं है। तुम जहां झुके वहां मंदिर है। तुम जहां अकड़े वहीं तीर्थ खो गया--संसार... । तुम जहां झुके वहीं तीर्थ बन गया।

शब्द तो नहीं कह पाएंगे, जगदीश! स्वर नहीं कह पाएंगे, लेकिन मौन झुकने की कला सब कह देती है--जो नहीं कहा जा सकता, वह भी; जो अव्याख्य है, वह भी; जो अनिर्वचनीय है, वह भी। ज्ञानी जो नहीं कह पाते, भक्त कह जाते हैं।

चौथा प्रश्नः ओशो! मैं विवाह करने ही वाली थी कि मेरा होने वाला पति लापता हो गया है। मैं बहुत दुखी हूं। सांत्वना की तलाश में आपके द्वार आई हूं।

कमला! नाचो! पति समय पर लापता हो गया--उलझन बची, झंझट बची। पीछे बहुत पछतावा होता। लेकिन आदमी का मन ऐसा है कि जो नहीं है उसमें आकर्षण और जो है उसमें विकर्षण।

गरीब सोचते हैं अमीर हो जाएं। अज्ञानी सोचते हैं ज्ञानी हो जाएं! भोगी सोचते हैं त्यागी हो जाएं। अविवाहित सोचते हैं विवाहित हो जाएं। विवाहित सोचते हैं मर जाएं, कैसे मर जाएं, कब मर जाएं। जो नहीं है उसकी तरफ दौड़ बनी रहती है।

तू बच गई! भगवान का हाथ रहा होगा। नहीं तो पति कुछ ऐसे लापता नहीं होते। सदभाग्य है। अब तू कहती है सांत्वना दो। सांत्वना देने का तो अर्थ हुआ कि पहले मैं यह मान लूं कि तेरा जो दुख है वह दुख है। उसे मैं दुख नहीं मान सकता। क्योंकि जिनके विवाह हो गए हैं उनको सुख कहां? जरा चारों तरफ आंख उठा कर देख, विवाहितों को देख।

एक ज्योतिषी ने एक नवयुवक का भविष्य बताते हुए कहाः पच्चीस वर्ष की आयु में तुम्हारा विवाह हो जाएगा।

नवयुवक ने घबड़ा कर कहाः लेकिन आपने अभी-अभी तो बताया था कि मैं कम से कम पचास वर्ष जीऊंगा।

जिस दिन विवाह हुआ उसी दिन आदमी मर जाता है। फिर बचता कहां!

ढब्बू जी चंदूलाल से पूछ रहे थेः चंदूलाल, कोई आदमी गलती कर अपनी गलती का इकरार कर ले, तो उसे तुम क्या कहोगे?

सत्यवादी चंदूलाल ने कहा।

और उसे जिसने गलती न की हो, फिर भी स्वीकार कर ले, उसे तुम क्या कहोगे?

चंदूलाल ने कहाः शादीशुदा।

कमला! तू बची, तू धन्यभागी है।

सुनिए! आपका जिगरी दोस्त शादी करने जा रहा है। और जिस लड़की से उसकी शादी होने वाली है वह बिल्कुल घटिया है।

पति महोदय चुपचाप अखबार पढ़ते रहे।

आप भी अजीब हैं, उसका जीवन बर्बाद हो जाएगा और आप चुपचाप बैठे हैं! पत्नी ने फिर कहा।

फिर भी पति चुप्पी साधे रहे।

पत्नी बौखला उठीः क्या आपका फर्ज नहीं बनता कि उसे समझा कर ऐसा करने से रोकें?

मैं नहीं जाऊंगा, पति ने कहा, मुझे कौन समझाने आया था?

तेरा पति जरूर बड़ा ज्ञानी रहा होगा, जो भाग गया। अब तू क्या पता लगा रही है उसका? कहीं इसी ख्याल से तो यहां नहीं आई कि अक्सर... अनेक भागे हुए लोग यहां हैं... शायद भागा हुआ पति यहां मिल जाए। पहचानना मुश्किल होगा। दाढ़ी-वाढ़ी ली होगी, गैरिक वस्त्र पहन लिए होंगे।

चौबे जी अपनी भारी-भरकम पत्नी के पास बैठे हुए पूछ रहे थेः अच्छा यह बताओ कि आदमी का एकदम मर जाना बेहतर है या घुट-घुट कर?

मैं समझती हूं आज के तनावग्रस्त जीवन से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को एकदम मर जाना चाहिए। श्रीमती चौबे ने अपनी राय व्यक्त की।

ठीक है, तो अपनी दूसरी टांग भी मुझ पर रख लो, कहते हुए चौबे जी सीधे सोफे पर लेट गए।

तू सांत्वना लेने किस आदमी के पास आ गई! किसी पंडित-पुरोहित के पास जाना था, तो तेरी जन्मपत्री, कुंडली इत्यादि देखते, तुझे भरोसा बंधाते कि घबड़ा मत; पति पूरब गए हैं, लौट आएंगे; कि ज्यादा दूर नहीं निकल गए हैं, अभी बंबई ही हैं, थोड़ी देर चेष्टा करेंगे फिल्म अभिनेता होने की, फिर जो पास के पैसे हैं खर्च होते ही घर आ जाएंगे, घबड़ा मत। कुछ विधि-विधान बताते कि यज्ञ-हवन करवा ले, कि सत्यनारायण की कथा करवा ले। तू भी कहां मेरे पास आ गई!

मैं तो इतना ही तुझसे कह सकता हूं कि अब उस जगह मत रहना जहां पति जानते हैं कि तू रहती है, नहीं तो कहीं भूल-चूक से लौट ही न आएं। जगह बदल ले, ताकि लौट भी आएं तो तुझे न पाएं। और अगर कभी मिलना हो भी जाए तो जैसे वे लापता हो गए ऐसे तू भी लापता हो जाना। एक झंझट बची, एक व्यर्थ का उपद्रव बचा। उपद्रवों में से जाकर भी निकलना तो पड़ता ही है। निकलना मुश्किल होता जाता है, क्योंकि जाल उलझता जाता है। पति अकेले तो नहीं आते, मुसीबतें अकेली तो नहीं आतीं। फिर बाल-बच्चे आते हैं। इसलिए तो कहा है ज्ञानियों नेः मुसीबतें अकेली नहीं आतीं। पति आए, फिर बाल-बच्चे आए... ! फिर पति के रिश्तेदार हैं और सास और ससुर और न मालूम क्या-क्या आएगा... ! फिर उस सबमें से, जंगल में से निकलना मुश्किल हो जाएगा। पति तुझे बचा गए। अनुग्रह मान, धन्यवाद दे। जन्म-जन्म का साथ होगा तेरा उनसे! इस बार कृपा कर गए।

सांत्वना किस बात की? कुछ गंवाया थोड़े ही तूने; कुछ पाया! चल इस बहाने यहां आ गई। यह भी कुछ कम है? कौन जाने इसी बहाने जीवन में क्रांति हो जाए!

तू कहती है कि मैं बहुत दुखी हूं।

तू सोचती है, जो विवाहित हैं वे सुखी हैं?

अपने आस-पास जरा आंख खोल कर देखो। धन है तो लोग दुखी हैं, धन नहीं है तो लोग दुखी हैं। पद है तो लोग दुखी हैं, पद नहीं है तो लोग दुखी हैं। विवाहित हैं तो दुखी हैं, अविवाहित हैं तो दुखी हैं। दुख का कोई संबंध बाहर से नहीं है, बाहर की परिस्थिति से नहीं है। दुख का कोई उत्तरदायित्व बाहर मत छोड़ो।

मेरे पास लोग आते हैं। कोई इसलिए दुखी है कि उनके बहुत बच्चे हैं; कोई इसलिए दुखी है कि उनके बच्चे नहीं हैं। मैं कहता हूंः तुम दोनों जरा आपस में बातचीत करो, सत्संग करो। दो-चार दिन के लिए घर बदल लो। जिसके बच्चे हैं, तुम उसके घर जाकर रह जाओ और उसे तुम अपने घर रख दो। तब तुम्हें थोड़ी अकल आ जाएगी कि तुम जिन बच्चों के लिए तड़पे जा रहे हो वे बच्चे कैसा उपद्रव ले आते हैं। और वह जो बच्चों से तड़पा जा रहा है

उसे जरा एकांत में रहने दो दो-चार दिन, वह भी घबड़ा जाएगा। क्योंकि एकांत में रहने की क्षमता भी नहीं है। अकेलापन काटता है।

चारों तरफ नजर फैलाओ। बुद्धिमान आदमी वह है जो दूसरों को देख कर समझ ले। बुद्धिहीन वह है जो खुद भी गुजर-गुजर कर न समझे। जिंदगी बड़ी है। इसमें अगर हर अनुभव करके ही तुम्हें समझना है तो और बहुत-बहुत जन्म लग जाएंगे, फिर भी शायद समझ न हो पाएगी। समझदार तो दूसरे को देख कर समझ लेता है। चारों तरफ नजर खोलता है, देखता है कि जिनके पास है उनको क्या है? तब फिर अगर मेरे पास नहीं है तो इस कारण दुख नहीं हो सकता। कारण दुख का कोई और होगा। न तो पति की मौजूदगी से दुख होता है, न पति के लापता हो जाने से दुख होता है। दुख तो हमारा आत्म-अज्ञान है।

तुम झूठे बहाने मत खोजो। दुख तो सिर्फ इसलिए होता है कि हमारे भीतर अभी दीया नहीं जला--ध्यान का दीया नहीं जला, ज्योति नहीं जली ध्यान की। ध्यान की रोशनी है सुख, आत्म-ज्ञान की अनुभूति है सुख। जिन्होंने अपने को जाना है बस उन्होंने सुख जाना है। शेष सब लोग तो दुख ही जानते हैं, दुख में ही जीते हैं, दुख में ही मरते हैं। फिर दुख के कारण अलग-अलग हो सकते हैं; कोई इस गड्ढे में गिरे, कोई उस गड्ढे में गिरे, इससे क्या फर्क पड़ता है? कोई इस भट्टी में जले, कोई उस भट्टी में जले, इससे क्या फर्क पड़ता है?

एक आदमी मरा। राजनेता था, दिल्ली का बड़ा नेता था! बहुत चकित हुआ जब उसे नरक ले जाया गया। उसने कहा कि नरक! मैं वी वी आई पी हूं! नरक मेरे लिए? कुछ भूल-चूक हो गई होगी। शैतान भी थोड़ा डरा--वी वी आई पी! आदमी ताकतवर था। गांधी टोपी, अचकन, चूड़ीदार पाजामा, बिल्कुल पक्का नेता था, कोई कमी नहीं थी। और नेताओं से नरक में भी शैतान डरता है, क्योंकि हड़ताल करवा दें, घेराबंदी करवा दें। अभी कुछ दिनों से शैतान तक का घेराव होने लगा है। पुराने शास्त्रों में उल्लेख नहीं है क्योंकि पुराने शास्त्रों में... ये नई-नई कलाएं विकसित नहीं हुई थीं। तो अब तो नेताओं को भी सम्हाल कर रखना पड़ता है। उसने कहाः आप घबड़ाएं न, आप विशिष्ट आदमी हैं, आपके विशिष्ट आयोजन करेंगे। आप आएं, आपके लिए विशेष सुविधा दी जाएगी। जाप खुद देख लें, नरक के कई खंड हैं। जो खंड आपको पसंद आ जाए, वही रहें।

नेता प्रसन्न हुए। यह बात कुछ बात हुई! नरक भी है तो कोई बात नहीं लेकिन विशिष्ट चुनाव का मौका है। कोई साधारण आदमी नहीं हैं!

पहले खंड में ले जाया गया। लोग जलाए जा रहे थे, कड़ाहों में चुड़ाए जा रहे थे। नेता ने कहा कि नहीं, यह नहीं जमेगा। यह सब तो हम दिल्ली में बहुत देख चुके। किसी तरह तो दिल्ली से बचे, अब फिर कड़ाहे में जलना! यह नहीं होगा।

दूसरे खंड में ले जाया गया। वहां कीड़े-मकोड़े, एकदम कीड़े-मकोड़े ही कीड़े-मकोड़े! लोगों में घुस रहे, निकल रहे, बाहर आ रहे, भीतर जा रहे; छेद ही छेद! नेता ने कहाः यहां सब दिल्ली की पुनरुक्ति है, कुछ नया दिखलाओ।

ऐसे कई खंड दिखलाए, नेता को कुछ जंचा नहीं। फिर आखिरी खंड--एक तो आखिरी था वह, अब इसके आगे कुछ था भी नहीं, और जंचा भी। थोड़ी अड़चन थी उसमें, मगर जिसने दिल्ली देखी, उसे क्या अड़चन! छोटी अड़चन का क्या रखा है, यह सब तो खेल-खिलवाड़ था। अड़चन इतनी थी कि लोग खड़े थे मल-मूत्र में घुटने-घुटने तक। तो नेता ने कहाः इससे हम डरते नहीं, हम तो स्वमूत्र पहले ही पीते थे। यह कुछ हमारा बिगाड़ नहीं सकता। यह ठीक है। ... तो हम पहले से ही जीवन-जल के परिपोषक रहे हैं। यह जगह जमेगी। यह जैसे

अपने लिए ही बनाई गई है। जरा एक कदम और आगे है। मूत्र तो है ही, मल भी है--एक कदम और आगे। यह जरा आगे की सीढ़ी है। यह जरा और सिद्धों के लिए है। मगर जमेगी!

और लोग प्यालियों में कॉफी पी रहे थे। खड़े थे घुटने-घुटने उसमें। नेता ने कहा कि यह ठीक है, थोड़ी सी तकलीफ है घुटने-घुटने मल-मूत्र में खड़े होना। मगर यहां मजा ही मजा है। लोग... कोई कॉफी पी रहा है, कोई कोकाकोला पी रहा है। नेता ने कहाः यह भी अच्छा है, दिल्ली में कोकाकोला भी मिलना बंद हो गया था। जो जिसका दिल हो, अपनी-अपनी मौज के लोग... कोई फैंटा पी रहा है। तरह-तरह की चीजें पी जा रही हैं। लोग पी रहे हैं... बस एक ही अड़चन है कि घुटने-घुटने तक। नेता ने कहाः यह तो कोई अड़चन ही नहीं। यह तो सुख समझो। यह तो हमारे लिए स्वर्ग है।

लेकिन बस थोड़ी देर में ही पता चल गया। जैसे ही नेता ने कोकाकोला की बोतल हाथ में ली, बस दो-चार घूंट ही मार पाया था कि जोर की घंटी बजी और आज्ञा आई कि अब सब लोग शीर्षासन करें। तब पता चला कि नरक में कहीं भी जाओ, नरक ही है। थोड़ी-बहुत देर को कोकाकोला भी कहीं-कहीं मिलता है, मगर फिर घुटने तक खड़े होना तो ठीक था मगर शीर्षासन करना! ऐसे नेता कोशीर्षासन करना भी आता था। जिंदगी भर और किया ही क्या! सिर के बल खड़े रहे। लेकिन इस मल-मूत्र में... ।

यहां लोगों ने अलग-अलग नरक चुन लिए हैं, बस इतना ही फर्क समझना। उनके नरकों की तस्वीरें अलग हैं। उनकी तस्वीरों के रंग अलग हैं, मगर गहरे में नरक ही नरक है, दुख ही दुख है। अगर सुख चाहिए तो सिर्फ एक उपाय है--सिर्फ एक, एकमात्र--और वह है स्वयं को जानना। जो नहीं स्वयं को जानता वह तो दुख उठाएगा--विवाहित हो तो विवाह से दुख उठाएगा; अविवाहित हो तो अविवाहित होने से दुख उठाएगा। गरीब हो तो गरीबी से दुख उठाएगा, अमीर हो तो अमीरी से दुख उठाएगा। उसके भाग्य में दुख है क्योंकि उसके भीतर सुख की किरण नहीं है। सुख भीतर की घटना है, बाहर से नहीं आता; इसका कोई बहिर्गमन नहीं होता। तुम सुख को अर्जित नहीं कर सकते हो। सुख का कोई भी संबंध तुम्हारे पास क्या है इससे नहीं है; तुम क्या हो इससे है। और तब तुम्हें नरक में भी भेज दिया जाए, तो भी तुम सुखी रहोगे। और ऐसे तुम स्वर्ग में भी जाओ तो भी तुम दुखी रहोगे। तुम जरा सोचो, अगर तुम जैसे हो अभी, ऐसे के ऐसे तुम्हें उठा कर किसी चमत्कार से स्वर्ग में बिठा दिया जाए, तो तुम क्या करोगे? तुम सोचते हो कुछ फर्क पड़ जाएगा? नहीं, जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा।

एक ईसाई पादरी मरा, स्वर्ग पहुंचा। पादरी था तो स्वर्ग पहुंचना ही था। सेंट पीटर ने दरवाजा खोला स्वर्ग का। और पादरी को स्वर्ग के भ्रमण के लिए और उपयोग के लिए एक फटियल सी पुरानी फोर्ड टी मॉडल कार दी, लेकिन फिर भी पादरी प्रसन्न हुआ कि कुछ भेंट तो दी। उसे कुछ पता नहीं था और क्या-क्या चल रहा है यहां। और भी खुश हुआ जब उसने देखा कि उसी के पास से एक अयातुल्ला, एक मुसलमान मौलवी साइकिल पर ही चला जा रहा है। तो उसने कहाः अरे! अब देखो फर्क मुसलमान होने का और ईसाई होने का! हम जा रहे हैं फोर्ड में, माना कि टी माडल है, बाबा आदम के जमाने का--जिसमें ईश्वर ने आदम और हव्वा को बिठाल कर स्वर्ग के बाहर निकाला था--मगर है तो आखिर... कार तो कार ही है! और फिर जो समझदार हैं वे इसको ऐसा नहीं कहते, वे इसको कहते हैंः एंटीक! जो जानकार हैं वे इसकी बड़ी कद्र करते हैं।

तभी उसने देखा एक रबाई फर्र से एक रॉल्स रॉयस में निकला। उसने कहाः ये यहूदी मात यहां भी किए दे रहे हैं। ये जिंदगी में भी मजा करते रहे, वहां भी धन इकट्ठा करते रहे।

रबाई तो पूरे मजे में जीता है, शादी भी करता है, बच्चे भी होते हैं, मकान भी होता है, धन-दौलत भी होती है। रबाई कोई ऐसे कोई त्यागी, भोग को छोड़-छाड़ कर भागा हुआ नहीं होता। यह तो हद हो गई और यह तो बड़ी ज्यादती हो गई। और हम जीसस के मानने वाले... पहुंचा एकदम वह नाराजगी में, ईर्ष्या जन्मी।

तुम देखते हो, तुम जो यहां हो वही वहां हो जाएगा। किसी को साइकिल पर देख कर बड़ा अहंकार जन्मा था--अहा! दिल खुश हुआ था। और रबाई को देखा रॉल्स रॉयस में जाते हुए, और रबाई ने हाथ हिलाया... ! पुरानी पहचान थी, एक ही गांव में दोनों रहे थे। आग लग गई छाती में। अब उसे दिखाई पड़ी यह एंटीक वगैरह कुछ नहीं है, यह फटियल गाड़ी है। पहुंचा वापस, सेंट पीटर से कहा कि यह अन्याय हो रहा है। ये यहूदी दुनिया में भी मजा करते रहे, सारी दुनिया का धन इकट्ठा किए बैठे थे। और यह रबाई मैं इसे भलीभांति जानता हूं; न कभी इसने पूजा की, न कभी प्रार्थना की, इसको फुर्सत ही नहीं थी। होटल, क्लब, गोल्फ, और न मालूम कहां-कहां के उपद्रवों में यह रहा। इसने ऐसा कोई पाप नहीं है जो न किया हो। यह मेरे ही सामने तो रहता था, इसको मैं भलीभांति जानता हूं। हम पूजा कर-कर के मरे और यह फोर्ड टी मॉडल... और इस लफंगे को रॉल्स रॉयस!

सेंट पीटर ने कहाः धीरे, आहिस्ता बोलो! वह परमात्मा का निकट रिश्तेदार है। और तुम्हें याद होना चाहिए कि जीसस भी यहूदी थे, उनका भी वह निकट रिश्तेदार है। हम तो बहुत पीछे आए, बाकी दूसरे लोग तो बहुत पीछे आए।

पादरी ने छाती पीट ली। तो उसने कहाः यहां भी रिश्तेदारी चलती है, भाई-भतीजावाद!

नहीं; तुम अगर एकदम से ऐसे के ऐसे उठा कर स्वर्ग भी पहुंचा दिए जाओ तो तुम यही हो, यही रहोगे। यही ईर्ष्याएं, यही वैमनस्य, यही द्वेष, यही स्पर्धाएं तुम्हें वहां भी घेर लेंगी। तुम सुख न पा सकोगे। और तुम अगर अपने अंतस्तल में विराजमान हो जाओ, ध्यानस्थ हो जाओ, तो स्वर्ग यहीं उतर आएगा। स्वर्ग कहीं और थोड़े ही है, नरक कहीं और थोड़े ही है। ये कोई भौगोलिक स्थितियां थोड़े ही हैं। स्वर्ग और नरक तुम्हारी मनोदशाएं हैं। स्वर्ग है स्व-ज्ञान और नरक है स्व-अज्ञान।

तू कहती हैः "मैं बहुत दुखी हूं!"

कमला, व्यर्थ दुखी है। कीचड़ से बच गई; अब तेरा नाम कमला है, कमल बन। पति भाग गया, धन्यवाद दे, सदा-सदा के लिए अनुग्रह मान। कभी मिल जाए तो चरण छूना। कहनाः गुरुदेव! हे सदगुरु! तुम्हारी अपरंपार कृपा! ठीक समय रहते तुम भाग गए। और जरा देर हो जाती और घोड़े पर चढ़ जाते और बैंडबाजे बज जाते, तो फिर बचना मुश्किल हो जाता।

स्त्रियों का बचना तो और भी मुश्किल हो जाता है, क्योंकि पुरुषों ने उन्हें ऐसा दीन कर दिया है। सदियों-सदियों तक उन्हें शिक्षा नहीं दी, क्योंकि शिक्षित हो जाएं तो स्वतंत्र हो जाएं। सदियों-सदियों तक उन्हें काम नहीं करने दिया दुनिया में, रोटी-रोजी नहीं कमाने दी; क्योंकि वे रोटी-रोजी कमाने लगें तो फिर पति की जो मालकियत है वह कहां टिके? जब पत्नी खुद रोटी-रोजी कमाने लगे तो फिर इतनी निर्भर नहीं रह जाती। फिर वह यह नहीं कहेगी कि मैं तुम्हारे चरणों दासी। किसलिए कहेगी? और अगर तुमसे ज्यादा कमाए तो फिर तुम्हीं को लिखना पड़े--तुम्हारे चरणों का दास!

कोई पति पसंद नहीं करता अपने से ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की से विवाह करना। कोई पुरुष पसंद नहीं करता। क्योंकि उसमें बड़ी हीनता मालूम होती है। कोई पुरुष पसंद नहीं करता कि पत्नी उससे ज्यादा कमाए, क्योंकि तब उसके अहंकार को चोट लगती है।

तुम्हारा होने वाला पति भाग गया, अच्छा हुआ। सांत्वना मत खोजो, सत्य खोजो। इस अवसर का उपयोग कर लो। इस अवसर को अंतर्यात्रा के लिए चुनौती बना लो। पति से तो विवाह चूक गया, क्यों न परमात्मा से विवाह कर लें, क्यों न अब महासगाई हो जाए! तो कमला, तू कमल हो जाए!

कीचड़ में कमल छिपा है। कोई सोच भी नहीं सकता कि कीचड़ में और कमल छिपा होगा! कहां कीचड़, कहां कमल! मगर कीचड़ से कमल पैदा होता है। ऐसे ही हम सबके भीतर कमल छिपे हैं। कीचड़ भी रहें तो कीचड़ ही रह कर मर जाएंगे। कमल भी हो सकते हैं। लेकिन ये कमल चैतन्य के कमल हैं। ये कमल ध्यान की ही ऊर्जा से खिल सकते हैं--ध्यान का सूरज ही निकले तुम्हारे भीतर तो।

और ध्यान का अर्थ क्या है? निर्विचार, मौन, शांत, ऐसी चैतन्य की अवस्था कि जहां कोई हलचल न हो, कोई चहल-पहल न हो, कोई तरंगें न हों। ऐसा ही अगर कर पाओ तो महासगाई हो जाए। अब मौका ही आ गया। अब क्या छोटे-मोटे किसी की दुल्हन बनना--राम की दुल्हनिया बनो! अब राम से ही हो जाए गठबंधन।

सांत्वना नहीं दूंगा। सांत्वना मैं किसी को भी नहीं देता। सांत्वना जो दे वह दुश्मन है, क्योंकि वह मलहम-पट्टी कर देता है। मेरा भरोसा सर्जरी में है, मलहम-पट्टी में नहीं है।

इस जगत का सारा प्यार नश्वर है--दो कौड़ी का है।

तुम प्यार नहीं कर पाओगे।
तुम नश्वर हो तो भावों में अमरत्व कहां से लाओगे?
तुम प्यार नहीं कर पाओगे।
पथरीली है यह प्रेम डगर,
कोमलतम जग के नारी, नर
कुछ पहले ही दम तोड़ गए,
कुछ बैठ गए थोड़ा चल कर,
प्रियतम, इस पथ में पांव न दो, चलते-चलते थक जाओगे।

मैं आज प्रणय-पथ में आई,
मन में सुख के सपने लाई,
पर इसका कुछ भी ठीक नहीं--
कल कौन तुम्हारे मन भाई?
यह ज्ञात नहीं, इस जीवन में तुम किस-किस के कहलाओगे?

मानव का मन ही है चंचल,
अपने से भी करता है छल,
दो छींटों से बुझ जाता है,
विक्षिप्त धधकता विरहानल,
तुम भी तृणवत मन की गति के हलकोरों में बह जाओगे।

मैं तुम से प्रियतम कहती हूं,
तुम ज्यादा हो, कम कहती हूं,
मैं, किंतु प्रणय के बंधन को,
सच पूछो तो भ्रम कहती हूं,
तुम सुख के सुंदर धोखे में उर को कब तक उरझाओगे?

तुम प्यार नहीं कर पाओगे।
तुम नश्वर हो तो भावों में अमरत्व कहां से लाओगे?
तुम प्यार नहीं कर पाओगे।

स्वप्न है प्रेम एक--स्वप्न शाश्वत का! स्वप्न है इस तरह जीने का, जैसे कि ज्ञानी जीए, ध्यानी जीए। स्वप्न है सुंदरतम को पाने का, मगर कहां तुम पानी के बबूलों में सुंदरतम को पाओगे? हां, कभी-कभी सूरज की किसी किरण में पानी का कोई बबूला इंद्रधनुष जैसा चमक जाए क्षण भर को, बात और। मगर अब फूटा तब फूटा। रेत की इस दुनिया में घर कैसे बनाओगे? हां, बनाते हैं घर, बच्चे बनाते हैं घर, मगर उन घरों में कोई रह तो नहीं पाता। और वे घर बन भी नहीं पाते और गिर जाते हैं। कागज की नावों में तैरने चले हो! नावें कागज की बस नावें कहलाती हैं, नावें हैं नहीं। और हो सकता है थोड़े-बहुत तर भी जाओ, मगर कितनी दूर तर पाओगे? इस अथाह सागर में कागज की नावें काम न देंगी।

प्रेम जिसको तुम कहते हो, कागज की नाव है। प्रार्थना की नाव पकड़ो।

लेकिन तुझे चोट लगी है। तेरे अहंकार को पीड़ा हुई है। स्वाभाविक है। मैं समझता हूं। बड़ी प्रतीक्षा तूने की होगी। शहनाई बजती होगी, द्वार पर अतिथि इकट्ठे हुए होंगे। सहेलियों ने तुझे सजाया होगा। और फिर आया नहीं दूल्हा, फिर घोड़े की टापें सुनाई ही न पड़ीं। फिर खबर आई दूल्हे की जगह, कि भाग गया है, लापता हो गया है। तेरे मन पर सांप लोट गए होंगे। तो सारे स्वप्न धूल-धूसरित हो गए होंगे। तुझे पीड़ा हुई है। ... लेकिन पीड़ा से ही तो कोई जागता है। पीड़ा ही तो चुनौती बनती है। इसे चुनौती समझ। इसे एक अवसर समझ--एक नई यात्रा का, एक नये संक्रमण का।

ये बियाबान मेरे वास्ते बने होंगे
इनकी रौनक न बढ़ाऊं तो किधर जाऊंगा,
सर्द रातों में चिलकती हुई धूपों के तले
मैं न गाऊंगा तो मर जाऊंगा।

बारहा मुझको सफर करना है
राह में आग बिछा दो तो भी तर जाऊंगा,
तुमने जिस राह पर अपनी हो बनाई मंजिल
ताउम्र भूल से उस राह नहीं आऊंगा।

चंद सांसों की सलामी में जिंदगी खो दूं
ऐसा सौदा तो मैं सांसों का न कर पाऊंगा,
कोई अपना तो नहीं रात के सायों के सिवा
काले सूरज को उजाले तो न दे पाऊंगा।

तुमने छीनी हैं जो मुझसे वो सुनहरी किरणें
उनकी स्याही में बहुत गहरे उतर जाऊंगा,
फिर न मैं लौट के उस गांव कभी आऊंगा
अब ना मातम तेरे जाने का मैं मनाऊंगा।

कसम लो कि हो गई बात, एक खेल से छुटकारा हुआ। समय रहते छुटकारा हुआ।

चंद सांसों की सलामी में जिंदगी खो दूं
ऐसा सौदा तो मैं सांसों का न कर पाऊंगा।

फायदा भी क्या था? होता भी क्या, हो भी क्या जाता? धोखा खड़ा कर देते हैं हम। लोगों को आशाओं के सहारे पर जिलाए जाते हैं हम। छोटे बच्चों को कहते हैंः बड़े हो जाओगे तब सुख मिलेगा। फिर वे बड़े हो जाते हैं तो कहते हैंः विवाहित हो जाओगे तब सुख मिलेगा। फिर वे विवाहित हो जाते हैं तो कहते हैंः जब तक बच्चे न होंगे तब तक कैसे सुख? फिर बच्चे हो जाते हैं तो कहते हैंः अब बच्चों का विवाह इत्यादि करो तब सुख मिलेगा। और ऐसे-ऐसे मौत आती है, सुख नहीं आता। ऐसे हम टालते हैं। ऐसे हम स्थगित करते हैं। हम कहते हैं कल। और कल के हम बड़े सपने संजोते हैं। और आज? आज नरक में जीते हैं।

मैं तुमसे कहता हूंः आज ही स्वर्ग हैं, अभी स्वर्ग है! कल पर मत टालो। और स्वर्ग में होने के लिए कोई भी बाह्य उपकरण आवश्यक नहीं है। तुम जहां हो जैसे हो, वैसे ही अपने भीतर डुबकी मार लो। और तब फिर रेगिस्तान भी उद्यान हो जाते हैं। और तब अंधेरी रातें सूरज की रोशनी से भर जाती हैं। और तब कांटे फूलों में रूपांतरित हो जाते हैं।

ये बियाबान मेरे वास्ते बने होंगे
इनकी रौनक न बढ़ाऊं तो किधर जाऊंगा,
सर्द रातों में चिलकती हुई धूपों के तले
मैं न गाऊंगा तो मर जाऊंगा।

फिर गीत उठने शुरू होते हैं रेगिस्तानों से भी मरूद्यानों के; कांटों से भी फूलों के; अंधेरी रातों से भी सुनहरी प्रभातों के।

चुनौती स्वीकार करो। सांत्वना मत खोजो। सांत्वना कमजोरों और कायरों के लिए छोड़ो। जिनके पास थोड़ी आत्मा है वे जीवन की प्रत्येक स्थिति को चुनौती बना लेते हैं। हर चुनौती सीढ़ी बन जाती है प्रभु के मंदिर की।

पांचवां प्रश्नः ओशो! राजनीति में सफल होने का नुस्खा क्या है?

महेंद्र! एक ही नुस्खा हैः बुद्धि नहीं होनी चाहिए। या हो तो बिल्कुल न्यूनतम होनी चाहिए। बुद्धि हो तो फिर राजनीति में सफल न हो पाओगे। वहां बुद्धुओं की गति है। क्योंकि राजनीति में बुद्धुओं के अतिरिक्त और कोई उत्सुक ही नहीं होता। सफलता की तो बात दूर; जिनके पास कुछ बुद्धि है, कुछ चैतन्य का निखार है वे गीत रचेंगे, वीणा बजाएंगे, नृत्य में उतरेंगे, ध्यान में डूबेंगे, प्रार्थना करेंगे। बहुत कुछ है करने को उनके पास। जिंदगी बहुत बड़ी है और जिंदगी में बड़े अनूठे-अनूठे अमृत के आयाम हैं। वे राजनीति की कीचड़ में पड़ेंगे! किसलिए? राजनीति तो उनके लिए है जिनके लिए कुछ और नहीं।

जो मूर्ति नहीं बना सकते, जो चित्र नहीं रंग सकते, जो गीत नहीं गा सकते, जो कुछ भी नहीं कर सकते--उन सब अयोग्यों के लिए राजनीति है। आखिर अयोग्यों के लिए भी तो कुछ होना चाहिए। जिनमें और कोई योग्यता नहीं है उनमें राजनीति की योग्यता होती है।

राजनीति के लिए बुद्धि नहीं चाहिए। क्योंकि बुद्धिमान आदमी इतनी बेईमानी नहीं कर सकता; कुछ तो सोचेगा! बुद्धिमान आदमी इतने धोखे नहीं दे सकता; कुछ तो विचारेगा! बुद्धिमान आदमी इतने झूठ नहीं बोल सकता, आखिर खुद की आत्मा कचोटेगी। और राजनीति तो सिर्फ झूठे आश्वासन हैं। सिर्फ झूठ पर झूठ। अत्यंत सोई हुई चेतना चाहिए राजनीति में सफल होने के लिए।

शहर में एनसेफेलाइटिस, मस्तिष्क-ज्वर से अनेक मौतों की खबर पढ़ कर चिंतित हुई पत्नी ने अपने राजनेता पति से कहाः क्यों, पढ़ा आपने, यह रोग यहां भी फैल गया!

राजनेता ने कहाः तो क्या?

तो क्या, पत्नी बोलीः मुझे बड़ा डर लग रहा है कि कहीं तुम्हें... ?

घबड़ाओ मत! राजनेता ने कहाः इस रोग का संक्रमण केवल मस्तिष्क हो तभी होता है।

आखिर मस्तिष्क हो तो ही मस्तिष्क का ज्वर हो सकता है।

मैंने सुना है कि एक आदमी के मस्तिष्क का आपरेशन किया जा रहा था। बड़ा आपरेशन था, पूरा मस्तिष्क खोपड़ी से बाहर निकाल लिया गया था। और डाक्टर मस्तिष्क को साफ-सुथरा करने में लगे थे। मरीज बिस्तर पर लेटा था। तभी एक आदमी भीतर भागा हुआ आया, उसने कहा कि नेताजी, आप यहां क्या कर रहे हैं? आप तो देश के प्रधानमंत्री चुन लिए गए।

वह आदमी एकदम उठ कर खड़ा हो गया। डाक्टर तो बड़े हैरान हुए! वह तो चलने ही लगा। डाक्टरों ने कहाः अरे भाई, आपका मस्तिष्क तो यहीं है। उसने कहाः अब मस्तिष्क की क्या जरूरत? अब रखो यहीं। अब करते रहो साफ-सुथरा। अब मुझे मस्तिष्क की क्या जरूरत? मैं मुल्क का प्रधानमंत्री हो गया हूं। अब तो मस्तिष्क हो तो अड़चन होगी।

तुम पूछते होः "राजनीति में सफल होने का नुस्खा क्या है?"

बुद्धि का अभाव चाहिए, बेईमानी चाहिए, झूठ चाहिए। हर तरह से एक ही दृष्टि चाहिए बस, कि किसी तरह पद पर पहुंच जाएं; मार्ग ठीक हो कि गलत, साधन ठीक हो कि गलत, कोई चिंता नहीं--न शुभ की, न अशुभ की; न नीति की, न अनीति की। इतना कठोर हृदय चाहिए कि लोगों के सिर की सीढ़ियां बना सको। और इतनी कुशलता चाहिए के चेहरे बदल सको। इतने मुखौटे चाहिए कि जब जैसी जरूरत पड़ जाए वैसा मुखौटा लगा लिया।

होटल में एक पहलवान शराब पीकर अपने दाएं तथा बाएं बैठे लोगों को चैलेंज कर रहा था। दाहिनी ओर अंगुली उठा कर बोलाः गधो... । बाईं ओर अंगुली उठा कर बोलाः घोड़ो... । है तुम लोगों में से किसी की हिम्मत जो मुझसे आकर कुश्ती लड़े?

तुरंत एक प्रसिद्ध राजनेता, जो दाहिनी ओर बैठा था, उठा और बाईं ओर जाने लगा। पहलवान ने सीना फुलाते हुए उसे घूरा, और कहाः क्यों बे नेताजी के बच्चे, तू लड़ेगा मुझसे?

नेताजी ने कहाः अरे पहलवान साहब! मेरी क्या मजाल आपसे लड़ने की! मैं तो गलत साइड पर गधों की तरफ बैठ गया था, सो घोड़ों की तरफ जा रहा हूं।

मुखौटे बदलने की हिम्मत चाहिए। लोगों के जूते चाटने की हिम्मत चाहिए। झूठ की कुशलता चाहिए। मूढ़ सपने देखने की कुशलता चाहिए।

ढब्बू जी चंदूलाल से कह रहे थेः जानते हो चंदुलाल, मैं रोजाना दो सौ पचास रुपये बचाता हूं! ऐसे करते-करते आज नहीं कल करोड़पति हो जाऊंगा।

चंदूलाल ने कहाः वह कैसे?

ढब्बूजी ने कहाः आजकल मैं रोजाना रेल में सफर करता हूं। और रेल में एक जंजीर होती है, उस जंजीर का गलत इस्तेमाल करने वाले को दो सौ पचास रुपये जुर्माना भरना पड़ता है।

चंदूलाल ने कहाः पर उससे क्या?

अरेढब्बू ने कहाः तुम कुछ समझे नहीं, आज तक मैंने वह जंजीर नहीं खींची। दो सौ पचास रुपये रोज बचते हैं। करोड़पति हो जाने वाला हूं। तुम देखना, तुम जरा देखते रहो।

इस तरह के मूढ़तापूर्ण गणित बिठाने की क्षमता चाहिए। राजनीति जड़ों का, जड़ताओं का अड्डा है। वहां जो जितना ज्यादा जड़ हो उतने सफल होने की संभावना है। बुद्धिमान तो बहुत पहले हट जाएंगे दौड़ से क्योंकि दौड़ इतनी गंदी है।

महेंद्र! तुमने ये प्रश्न पूछा ही क्यों? क्या राजनीति में उतरने में इरादे हैं! क्या जीवन में कुछ और करने को नहीं बचा? क्या जीवन में और कुछ करने योग्य नहीं मालूम होता? लेकिन राजनीति में उतरने की आकांक्षाएं पैदा होती हैं। क्योंकि राजनेताओं को इतनी प्रतिष्ठा मिलती है। यह दुर्भाग्य है कि राजनेताओं को इतनी प्रतिष्ठा मिलती है। यह ज्यादा दिन चलेगा नहीं। भविष्य राजनीति का नहीं है। राजनेताओं की प्रतिष्ठा धीरे-धीरे डूबती ही जाने वाली है।

जैसे राजा चले गए ऐसे ही राजनेता भी चले जाएंगे, मैं तुमसे यह कहता हूं। आज नहीं कल तुम देखोगे, कुछ नये लोगों की ही प्रतिष्ठा और पूजा होगी। सृजनात्मक लोगों की प्रतिष्ठा और पूजा होगी। मगर अभी थोथे लोग पूजे जाते हैं। तुम्हारे मन में भी आकांक्षा उठती है। मगर जरा गौर तो करो, इन थोथे लोगों की तरफ जरा देखो तो! इनकी आत्माएं इन्हें कभी का छोड़ चुकी हैं। इन्होंने अपनी आत्माएं बेच दी हैं और पद खरीद लिए हैं।

इनसे ज्यादा गरीब आदमी, इनसे ज्यादा भिखमंगे आदमी खोजना कठिन है। मगर अखबारों में इनका नाम देख कर, रोज इनकी तस्वीरें देख कर तुम्हारे मन में भाव उठता हैः कभी हम भी कुछ हो जाएं!

एक अदालत में मुकदमा चल रहा था। एक राजनेता को किसी होटल में किसी आदमी ने उल्लू का पट्ठा कह दिया था। स्वभावतः राजनेता नाराज हो गया। उसने अदालत में मानहानि का मुकदमा चलाया। मुल्ला नसरुद्दीन उसका गवाह था।

मजिस्ट्रेट ने कहा कि जिस आदमी ने उल्लू का पट्ठा कहा है उसका कहना है कि होटल में कम से कम दो सौ पचास आदमी मौजूद थे। मैंने किसी का नाम नहीं लिया। हां, मैंने उल्लू का पट्ठा शब्द का उपयोग किया है। लेकिन मैंने राजनेता को उल्लू का पट्ठा नहीं कहा। वहां दो सौ पचास लोग मौजूद थे, मैं किसी को भी कह सकता हूं। मैं खुद को भी कह सकता हूं। नाम मैंने किसी का लिया नहीं। इसलिए राजनेता नाहक ही भड़क गए हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा मजिस्ट्रेट ने कि तुम गवाह हो राजनेता के, क्या सबूत है तुम्हारे पास कि इस आदमी ने राजनेता को ही उल्लू का पट्ठा कहा था?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि छाती पर हाथ रख कर, खुदा की कसम खाकर कहता हूं कि इसने राजनेता को ही उल्लू का पट्ठा कहा था।

लेकिन मजिस्ट्रेट ने पूछाः दो सौ पचास लोग वहां थे, नाम इसने किसी का लिया नहीं। तुम इतना बलपूर्वक कैसे कहते हो?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अब आप मानते नहीं तो फिर सच्ची बात कह दूं। दो सौ पचास लोग थे मगर उल्लू का पट्ठा वहां एक ही था। इसने राजनेता को ही उल्लू का पट्ठा कहा है।

महेंद्र, तुम्हें उल्लू का पट्ठा होना है? जिंदगी में कुछ और करने को है। जिंदगी में कुछ और करो। यह तो छोड़ दो जो कूड़ा-करकट है। यह तो छोड़ दो तुम समाज के चौथे वर्ग को--शूद्रों को। मैं राजनीति कोशूद्रों का धंधा कहता हूं। राजनीति यानी शूद्रता। अब हमें बदल देनी चाहिए परिभाषाएं, जमाना बदल गया। अब हम शूद्र कहते हैं, बुहारी लगा रहा है कोई आदमी सड़क पर उसको। काहे के लिए? स्वच्छता कर रहा है, उसकोशूद्र कह रहे हो? ब्राह्मण कहना चाहिए। स्वच्छता कर रहा है। और राजनेता सब तरह की गंदगी फैला रहा, उसको तुम नेता समझ रहे हो। शूद्र!

शूद्र होने की कोई जरूरत नहीं है। ब्राह्मण बनो! ब्रह्म को जानो। और जानो नहीं केवल, प्रकट भी करो, अभिव्यक्त भी करो। तुम्हारे गीतों में झलके, तुम्हारे नृत्यों में उतरे। सृजनात्मक कोई आयाम पकड़ो। राजनीति तो विध्वंस है।

छठवां प्रश्नः ओशो!

आपने अपना बनाया, मेहरबानी आपकी
हम तो इस काबिल न थे, है कद्रदानी आपकी
आपने अपना बनाया...

कृष्णतीर्थ! तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे भीतर कितने हीरे पड़े हैं! तुम्हें पता नहीं कि कितना बड़ा साम्राज्य तुम्हारे भीतर है, कि तुम सम्राट हो! तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता तुम्हारा राज्य, मुझे तो दिखाई पड़ता है। तुम्हें नहीं दिखाई पड़ती अपनी सोने की खदान, मुझे तो दिखाई पड़ती है। तुम्हारी आंखों में तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है

क्योंकि तुमने कभी अपने को देखा नहीं, पहचाना नहीं। पहचानते, जानते, थोड़ा परिचित होते, तो पाते कि तुम सम्राट हो, सम्राट की तरह पैदा हुए हो!

इस अस्तित्व में जहां परमात्मा के स्रोत से सबका आगमन होता है, कोई सम्राट से कम हो भी कैसे सकता है!

मेरे ये चरण जो कि पग-पग पर कम्पमान,
मेरा यह मस्तक है जिसका अभिशाप ज्ञान,
मेरे ये हाथ जो कि फैले हैं अंजलि बन,
मेरा ये उर "उठना-गिरना" जिसका विधान!
इनमें ही मेरे अस्तित्व का पराभव है,
अपनी सीमा से उठ सकना कब संभव है?

मेरे आगे जो अनजाना-सा है प्रसार--
इसमें किसकी सत्ता, है किसका अहंकार?
टेढ़े-मेढ़े अगणित पथ अगणित लोगों के,
किंतु निगल लेता है प्रति पथ को अंधकार!

ज्ञात है मुझे--तुम कह दोगे, "यह सपना है!"

पर मैं पंथी हूं, पथ मेरा भी अपना है!
खिलना--कलियों का गुण, मुरझाना--फूलों का,
टूट-टूट कर फिर-फिर चुभ-चुभ जाना शूलों का,
गुण उसका "जो कुछ" है, निर्गुण अस्तित्वहीन,
मेरे जीवन का गुण-संचय है भूलों का!

मेरा विश्वास शिथिल, मेरा स्वर धीमा है,
अपराजित अंधकार, ज्ञान एक सीमा है!

मेरे सपनों में हंस-हंस पड़ते नव-प्रभात,
मेरे संघर्षों में धुंधली-सी निहित रात,
तेरे चरणों पर लहराते हैं सप्त सिंधु,
मेरे मस्तक पर मंडराते आकाश सात!

क्षिति की प्राचीरों से मुझको टकराना है,
मेरे आगे सुख-दुख का ताना-बाना है?

शशि में शीतलता है, रवि में है असह ताप,
अलि में गुन-गुन गुंजन, कोयल में है प्रलाप!
मेरे होंठों पर हिम, उर में अंगारे हैं,
अपनी सांसों में मैं युग-युग की लिए माप!

सांसों का स्रोत कहां? युग भी अनजाना है,
मैं कहता--"कब मैंने निज को पहचाना है?"

बस उतनी ही भूल है--निज को पहचाना नहीं। नहीं तो सारा आकाश तुम्हारा है, और सारे चांद-तारे तुम्हारे भीतर हैं। निज को पहचाना नहीं, अन्यथा तुम शाश्वत हो, न तुम्हारा कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। देह नहीं हो तुम, मन भी नहीं हो तुम। तुम स्वयं परमात्मा हो। जानोगे, जागोगे तो चकित हो जाओगे--विस्मय-विमुग्ध! नाच उठोगे--अनुग्रह से, आंनद से, उत्सव से!

कृष्णतीर्थ, तुम्हें पता नहीं तुम कौन हो। मिट्टी नहीं हो, मिट्टी में दबे हीरे हो! मिट्टी नहीं हो, मिट्टी में छिपे अमृत हो! मृण्मय होगा दीया, लेकिन ज्योति चिन्मय है--और वही ज्योति तुम हो।

इसलिए मेरे पास जो भी आए, स्वीकार है। मैं पूछता नहीं पाप-पुण्य, मैं पूछता नहीं योग्यता-अयोग्यता, मैं पूछता नहीं जाति-धर्म, मैं पूछता नहीं कुछ भी। जो भी मेरे पास आए स्वीकार है, क्योंकि प्रत्येक के भीतर परमात्मा विराजमान है, किसको अस्वीकार करो!

मुझसे लोग पूछते हैं कि आप सभी को संन्यास दे देते हैं? सभी को! मैं भी क्या करूं? परमात्मा सभी को जीवन दे दिया है। और जब उसने नहीं पूछा तो मैं पूछने वाला कौन हूं? और अगर उसने भरोसा किया है तो मैं संदेह करने वाला कौन हूं? जो भी आए, स्वीकार है, अंगीकार है। क्योंकि मैं तो देखता हूं तुम्हारी संभावना।

गुरजिएफ कहा करता था अपने शिष्यों से कि तुम जो हो सकते हो उससे मुझे प्रेम है लेकिन तुम जो हो उससे मुझे घृणा है और तुम्हारी सात पीढ़ियों तक घृणा है।

मैं तुमसे कहता हूंः तुम जो हो सकते हो उससे मुझे प्रेम है और तुम जो हो उससे भी मुझे प्रेम है और तुम्हारी सात पीढ़ियों तक प्रेम है! क्योंकि तुम जो हो सकते हो वह उसमें ही छिपा है जो तुम हो। तुम्हारे होने में ही तुम्हारा भविष्य है। तुम अगर बीज हो तो आज फूल दिखाई नहीं पड़ते, क्या इस कारण तुम्हारे बीज को इनकार कर दूं? और बीज को इनकार कर दूंगा तो फूल कैसे पैदा होंगे? बीज को अंगीकार करना है, स्वीकार करना है। प्रेम से बीज को सहलाना है, सम्हालना है, भूमि देनी है, खाद देना, सूरज देना, पानी देना--तो एक दिन वसंत आएगा और बीज में फूल खिलेंगे।

मैं एक बगिया बना रहा हूं। इस बगिया में सब अंगीकार है, क्योंकि मैं चाहूंगा इस बगिया में सब तरह के फूल हों। वैविध्य हो! जितनी विविधता होती है उतनी ही गहनता होती है। जितनी विविधता होती है उतनी ही संपदा होती है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं आपका संदेश घर-घर, हृदय-हृदय में पहुंचाना चाहता हूं, पर लोक बिल्कुल बहरे हैं, अंधे हैं। मैं क्या करूं? जो पाया है उसे पाकर न बांटूं, यह भी संभव नहीं है। उसे बांटने की भी तो एक अपरिहार्यता है।

कृष्ण देव! निश्चय ही उसे बांटने की एक अपरिहार्यता है, उससे बचा नहीं जा सकता। उसे बांटना ही होगा। उसे रोकने का कोई उपाय ही नहीं है। बादल जब भर जाएंगे जल से तो बरसेंगे ही और फूल जब खिलेगा तो सुगंध उड़ेगी ही और दीया जब जलेगा तो प्रकाश विकीर्ण होगा ही।

बांटना तो पड़ेगा, लेकिन बांटने में शर्तबंदी न करो। क्या फिकर करना कि कौन बहरा है, कौन अंधा है? आखिर अंधे को भी तो आंख देनी है न और बहरे को भी कान देने हैं न! ऐसे देख-देख कर चलोगे कि आंख वाले को देंगे तो आंख वाले कोतो जरूरत ही नहीं है; वह तो खुद ही देख ले रहा है। और उसको ही देंगे जो सुन सकता है... जो सुन सकता है उसने तो सुन ही लिया होगा, वह तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठेगा? आंख है जिसकी खुली हुई उसने देख लिया। कान हैं जिसके पास सुनने के, उसने सुन लिया नाद। वह तुम्हारी राह थोड़े ही देखेगा कि तुम जब आओगे तब सुनेगा। उसकी बांसुरी तो बज गई, उसकी रोशनी तो जल गई।

अंधे और बहरों को ही जरूरत है। इसलिए यह मत सोचो कि अंधे-बहरे लोग हैं, इनको कैसे दें? इनको ही देने में मजा है। इन्हीं को देने में कला है। इन्हीं को देने की चेष्टा में तुम्हें नये-नये उपाय खोजने पडेंगे, नई भाषा, नई भाव-भंगिमाएं खोजनी पड़ेंगी। और इन्हीं को देने में तुम विकसित भी होओगे; क्योंकि जो मिला है इसका कोई अंत थोड़े ही है। जितना बांटोगे उतना और मिलेगा। जितना लुटाओगे उतना और पाओगे।

फिकर छोड़ो, शर्तबंदी छोड़ो। जीसस ने कहा है अपने शिष्यों सेः चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर और चिल्लाओ। लोग बहरे हैं, चिल्लाना पड़ेगा। झकझोरो, लोगों को जगाओ। लोग सोए हैं।

और जब तुम झकझोरोगे सोए हुए लोगों को, तो वे नाराज भी होंगे, गालियां भी देंगे। कौन जागना चाहता है सुखद नींद से! और नींद वाले को पता भी क्या कि जागने का मजा क्या है! पता हो भी कैसे सकता है? वह क्षम्य है अगर नाराज हो। और बहरा अगर न माने नाद के अस्तित्व को, तो तुम क्रुद्ध मत हो जाना। वह मानेगा तो उसका मानना झूठ होगा। और झूठे मानने से कोई क्रांति नहीं होती। उसके न मानने से टकराना। उसके न मानने को काटना, इंच-इंच तोड़ना। उठाना छैनी और उसके पत्थर को काटना। जन्म से कोई भी बहरा नहीं है और जन्म से कोई भी अंधा नहीं है।

मैं आध्यात्मिक अंधेपन और बहरेपन की बात कर रहा हूं। जन्म से सभी लोग आध्यात्मिक आंखें और आध्यात्मिक कान लेकर पैदा हुए हैं, क्योंकि आत्मा लेकर पैदा हुए हैं। समाज ने कानों को बंद कर दिया है, रुंध कर दिया है। कानों में रुई भर दी है--शास्त्रों की, शब्दों की, सिद्धांतों की। आंखों पर पट्टियां बांध दी हैं, जैसे कोल्हू के बैल या तांगे में जुते घोड़े की आंख पर पट्टी बांध देते हैं। ऐसी पट्टियां बांध दी हैं। कोई अंधा नहीं है, कोई बहरा नहीं है। जरा तुमने अगर प्रेमपूर्ण मेहनत की तो पट्टियां उतारी जा सकती हैं। फुसलाना होगा। जरा तुमने अगर मेहनत की तो उनके कानों से रुई निकाली जा सकती है। मगर एकदम से वे तुम्हारी बात मानने को राजी नहीं होंगे।

जल्दी भी क्या है? परमात्मा के काम में जल्दी की जरूरत भी नहीं है। उसकी मर्जी होगी तो तुमसे काम ले लेगा। उसकी मर्जी होगी तो तुमसे किन्हीं को जगवा लेगा, किन्हीं की आंखें खुलवा लेगा। और उसकी मर्जी नहीं होगी तो तुम्हारी चिंता क्या है? तुम्हारी खुल गईं, यही क्या कम है!

तुम बहते जाना, बहते जाना, बहते जाना भाई!
तुमशीश उठा कर सरदी-गरमी सहते जाना भाई!
सब यहां कह रहे हैं रो-रो कर अपने दुख की बातें!
तुम हंस कर सबके सुख की बातें कहते जाना भाई!

भ्रम रहे यहां पर हैं बेसुध-से सूरज, चांद, सितारे,
गल रही बरफ, चल रही हवा, जल रहे यहां अंगारे,
है आना-जाना सत्य, और सब झूठ यहां पर भाई,
कब रुकने पाए झुकने वाले जीवन पर बेचारे?

तुम किस पर खुश हो गए और तुम बोलो किस पर रूठे?
जो कल वाले थे स्वप्न सुनहले आज पड़ गए झूठे!
है यह कांटों की राह विवश-सा सबको चलते रहना,
जो स्वयं प्रगति बन जाए उसी के स्वप्न अपूर्व अनूठे!

तुम जो देते हो मानवता को आठों याम चुनौती,
तुम महल खजानों को जो अपनी समझे हुए बपौती!
तुम कल बन कर रजकण पैरों से ठुकराए जाओगे।
है कौन यहां पर ऐसा जो खा आया हो अमरौती?

यह रंग-बिरंगी उषा लिए है दुख की काली रातें,
हैं ग्रीष्म-काल की दाहक लपटों में रस की बरसातें!
यह बनना-मिटना अमिट काल के चल-चरणों का क्रम है,
छाया के चित्रों सदृश यहां हैं ये सुख-दुख की बातें।

रुकना है गति का नियम नहीं, तुम चलते जाना भाई;
बुझना प्राणों का नियम नहीं, तुम जलते जाना भाई!
हिम-खंड सदृश तुम निर्मल, शीतल, उज्ज्वल यश के भागी,
जमना आंसू का नियम नहीं, तुम गलते जाना भाई!

तुम बहते जाना, बहते जाना बहते जाना भाई!

तुमशीश उठा कर सरदी-गरमी सहते जाना भाई!
सब यहां कह रहे हैं रो-रो कर अपने दुख की बातें!
तुम हंस कर सबके सुख की बातें कहते जाना भाई!

फिकर न करना। तुम्हारे भीतर जो हुआ है उसे कहे जाओ, कहे जाओ--कोई सुने तो, कोई सुने न तो, कोई चिंता नहीं; कोई देखे तो, कोई न देखे तो। तुम बांटते रहो। सौ में से अगर एक ने भी देख लिया और सौ में से अगर एक ने भी सुन लिया तो तुम धन्यभागी हो। उतना ही बहुत है। तुम्हारा श्रम सार्थक हुआ।

कृष्णदेव, बांटना अपरिहार्य है। शर्तबंदी छोड़ दो। पात्र-अपात्र का विचार न करो। यह पात्र-अपात्र का विचार ही बाधा बन जाता है। लोग सोचते हैं, पात्र को देंगे। फिर पात्र मिलता नहीं। क्या पात्र, क्या अपात्र? तुम जिसको दोगे वही पात्र बन जाएगा। तुम देते ही जाना भाई!

तुम बहते जाना, बहते जाना, बहते जाना भाई!
तुमशीश उठा कर सरदी-गरमी सहते जाना भाई!
सब यहां कह रहे हैं रो-रो कर अपने दुख की बातें!
तुम हंस कर सबके सुख की बातें कहते जाना भाई!

रोने दो लोगों को, तुम गीत गाओ। लोगों को आंख बंद किए बैठे रहने दो, तुम रोशनी जलाओ। लोगों को कान बंद किए पड़े रहने दो, तुम वीणा के तार छेड़ो। आज नहीं कल, कल नहीं परसों--कोई सुनेगा, कोई जगेगा, कोई देखेगा। और एक भी देख ले, तुम्हारे जले दीये से एक दीया भी जल जाए, तो बहुत कृत-कृत्य हुए तुम। ... और जलेंगे दीये, जरूर जलेंगे। जलते रहे हैं! यही क्रम है सदा से। सौ को बुलाओ, दस आते हैं। जो दस आते हैं, उनमें से एक पग पाता है। यही अनुपात है।

आज इतना ही!

चौथा प्रवचन

साक्षी हरिद्वार है

करसूं तो बांटे नहीं, बीजां सेती आड।
वै नर जासीं नारगी, चौरासी की खाड।।

काया में कवलास, न्हाय नर हर की पैड़ी।
वह जमना भरपूर, नितोपती गंगा नैड़ी।।

हरख जपो हरदुवार, सुरत की सैंसरधारा।
माहे मन्न महेश, अलिल का अंत फुंवारा।।

टोपी धर्म दया, शील का सुरंगा चोला।
जत का जोग लंगोट, भजन का भसमी गोला।।

खंमा खड़ाऊ राख, रहत का डंड कमंडल।
रैणी रह सतबोल, लोपज्या ओखा मंडल।।

खेलौ नौखंड मांय, ध्यान की तापो धूणी।
सोखौ सरब सुवाद, जोग की सिला अलूणी।।

बांटो बिसवंत भाग, देव थानै दसवंत छोड़ी।
अवस जीव जा हार, टेकसी नहचै गोड़ी।।

पीछे सूं जम घेरसी, टेकरै काल किरोई।
कुण ओरोगै घीव, जीमसी कूण रसोई।।

नहीं कहीं मिलती है छांव!
नहीं कहीं रुकते हैं पांव!
राह अजानी, लोग अजाने,
जितने भी संयोग अजाने,
अनजाने से मिली मुझे जो
भूख अजानी, भोग अजाने!
एक भुलावा कड़वा-मीठा,

एक छलावा ठांव-कुठांव,
जिसको समझूं अपनी मंजिल
नहीं कहीं दिखता वह गांव,
नहीं कहीं मिलती है छांव,
नहीं कहीं रुकते है पांव!
किसे कहूं मैं अपना मीत?
किसे कहूं मैं अपनी जीत?
नित्य टूटते रहते सपने,
नित्य बिछुड़ते रहते अपने,
एक जलन लेकर प्राणों में
मैं आया हूं केवल तपने!
वर्तमान हो या भविष्य हो
बन जाता है विवश अतीत।
और शून्य में लय हो जाते
सुख-दुख के ये जितने गीत!

किसे कहूं मैं अपना मीत?
किसे कहूं मैं अपनी जीत!
एक सांस है सस्मित चाह।
एक सांस है आह-कराह!

बड़ी प्रबल है गति की धारा।
मैं पथभूला, मैं पथहारा।
जिसको देखा वही विवश है--
किसको किसका कौन सहारा?

रंग-बिरंगे स्वप्न संजोए
मेरे उर का तमस अथाह--
ज्यों-ज्यों घटती जाती दूरी
त्यों-त्यों बढ़ती जाती राह!

एक सांस है सस्मित चाह,
एक सांस है आह-कराह!

कब बुझ पाई किसकी प्यास?

और सत्य कब हास-विलास?

नहीं यहां पर ठौर-ठिकाना।
सुख अनजाना, दुख अनजाना
पग-पग पर बुनता जाता है
काल-नियति का ताना-बाना!

मेरे आगे है मरीचिका।
मेरे अंदर है विश्वास,
जो कि मृत्यु पर चिरविजयी है,
वह जीवन है मेरे पास!

मेरा जीवन केवल प्यास।
यही प्यास है हास-विलास!

नहीं कहीं मिलती है छांव!
नहीं कहीं रुकते हैं पांव!

राह अजानी, लोग अजाने,
जितने भी संयोग अजाने,
अनजाने से ही मिली मुझे जो
भूख अजानी, भोग अजाने!

एक भुलावा कड़वा-मीठा,
एक छलावा ठांव-कुठांव,
किसको समझूं अपनी मंजिल
नहीं कहीं दिखता वह गांव,

नहीं कहीं मिलती है छांव!
नहीं कहीं रुकते हैं पांव!

प्रत्येक मनुष्य का यही अनुभव है--सदियों-सदियों से, सदा से। पहले भी यही अनुभव था, आज भी यही अनुभव है, कल भी यही अनुभव होगा। क्योंकि जहां हम खोज रहे हैं मंजिल, वहां मंजिल नहीं है। मंजिल तो जरूर है, हमारी खोज की दिशा भ्रांत है। मंजिल नहीं है ऐसा नहीं; छांव नहीं है ऐसा नहीं; गांव नहीं है ऐसा नहीं--गांव भी है, छांव भी है, और हमारे पास पहुंचाने वाले पांव भी हैं। पर अगर तुम गांव की तरफ पीठ करके

चलो, तो चलोगे तो बहुत, पहुंचोगे नहीं। और अगर छांह से उलटी ही तुम्हारी जीवनधारा हो, तो तपोगे, जलोगे, मगर विश्राम न पा सकोगे।

मंजिल है भीतर और मार्ग हम खोजते हैं बाहर। खोया है जिसे, वह है भीतर; खोजते हैं बाहर।

राबिया, सूफी फकीर, अदभुत सूफी फकीर स्त्री हुई। एक सांझ खोजती है अपने द्वार पर कुछ। पास-पड़ोस के लोगों ने पूछाः क्या खोजती है? उसने कहाः मेरी सुई खो गई। वे भी खोजने लगे। बूढ़ी स्त्री है, भली स्त्री है; सांझ भी होने लगी, सूरज ढलने को है। और तभी किसी खोजने वाले ने पूछा कि ठीक-ठीक बता, किस जगह तेरी सुई गिरी है? रास्ता बड़ा है, सांझ होने लगी है, सूरज अब ढला तब ढला। अगर ठीक जगह का पता हो कि सुई कहां गिरी है तो शायद मिल भी जाए। इतनी छोटी चीज, इतना बड़ा रास्ता!

राबिया हंसने लगी, खिलखिला कर हंसने लगी, पागल की तरह हंसने लगी। उसने कहाः यह न पूछो तो अच्छा, सुई तो घर के भीतर गिरी है। तब उन लोगों ने कहाः पागल, तो फिर बाहर क्यों खोज रही है? हमें शक तो सदा से था कि तू पागल है। तेरी यह मस्ती बस पागलों की हो सकती है। इस दुनिया में समझदार तो दुखी दिखाई पड़ते हैं। बुद्धिमान तो रो रहे हैं। और तू सदा मस्त! हमें शक तो पहले ही था कि तू पागल है, आज पक्का हो गया। सुई भीतर गिरी है, बाहर क्यों खोजती है?

राबिया कहने लगीः संसार के नियम का पालन कर रही हूं। सुई तो भीतर गिरी है लेकिन भीतर अंधेरा है। और मैं गरीब, एक दीया भी जलाने की मेरे पास सुविधा नहीं। सो मैंने सोचा, जहां रोशनी हो वहां खोजनी चाहिए, अंधेरे में कैसे मिलेगी! इसलिए बाहर खोजती हूं, बाहर अभी थोड़ी रोशनी है। और मेरे गांव के लोगों, तुम मुझे पागल कहते हो! तो एक बार अपने पर विचार करना, तुम जिसे खोज रहे हो उसे कहां खोया है? आनंद को खोज रहे हो; खोया कहां, पहले यह पूछ लेना! आत्मा को खोज रहे, परमात्मा का खोज रहे, अमरत्व खोज रहे, शाश्वतता खोज रहे, स्वर्ग खोज रहे, मोक्ष खोज रहे; पहले पूछ लेना, मौलिक प्रश्न पहले उठा लेना कि जो खोज रहे हो उसे खोया कहां है? और मैं तुमसे कहती हूं कि भीतर खोया है और बाहर खोज रहे हो। लाख करो उपाय, मिलन होगा नहीं।

नहीं कहीं मिलती है छांव।

नहीं कहीं रुकते हैं पांव!

कैसे रुकें! छांव ही नहीं मिलती, गांव ही नहीं मिलता, तो पांव रुकें तो कैसे रुकें! और मिलेगा भी नहीं। तुम सारी पृथ्वी खोजो, चांद-तारे खोजो, खोजते ही रहो। जिसे तुम खोज रहे हो वह खोजने वाले में छिपा बैठा है। जो खोज रहा है वही है वह, जिसे तुम खोजने निकल पड़े हो। तुम्हारा अंतस चैतन्य ही तुम्हारे जीवन का अंतिम गंतव्य है। तुम्हीं हो अपनी मंजिल। तुम्हीं हो वह गांव जहां तुम्हारे पांवों को पहुंचना है।

और एक बार यह बात समझ में आ जाए तो चलने की बात ही खत्म हुई। अपने तक पहुंचने के लिए चलना होगा क्या? अपने से दूर जाना हो तो चलना होता है, अपने तक आना हो तो चलने का सवाल कहां! तुम तो वहां हो ही, तुम तो वहां सदा से हो। इतने चल चुके हो, फिर भी तुम वहीं हो। क्योंकि तुम्हारा स्वरूप तो तुम्हारे साथ है। तुम उसे चाहो तो भी छोड़ नहीं सकते, और तुम चाहो तो भी उसे गंवा नहीं सकते।

मुझसे लोग पूछते हैंः ईश्वर को खोजना है, कहां खोजें? मैं उनसे पूछता हूंः तुमने खोया कहां है, पहले यह पक्का कर लो। और अगर खोया ही नहीं है तो खोज व्यर्थ है। फिर खोज भटकन में ले जाएगी। बहुत भटकन में ले जाएगी। और फिर जीवन संताप और विषाद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि खोजोगे और हर

बार पाओगे कि नहीं पाया। खोजोगे और हर बार हारोगे। खोजोगे और हर बार पराजय हाथ लगेगी। तो जीवन आंसुओं से ही भर जाएगा। ऐसा ही जीवन आंसुओं से भर गया है।

नहीं कहीं मिलती है छांव,
नहीं कहीं रुकते हैं पांव!

राह अजानी, लोग अजाने,
जितने भी संयोग अजाने,
अनजाने से मिली मुझे जो
भूख अजानी भोग अजाने!

एक भुलावा कड़वा-मीठा,
एक छलावा ठांव-कुठांव,
जिसको समझूं अपनी मंजिल
नहीं कहीं दिखता वह गांव,

नहीं कहीं मिलती है छांव,
नहीं कहीं रुकते हैं पांव!

और जब तुम अपने से ही अपरिचित हो तो किससे परिचित हो पाओगे? जिसने स्वयं को नहीं जाना वह किसी और को न जान पाएगा। उसे जानने की कला ही न आई। उसके भीतर जानने वाला दीया ही न जला।

राह अजानी, लोग अजाने,
क्यों? क्योंकि तुम अपने से अजाने हो।
जितने भी संयोग अजाने,
क्यों? क्योंकि तुम अपने से अजाने हो।
अनजाने से मिली मुझे जो
भूख अजानी भोग अजाने!
क्यों? क्योंकि तुम अपने से अजाने हो।

सारा ज्ञान दो कौड़ी का है, अगर आत्म-ज्ञान न हो। सारी पहचान व्यर्थ है अगर अपनी पहचान न हो। अपनी तो पहचान नहीं है और हम न मालूम कितना कूड़ा-करकट ज्ञान के नाम पर इकट्ठा करते चले जाते हैं! अपने घर में तो प्रवेश नहीं मिलता और चांद-तारों पर प्रवेश की चेष्टा चलती है। क्या करोगे चांद-तारों पर? चांद-तारों पर पहुंच कर भी तुम तुम ही रहोगे! तुम स्वर्ग में भी पहुंच जाओ तो क्या करोगे?

मैंने सुना है, एक आदमी बोरीबंदर पर कुली का काम करता था। मस्त था। कमा लेता था काफी। रात खूब डट कर पी लेता था। खाना-पीना, कभी वेश्यालय हो आना, मित्र संगी-साथी--और चाहिए क्या था! वह मरा। वैसे आदमी सीधा-सादा था, जीवन में कोई जाल-उलझाव न थे। समझ लेना इस बात को।

कभी-कभी जुआरी, शराबी, वेश्यागामी सीधे-सरल होते हैं। साधु, संन्यासी, महात्मा बड़े जटिल, बड़े उलझे हुए होते हैं। अपराधियों में तुम्हें सरलचित्त लोग मिल जाएंगे, लेकिन महात्माओं में सरलचित्त मिलना जरा कठिन बात है। महात्मा होना ही जटिलता का धंधा है।

बड़ा आदमी मरा, सीधा स्वर्ग ले जाया गया। मगर उसका दिल न लगे। कहां बोरीबंदर और कहां स्वर्ग! उसका दिल न लगे। न रेलगाड़ियों की भकभक-झकझक, न यात्रियों का शोरगुल। यात्री, गाड़ियों की तो दूर, मालगाड़ियों तक का आना-जाना नहीं। और जिंदगी भर रहा वह बोरीबंदर। उसकी तो जिंदगी वही थी, रस वही था। वह तो संगीत एक ही जानता था--गाड़ी का आना-जाना, शोरगुल मचना, खोमचों की आवाज, लोगों की आवाज, सामान ढोना; फिर सांझ पी लेना, पिलाना मित्रों को; कभी जुआ खेलने बैठ जाना; कभी रात देर तक ताश! जिंदगी बड़ी मस्ती में थी। स्वर्ग पहुंचा तो बड़ी मुश्किल में पड़ गया। पूछा उसने कि यहां क्या करना होगा? रेलगाड़ियां कहां हैं? इंजन कहां हैं? बोरीबंदर कहां है?

देवताओं ने कहाः यहां कहां का बोरीबंदर! यहां कहां की रेलगाड़ियां! यहां कोई रेलगाड़ियां नहीं चलतीं। यहां किसी को कहीं जाना ही नहीं है। जो जहां है मस्त है।

मालगाड़ी? उन्होंने कहाः माल का यहां कोई सवाल ही नहीं! यहां तो आत्म-धन ही एकमात्र धन है।

तो करना क्या होगा, उसने पूछा। तो देवताओं ने कहाः यहां कुछ नहीं करना होता। राम-राम जपो--जयराम जयराम जयराम... ! चुन लो अपना एक बादल, बैठ जाओ पद्मासन लगा कर, राम-राम जपो।

कहां बोरीबंदर, कहां बैठना एक बादल पर! बड़ी मजबूरी। बैठ तो गया। राम-राम जपे भी और बीच-बीच में कहेः ऐसी की तैसी! आखिर राम को खबर लगी कि यह किस प्रकार का मंत्र जपा जा रहा है! फिर कहने लगेः राम-राम, राम-राम, जयराम, जयराम, ऐसी की तैसी! भाड़ में जाए! ऐसी की तैसी!

बुलाया उसे। कहा कि तुझे मंत्र जपना नहीं आता? यह बीच-बीच में ऐसी की तैसी! भाड़ में जाए! यह कभी किसी मंत्र में देखा है?

उसने कहाः अब आपसे क्या छिपाना, बोरीबंदर चाहिए मुझे! रेलगाड़ी के बिना मैं सो ही नहीं सकता। जब तक आवाज न हो, शोरगुल न हो, यात्री न आएं, खोमचों की आवाज न उठे, बिल्कुल खाली-खाली लगता है। बैठे हैं बदली पर, हम आदमी हैं कि कोई बादल हैं? और मुझे हैरानी होती है कि ये बाकी लोग अपनी-अपनी बदलियों पर बैठे दिन-रात जयराम-जयराम कर रहे हैं। आखिर कब तक यह करना है?

कहते हैं, राम ने कहा कि भाई इसे सताओ मत, इसे वापस बोरीबंदर भेजो। यह वहीं ठीक था। कभी-कभी वहां मुझे याद भी कर लेता था, यहां तो यह मुझे गालियां दे रहा है।

तुम स्वर्ग भी चले जाओगे तो क्या करोगे? तुम कहीं भी चले जाओगे तो क्या करोगे? तुम तुम ही रहोगे। इसलिए सवाल कहीं जाने का नहीं है--सवाल रूपांतरण का है; तुम जहां हो वहीं जागने का है।

मनुष्य ने कितना ज्ञान अर्जित कर लिया है। शास्त्रों पर शास्त्र संगृहीत होते चले गए हैं। ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में अब इतनी किताबें हैं कि अगर पृथ्वी पर अलमारियों के साथ लगा कर अलमारियां रखी जाएं तो तीन चक्कर पूरी पृथ्वी के लग जाएंगे। रोज किताबें बढ़ती जाती हैं। रोज आदमी का ज्ञान बढ़ता जाता है। और रोज आदमी की पीड़ा भी बढ़ती जाती है। रोज आदमी की छाती पर दुख का पहाड़ भी बड़ा होता जाता है।

नहीं; कहीं कोई चूक हो रही है। कहीं कोई मौलिक भूल हो रही है। कहीं कोई जड़ में ही भूल हो रही है। स्वयं को नहीं जाना और चले जान पड़ने सब कुछ! जिसने स्वयं का नहीं जाना उसका सब ज्ञान अज्ञान हो जाता है। और जिसने स्वयं को जाना उसका अज्ञान भी ज्योतिर्मय है। उसका कुछ न जानना भी अपूर्व है।

बुद्ध को इतना तो पता नहीं था जितना तुमको पता है। न महावीर को इतना पता था जितना तुमको पता है। बच्चों को ज्यादा पता है आज स्कूल के, जितना मोहम्मद को पता था। बुद्ध से भी पूछते कि टिम्बकटू कहां है, तो अटक कर रह जाते। ध्यान, समाधि इत्यादि ठीक, मगर टिम्बकटू! छोटे बच्चे जवाब दे देंगे। अगर तुम बाहर के ज्ञान का हिसाब-किताब रखो तो बुद्ध की जानकारी बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन फिर भी एक भीतर जलता हुआ दीया है। बुद्ध ज्योतिर्मय हैं। शाश्वत है वह ज्योति। जानने का सवाल नहीं है, जानने वाला जाग गया, "जानने वाले" का सवाल है।

और ख्याल रखना, मनुष्य के मन की एक अनिवार्य प्रक्रिया हैः दोष को दूसरे पर डाल देना। अगर तुम सुखी नहीं हो तो तुम तत्क्षण कहने लगते हो कि संसार में सुख कहां! तुम अगर आनंदित नहीं हो तो तुम तत्क्षण कोई रास्ता खोजने लगते हो कि आनंद हो ही कहां सकता है--संसार माया है! यहां तो दुख ही दुख है! यह तो दुख का सागर है! यह तो भवसागर है! इससे तो तरना होता है!

तुमने संसार पर टाल दी बात; अपने कंधे पर न ली जिम्मेवारी। तुमने यह न कहा कि मैं अज्ञानी हूं; आत्म-अज्ञानी हूं, इसलिए दुख है। तुमने कहा संसार माया है। जरा भेद को समझ लेना। संसार को माया कह कर तुमने अपने को बचा लिया, आड़े में हो गए। यही तर्क चलता रहा है सदियों-सदियों से और इसलिए आदमी अंधेरे में है--और अंधेरे में ही रहेगा, जब तक यह तर्क टूटे नहीं, यह तर्क खंडित न हो। इस तर्क के बहुत-बहुत रूप हैं।

पहले लोग कहते थे कि ईश्वर ने जैसा बनाया है वैसा है। सब उसके हाथ में है, मालिक के हाथ में है। हम क्या करें? हमारे बस में क्या है? होइ है सोइ जो राम रचि राखा! तब उनकी मर्जी। दुख देंगे तो दुख झेलेंगे। हम क्या कर सकते हैं?

ऐसे टाल दिया राम पर। बन गए भगत जी राम पर टाल कर। न इन्हें राम का पता है; अपना ही पता नहीं तो राम का क्या खाक पता होगा! मगर यह एक बहाना मिल गया। एक खूंटी मिल गई, इस पर टांग दिया सारा दुख। मगर दुख खूंटियों पर टांग देने से कटता नहीं। यह काटने का रास्ता नहीं है।

फिर ऐसे लोग हुए जिन्होंने कहा कि नहीं, न कोई ईश्वर है, न कोई नियंता है; यह तो मनुष्य के कर्मों का कारण है। पिछले जन्मों में तुमने जो कर्म किए थे उनके कारण दुख भोग रहे हो। यह भी वही बात है। कुछ फर्क न हुआ। सिर्फ शब्द बदल गए। पहले ईश्वर के कारण--"उसने जैसा रचा"--हम दुख भोग रहे थे; अब पिछले जन्मों के कर्मों के कारण दुख भोग रहे हैं। इस जन्म का पता नहीं है, इस जीवन का पता नहीं है; पिछले जन्मों की बात कर रहे हैं!

और पिछले जन्मों में तुम क्यों दुख भोग रहे थे? --और भी पिछले जन्मों के कारण! और पिछले जन्मों में? --और पिछले जन्मों के कारण! तो कभी प्राथमिक तुम्हारा जन्म हुआ था, उस दिन तुमने क्यों दुख भोगा था? नहीं; कोई प्रश्न को इतने दूर तक ले जाना भी नहीं चाहता। और जो ले जाए हम उससे नाराज होते हैं। हम कहते हैं बात से बतंगड़ न बनाओ, क्योंकि हमारे बहाने छीनो मत हमसे।

मगर यह बात भी पुरानी पड़ गई। फिर कार्लमार्क्स जैसे लोग हुए, जिन्होंने कहाः यह तो समाज की व्यवस्था के कारण है। अब बड़ा फर्क लगता है। कहां ईश्वर, कहां कर्म का सिद्धांत, कहां समाज की व्यवस्था! लेकिन कोई फर्क नहीं है। मौलिक आधार एक है। हम जिम्मेवार नहीं हैं! हमारी सारी सैद्धांतिक चर्चा का एक ही सूत्र हैः किसी भांति मेरे कंधे पर जिम्मेवारी न पड़े। समाज की व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, वर्ग-कलह--इसके कारण दुख है। जब तक वर्ग न मिटेंगे तब तक सुख नहीं होगा। जब तक सारी दुनिया से वर्ग और वर्गों के द्वारा होता शोषण न मिटेगा, जब तक वर्ग-विहीन समाज न बनेगा, तब तक सुख न होगा।

और वर्ग-विहीन समाज कभी बनेगा नहीं। बन ही नहीं सकता। रूस में भी नहीं बना है, चीन में भी नहीं बना है, कहीं बनने वाला नहीं है। यह भी बहाना है टालने का--न होगा बांस न बजेगी बांसुरी! और आदमी दुख में जीने के लिए बहाने खोज लेगा, सांत्वनाएं खोज लेगा।

सिग्मंड फ्रायड ने कहा कि नहीं, समाज की व्यवस्था का सवाल नहीं है, यह मनुष्य की अंतरवृतियों का सवाल है, अचेतन वृतियों का सवाल है; उनके कारण मनुष्य दुखी है। और उनसे छूटने का कोई उपाय नहीं। सिग्मंड फ्रायड ने कहा हैः मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता। ज्यादा से ज्यादा मनोविज्ञान इतना ही कर सकता है कि आदमी को ज्यादा दुखी न होने दे; कम से कम दुखी होने दे, बस। आदमी ज्यादा से ज्यादा सामान्य रूप से दुखी रहेगा, यह अच्छी से अच्छी अवस्था है। असाधारण रूप से दुखी न होगा, साधारण रूप से दुखी होगा। बस मनोविज्ञान का काम इतना हैः जो असाधारण रूप से दुखी होने लगे, उसको खींच कर समझा-बुझा कर साधारण रूप से दुखी करना है।

यह भी कोई लक्ष्य हुआ? मगर यह सारी मनुष्य-जाति की अब तक की चिंतना है। मौलिक भूल हो रही है एक। कुछ लोगों ने नहीं की भूल और वे परम आनंद को उपलब्ध हो गए। कोई बुद्ध, कोई कबीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई लाल परम आनंद को उपलब्ध हो गए! उन्होंने यह भूल नहीं की, यह तर्कजाल नहीं किया। उन्होंने कहा कि अगर दुखी हूं तो मैं जिम्मेवार हूं। अगर दुखी हूं तो अपने भीतर मुझे झांकना होगा। अगर दुखी हूं तो मेरे भीतर का दीया बुझा हुआ है, इसलिए अंधकार है। सारी दुनिया को... और न मालूम नये-नये कारणों को खोज कर अपने दुख को छिपा लेने से कोई सार नहीं है।

नजर तुम्हारी जाली है,
सिक्का तो टकसाली है!

इस सिक्के को गढ़ा प्रकृति ने है धरती की माटी से।
इस सिक्के को गढ़ा पुरुष ने अपनी ही परिपाटी से।
इस सिक्के पर अंक पड़े हैं स्वयं नियति के हाथों से,
यह सिक्का तो चलता आया जनम-मरण की घाटी से!

इसे बजाओ, यह गाता है
गीत खुशी के, मातम के
इस सिक्के में दोष देखना
केवल खाम-ख्याली है!

सिक्का तो टकसाली है!

माल तुम्हारा खोटा है
यह गाहक तो बहुत खरा

यह गाहक मीठे बोलों पर मिसरी-सा घुल जाता है!
थोड़ी-सी ममता पाने को निज सर्वस्व लुटाता है!
जो छल-कपट देखते हो तुम वह तो सभी तुम्हारे हैं--
इस गाहक की सच्चाई से जनम-जनम का नाता है!

अपने अंदर की करुणा को
लाकर के तो परखो तुम!
इस गाहक का हाथ खुला है
इस गाहक का हृदय भरा!
यह गाहक तो बहुत खरा!
तुम आए हो नये-नये।
यह तो हाट पुरानी है!

सोना-चांदी, हीरा-मोती, कितने इसमें छले गए।
जीवन भर बटोरने वाले खाली हाथों चले गए!
सुख-दुख की यह हाट अनोखी, इसमें बिकता यश-अपयश
पाने वाले सदा पुराने, देने वाले नित्य नये!

तुम तो अपने में ही उलझे,
आंख खोल के देखो तो!
जो निज को जितना दे सकता
वह उतना ही ज्ञानी है!
यह तो हाट पुरानी है!

तुम कितने चालाक बनो,
दुनिया भोली-भाली है!

पल में रोना, पल में हंसना, यह दुनिया तो सहज-सरल,
उत्सुकता अस्तित्व यहां पर, जीवन तो है कौतूहल!
सत्य स्वप्न है, स्वप्न सत्य है--इन दोनों में अंतर क्या?

इने-गिने विश्वासों पर ही इस दुनिया की चहल-पहल!

जो मिलता है लेना होगा
राजी से, नाराजी से!
अरे व्यर्थ की तीन-पांच यह
और व्यर्थ की गाली है।
दुनिया भोली-भाली है!

नजर तुम्हारी जाली है,
सिक्का तो टकसाली है!

नजर बदलनी है। जो तुम्हारे भीतर है, परम धन है। जरा भूल-चूक नहीं है। यह अस्तित्व जैसा होना चाहिए वैसा ही है; इसमें जरा भी विसंगति नहीं। यह अस्तित्व तो अपूर्व उत्सव है। तुम अंधे, तुम लंगड़े, तुम लूले। नाच न आवै आंगन टेढ़ा!

नजर तुम्हारी जाली है,
सिक्का तो टकसाली है!

इस सिक्के को गढ़ा प्रकृति ने है धरती की माटी से।
इस सिक्के को गढ़ा पुरुष ने अपनी ही परिपाटी से।
इस सिक्के पर अंक पड़े हैं स्वयं नियति के हाथों से,
यह सिक्का तो चलता आया जनम-मरण की घाटी से!

इसे बजाओ, यह गाता है
गीत खुशी के, मातम के
इस सिक्के में दोष देखना
केवल खाम-ख्याली है!

सिक्का तो टकसाली है!
नजर तुम्हारी जाली है।

नजर... नजरिया बदलने की बात है। इस बात को तुम बहुत मौलिक रूप से अपने हृदय में संजो लो। दोष न दो। कोई और जिम्मेवार नहीं है, सिवाय तुम्हारे। कष्ट होता है यह बात स्वीकार करते में कि मैं ही जिम्मेवार हूं। मन करता है कोई और होगा जिम्मेवार। कष्ट कितना ही हो, सत्य को स्वीकार किए बिना जीवन में क्रांति नहीं होती। अच्छा लगता है यह मानना कि कोई और तुम्हें कष्ट दे रहा है। यह बात तो बड़ी बेहूदी मालूम पड़ती

है कि मैं खुद ही अपने को कष्ट दे रहा हूं। फिर तो कोई बहाना भी नहीं रह जाता। फिर तो कोई भी कहेगाः अगर तुम ही अपने को कष्ट दे रहे हो तो तुम्हारी मौज; देना हो तो दो, न देना हो तो न दो। दूसरा दे रहा है तो कम से कम इतना तो सहारा रहता है कि हम अपने को बचा लें। हम इतना तो कह सकते हैं कि हम क्या करें, करना भी चाहें तो क्या करें! विवशता है, असहाय अवस्था है। रोने के लिए सुविधा तो रहती है, आंसू टपकाने का उपाय तो रहता है।

लेकिन जिसने भी यह सुविधा खोजी उसके जीवन में धर्म का पदार्पण नहीं होता। और जिसने अपने दुख के लिए निमित्त बनाए बाहर, वह कभी परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता है।

लाल के आज के सूत्र इस अंतर-खोज की दिशा में ही इशारे हैं।

करसूं तो बांटै नहीं, बीजां सेती आड।

वै नर जासीं नारगी, चौरासी की खाड।।

जिंदगी उनकी है जो बांटना जानते हैं। जिंदगी उनकी है जो लुटाना जानते हैं। जिंदगी उनकी है जो दोनों हाथ उलीचते हैं। कंजूसों की नहीं है जिंदगी।

लेकिन कंजूसी क्यों है? कंजूसी इसलिए कि हमें भीतर के धन का कुछ पता नहीं है। कंजूसी इसलिए है। इसलिए जोर से पकड़ते हैं हर चीज को कि कहीं हाथ से छूट न जाए, आई हुई चीज छूट न जाए! बामुश्किल तो आई है, आते-आते तो आई है! कितनी यात्रा और कितनी दौड़-धूप, आपाधापी के बाद आई है! हाथ से छूट न जाए!

हमें भीतर के साम्राज्य का पता नहीं है, इसलिए कौड़ियों को इकट्ठा किए बैठे हैं। तिजोरियों को पकड़े बैठे हैं, तिजोरियों में कौड़ियां भरी हैं। क्योंकि जो मौत छीन लेगी उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन तुम्हारे पास एक ऐसा सर्वस्व है, एक ऐसा धन है, जिसे मौत भी नहीं छीन सकती, जिसे चिता की लपटें भी जला नहीं सकतीं।

जिसे उस धन का पता चल गया, उसे एक बात और पता चलती है कि वह धन अपार है। उसे तुम कितना ही बांटो, चुकता नहीं। चुक जाए ऐसा नहीं है। जो चुक जाए वह भी कोई धन है? जिसकी सीमा हो वह भी कोई धन है? उस लंगड़े-लूले को धन मत समझना। असीम हो--तो धन। अनंत हो--तो धन।

तुम सोचते हो, हमने परमात्मा को नाम दिया--ईश्वर! ईश्वर शब्द बनता है ऐश्वर्य से। ऐश्वर्य का अर्थ होता हैः संपदा, धन। तुम्हारे भीतर इतना ऐश्वर्य है! काश तुम जरा लौटो और जरा आंख भीतर मोड़ो, तो फिर तुम लुटाने लगोगे। तुम बांटने लगोगे। क्योंकि तुम देखोगे एक अनुभव, एक नया अनुभव, कि तुम जितना बांटते हो उतने नये-नये झरने तुम्हारे भीतर फूटने लगते हैं। तुम हौज नहीं हो, कुएं हो। हौज तो डरती है कि कोई पानी न भर ले, क्योंकि जितना पानी गया उतनी हौज खाली हुई। कुआं बुलाता है। कुआं निमंत्रण भेजता है; स्नेह-पातियां लिखता है कि आओ, भरो! क्योंकि कुआं जानता है कि कोई नहीं भरेगा तो सड़ जाऊंगा। कुआं जानता है कि कोई नहीं भरेगा तो मर जाऊंगा। कुआं जानता है कि कोई भरता रहेगा तो नये झरने फूटते रहेंगे, नई जलधार आती रहेगी। नितनूतन बना रहूंगा। युवा रहूंगा। ताजा रहूंगा। स्वच्छ रहूंगा। जीवंत रहूंगा!

तुम हौज नहीं हो, कुएं हो। मगर भीतर देखो तो कुएं का पता चले, कि कुआं सागर से जुड़ा है! कि पीएं पीने वाले जितना पीना हो!

लुटाओ दोनों हाथों से जितना लुटाना हो। तुम्हारे पास ऐसा अमृत है जिसे तुम लुटा नहीं सकते।

करसूं तो बांटै नहीं...

अपने हाथ से तो बांटते ही नहीं लोग।

... बीजां सेती आड।

और अगर कोई दूसरा बांटता हो तो उसको भी रोकते हैं, उसको भी अड़चन डालते हैं। खुद तो बांटते नहीं, दूसरे बांटने वाले के बीच भी बाधा डालते हैं, क्योंकि बांटने वाला अगर दूसरा है तो भी उनके अहंकार को चोट लगती है। इसलिए तो जीसस को सूली लगा दी। खुद तो बांटते नहीं, लेकिन यह आदमी बांट रहा था। यह आदमी परमात्मा को बांट रहा था। सुकरात को जहर पिला दिया। खुद तो बांटते नहीं, यह आदमी सत्य की उदघोषणा कर रहा था। मंसूर का गला काट दिया। खुद तो बांटते नहीं, मगर यह आदमी उदघोषणा कर रहा थाः अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! यह बांटे जा रहा था।

हमने बांटने वालों के साथ दुर्व्यवहार किया है। हम कंजूसों को कष्ट होता है यह देख कर कि कोई बांटने वाला! हम कंजूसों के अहंकार को चोट लगती है बांटने वाले को देख कर।

करसूं तो बांटै नहीं, बीजां सेती आड।

वै नर जासीं नारगी, चौरासी की खाड।।

ऐसे व्यक्ति नरक में गिरेंगे; गिरे ही हैं--जो न बांटते हैं, न बांटने देते हैं। और चौरासी करोड़ योनियों में भटकते रहेंगे, बार-बार गड्ढे में गिरेंगे गर्भ के और कभी भी उनको उस शाश्वत का दर्शन नहीं होगा।

बुझ गई न जो बन एक आह अधरों पर
ऐसी तो कोई चाह नहीं जीवन में!

मेरे पैरों को मिली थकन की सीमा,
मेरे मस्तक को गुरुता की नादानी!
दिल में घिर आया करता एक धुआं-सा,
आंखों में घिर आता है अक्सर पानी!

अनजानी दुनिया का अनजाना क्रम है,
अनजाना-सा ही सकल ज्ञान औ" भ्रम है,
अनजान दिशा का मैं अनजाना पंथी,
केवल असफलता ही जानी-पहचानी!

खो गई न हो जो अंधकार में सहसा,
ऐसी तो कोई राह नहीं जीवन में!

उल्लास-तरगों से जो अधर विचुबिंत,
वे लिए हुए हैं चुभती जलन तृषा की,
आंसू में उमड़ा जो अभाव का सागर,
उसमें ही लहरें हैं छवि की, सुषमा की!

मेरे पीछे अगनित खंडहर के क्रंदन
मेरे आगे बस धुंधला-सा सूनापन,
यह राग-रंग, यह चहल-पहल सब कुछ है,
पर अपने अंदर मैं कितना एकाकी!

पल-भर का जो अवलंब मुझे दे सकती,
ऐसी तो कोई थाह नहीं जीवन में!

जिसको देखा वह खोया अपनेपन में,
जिसको पाया वह बेसुध यहां जलन में,
पागल-सा मैंने दर-दर अलख जगाया,
जिससे पूछा है वही एक उलझन में।

प्रत्येक मौन में कुछ घुटता-सा भय है,
प्रति स्वर में कुछ कांपता हुआ संशय है,
कितने निःश्वासों से बोझिल है धरती,
हैं डूब चुके कितने उच्छवास गगन में।
विचलित कर सकती जो कि नियति के क्रम को,
ऐसी तो कोई आह नहीं जीवन में।

इस जीवन में बचाने योग्य क्या है?

बुझ गई न जो बन एक आह अधरों पर
ऐसी तो कोई चाह नहीं जीवन में!

खो गई न हो जो अंधकार में सहसा,
ऐसी तो कोई राह नहीं जीवन में!

पल भर जो अवलंब मुझे दे सकती,
ऐसी तो कोई थाह नहीं जीवन में!

विचलित कर सकती जो कि नियति के क्रम को
ऐसी तो कोई आह नहीं जीवन में।

इस जीवन में है क्या? जरा आंख खोलो और गौर से देखो, तुम्हारे हाथ खाली हैं। कितने ही भरे हों तो भी खाली हैं। सिकंदर के हाथ भी खाली हैं।

इस दुनिया में लोग चाहे कितने ही धन से सजे हों, भीतर का मालिक जब तक जागा नहीं, भीतर के स्वामी से जब तक पहचान न हुई, तब तक सब धोखा है। रोओगे एक दिन, पछताओगे एक दिन। मौत जब द्वार पर आकर खड़ी होगी और सब छीन लेगी जिसे तुमने कमाया था; जिसे तुमने इतनी आकांक्षा से पकड़ा था, इतनी आतुरता से पकड़ा था। जब सब छिन जाएगा तो तड़फोगे।

मेरे देखे, लोग मौत से नहीं डरते, डरते हैं मौत जो छीन लेगी उससे। मौत से तो डरोगे भी कैसे? मौत से तो पहचान ही नहीं है। अपरिचित से क्या डर? कौन जाने मौत अच्छी ही हो, मीठी हो! कौन जाने मौत और नये जीवन का द्वार हो! मौत से तो कोई पहचान नहीं है तो मौत से क्या डरोगे? फिर डर क्या है? असली डर यह है कि तुम्हें पता है, कितने ही अज्ञानी होओ, लेकिन इतनी प्रतीति तो तुम्हें है कि तुम्हारा धन, तुम्हारा पद, तुम्हारी प्रतिष्ठा, यह सब मौत छीन लेगी। इतना पक्का है। मौत क्या देगी उसका तो कुछ पता नहीं; लेकिन क्या छीन लेगी, यह बिल्कुल साफ है। तुम जो हो सब छीन लेगी। तुमने जिस-जिस से तादात्म्य कर लिए वह सब छिन जाएगा। इससे घबड़ाहट होती है। मौत की घबड़ाहट नहीं है यह। मौत से भय नहीं है यह। यह तुम्हारी पकड़ से, तुम्हारे परिग्रह से, तुम्हारी कृपणता से भय पैदा हो रहा है। काश, तुम अपने ही हाथ मुट्ठी खोल दो, मौत का भय उसी क्षण तिरोहित हो जाता है। तुम पकड़ो नहीं, जीओ! गुजरो जिंदगी से! मगर पकड़ो मत।

पांपेई के नगर में ज्वालामुखी फूटा, आज से हजारों साल पहले। सारा गांव भागा। आधी रात, ज्वालामुखी का फूटना, भयंकर लपटें, आग की वर्षा गांव पर! लोग अपना-अपना सामान जो बचा सकते थे बचाने की कोशिश की। कोई अपनी तिजोड़ी लिए है। जिसके पास जो था... लोग अपना-अपना सामान ढो रहे हैं। गरीब हैं, उनके पास भी बहुत कुछ है; नहीं है कुछ, तो कोई अपनी खाट, अपना बिस्तर... जिसके पास जो है। सिर्फ एक आदमी अपने घूमने की छड़ी लेकर मस्ती से चल रहा है। जो भी उसे देखता हैरान होता है। वह था उस गांव का दार्शनिक--एक फकीर। यह समय था उसका रोज सुबह घूमने जाने का, तीन बजे रात। वह आज भी घूमने जा रहा है। जो उसे देखता वही कहता हैः अरे, कुछ बचा न पाए! दया के भाव से देखता है--"कुछ बचा न पाए!"

और वह फकीर हंसता है। वह कहता हैः अपने को बचा लिया, और बचाने को क्या है? जो भी देखता वह पूछता है कि बड़ी शान से चल रहे हो, यह कोई वक्त शान से चलने का है! रही होगी लखनवी चाल--हाथ में छड़ी, मस्ती! शायद गीत गुनगुना रहा हो। यह कोई वक्त छड़ी लेकर घूमने निकलने का है!

और फकीर कहता हैः यह मेरे रोज का समय है। ज्वालामुखियों से क्या अंतर पड़ता है? जिस दिन से अपने को जाना है, मौत से अंतर ही नहीं पड़ता। जिस दिन से अपने को जाना है, मौत झूठ हो गई।

और अपने को जानने के रास्ते पर बांटना साधन भी है, साध्य भी। बांटोगे तो जान सकोगे, जानोगे तो बांट सकोगे।

करसूं तो बांटै नहीं, बीजां सेती आड।

वै नीर जासीं नारगी, चौरासी की खाड।।

काया में कवलास, न्हाय नर हर की पैड़ी।

वह जमना भरपूर, नितोपती गंगा नैड़ी।।

लाल कहते हैंः काया में कवलास! कैलाश तो तुम्हारी काया में है, जा कहां रहे हो? किधर चले? कोई काशी, कोई काबा, कोई कैलाश, कोई गिरनार, कोई जेरुसलम। कहां जा रहे हो?

काया में कवलास, न्हाय नर रह की पैड़ी।

वहीं नहा लो! और हर की पैड़ी वहीं है, मगर तुम जा रहे हो हरिद्वार! हरि का द्वार तुम्हारे भीतर है। लेकिन तुमने कटा ली टिकिट, तुम चले हरिद्वार। तुम कहते हो कि जा रहे हैं, हर की पैड़ी पर नहाएंगे। कैसी मूढ़ता है! तीर्थ को खोजने बाहर जाते हो, तीर्थों का तीर्थ तुम्हारे भीतर है!

काया में कवलास, न्हाय नर हर की पैड़ी।

लाल कहते हैंः बड़ी हैरानी की बात है, तुम जा-जा कर नदियों में नहाते हो! अपने में डुबकी मारो!

वह जमना भरपूर...

वहां तुम पाओगे जमना भरपूर! बाहर की जमना तो कभी बाढ़ आती और कभी सूख भी जाती है और गर्मी में दीन-क्षीण हो जाती है। बाहर की जमना तो बदलती है, रूपांतरित होती है। भीतर की जमना हमेशा भरपूर है--सदा एक जैसी, एक रस!

वह जमना भरपूर, नितोपती गंगा नैड़ी।।

और तुम्हारे पास ही, तुम्हारे भीतर ही प्रतिदिन बह रही है गंगा, तुम कहां जा रहे हो? हाजी होने चले? हज करने चले? तीर्थयात्री बन गए? मूढ़ता कर रहे हो!

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया। उसने कहाः गंगा जा रहा हूं, काशी जा रहा हूं स्नान करने। परमहंस देव, आपका आशीर्वाद है न?

रामकृष्ण तो भोले-भाले, सीधे-सादे आदमी थे। कहते भी थे तो बात बड़ी मीठी कहते थे। कबीर जैसे नहीं थे कि उठाया एक टेंड़पा और मार दिया सिर पर! कबीर की अपनी रौनक है, अपनी शान है!

कबीर खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ।

जो घर बारै आपना चले हमारे हाथ।।

कहते हैंः लट्ठ लिए खड़ा हूं, है कोई हिम्मतवर जो घर में आग लगा दे अपनी? लगा दे कोई घर में आग तो हमारे साथ चले! यह शर्त है।

रामकृष्ण तो और ढंग के व्यक्ति थे। बुद्धों में भी ढंग-ढंग के लोग हैं! ... रामकृष्ण ने कहा कि ठीक है जाते हो तो जरूर जाओ, मगर एक बात तुम्हें बता दूं... । यह मीठी चोट है और कभी-कभी मीठी चोट कड़वी चोट से भी गहरी होती है, ख्याल रखना। मुंदिमार! कोई लट्ठ से नहीं मारी जाती।

उसने कहाः जरूर कहें परमहंसदेव, क्या कहना है!

कहाः जरा पास आ, तेरे कान में कहूं। तू जा रहा है सो तो ठीक, लेकिन तूने देखा गंगा के किनारे बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हैं!

उसने कहाः हां।

तुझे पता है वृक्ष क्यों खड़े हैं?

मुझे कुछ पता नहीं। यह तो किसी शास्त्र में इसका उल्लेख भी नहीं है कि क्यों वृक्ष खड़े हैं। नदियों के किनारे वृक्ष होते हैं, सो वृक्ष हैं।

रामकृष्ण ने कहाः तुझे फिर पता नहीं। तू जब डुबकी मारेगा गंगा में तो गंगा की पवित्रता के कारण तेरे पाप धुल जाएंगे। मगर पाप इतनी आसानी से छोड़ने वाले नहीं। वे झाड़ों पर बैठ जाते हैं। फिर तू निकलेगा

गंगा से, जब तू वापस घर की तरफ चलेगा, उचक कर फिर सवार हो जाएंगे। तो अगर तू डुबकी मारे तो निकलना मत फिर, मार ही जाना डुबकी। नहीं तो बेकार हो गया सब। तेरी डुबकी वैसी होगी जैसे हाथी नहाने जाता है; खूब नहाता है, मल-मल कर नहाता है और फिर बाहर आकर धूल फेंकता है। सब नहाया-धोया खराब कर लेता है। तो तू डुबकी मारे, अगर मेरी मान तो फिर मार ही जाना डुबकी, फिर निकलना मत।

उसने कहाः परमहंसदेव, आप क्या कह रहे हैं! क्या आत्महत्या करनी है, डुबकी मारी फिर निकलूं नहीं?

तो कहाः फिर जाना बेकार है। फिर आना-जाना ही होगा। वे झाड़ पर बैठ जाएंगे चढ़ कर और रास्ता देखेंगे कि बच्चू, आओ... फिर सवार हो जाएंगे। इससे कुछ लाभ न होगा।

रामकृष्ण सीधे-सादे हैं। लट्ठ जैसा नहीं मारते। मगर मार दिया, मार दी कटार--ऐसी कि जो दिखाई भी नहीं पड़ती! यह आदमी गया नहीं फिर काशी, अब क्या खाक जाना है! अब पहले जाओ और काशी के सब झाड़ काटो और फिर पता नहीं झाड़ काटो तो वे कोई जमीन पर ही खड़े रहें। पाप ही हैं, जो झाड़ पर चढ़ते हैं, तो जमीन पर ही खड़े रहें! मकानों पर बैठ जाएं। और पापों का क्या, बड़े सूक्ष्म हैं, हवा में पर मारें! वहीं ऊपर फड़फड़ करते रहें, तुम निकलो बाहर, फिर सवार हो जाएं।

एक और गंगा है जो तुम्हारे भीतर बह रही है। उस गंगा का नाम ध्यान है।

हरख जपो हरदुवार...

ईश्वर का स्मरण करो, हरि का द्वार खुले। हरिद्वार बने! हरख जपो! ऐसा जपो कि जपने वाला खो जाए।

... सुरत की सैंसरधारा। ऐसा लयबद्ध हो जाए तुम्हारा स्मरण परमात्मा का, वहीं से सहस्रधारा टूटेगी।

माहे मन्न महेश...

और जब ध्यान की प्रक्रिया से, प्रभु-स्मरण से मन का विसर्जन हो जाता है तो महेश से मिलन हो गया, तो मिल गया देवों का देव!

... अलिल का अंत फुंवारा।

और तब वर्षा होती है भीतर आनंद की। मेह बरसते अमृत के! अलिल का अंत फुंहारा! चित्त की आत्यंतिक निरोधावस्था में शिव का साक्षात्कार होगा और परमानंद के निर्झर के नीचे तो ब्रह्म कलोल करेगा। कहीं जाना नहीं है; सारा अस्तित्व तुम्हारे भीतर है। पिंड में ब्रह्मांड है।

चलना है बहुत कठिन
ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

चलना है बहुत कठिन, पिंडली भर जाती है,
और धौंकनी-सी बन-बन जाती छाती है।
बाहर आलोकित रवि है, शशि है, तारे हैं,
हम अपने अंदर अंधियारे से हारे हैं!

मन कितना भारी हो,
आंखें कितनी नम हों,

प्राणों में कांटों-से
चुभते कितने भ्रम हों!

पर हमको चलना है, चलते ही रहना है।
लेकिन इतना सच है--
बन कर मिट जाना है।
फूलों का खिलना ही
उनका मुरझाना है।

मिट जाते दिन हैं औ" मिट जाती रातें हैं।
मधु-ऋतु जल जाती, गल जाती बरसातें हैं।
चलती हैं सांसें, चलता रहता काल-समय!
औ" चलती ही रहतीं सुख-दुख की बातें हैं!

लेकिन हम कायम हैं
हमसे जग कायम है!

बनती-मिटती बस कुछ इनी-गिनी चाहों पर!
चलना है बहुत कठिन
लेकिन हम चलते हैं
ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

हमको भी लगता, हम कुछ बहके-बहके हैं,
अपना विश्वास शिथिल, अपना स्वर धीमा है!
वरना प्रति पग पर जो हमसे टकरा जाती
वह तो बस अपने ही सपनों की सीमा है!

दिक्भ्रम है उसका ही
जिसको हो दिशा-ज्ञान!
गिरने का भय उसको
ऊंची जिसकी उड़ान!

अनजानी दुनिया का हर कण अनजाना है,
जीवन का हर क्षण उलझा-सा अफसाना है,

इस ससीम संसृति में जिसका अस्तित्व पृथक्?
अपने को खो देना अपने को पाना है

हम उठते रहते हैं!
प्रस्फुटित उमंगों पर,
हम गिरते रहते हैं,
घुटती आहों पर!

चलना है बहुत कठिन
लेकिन हम चलते हैं
ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

ऊंची-नीची-संकरी
पथरीली राहों पर!

चलना है बहुत कठिन, पिंडली भर जाती है,
और धौंकनी-सी बन-बन जाती छाती है।
बाहर आलोकित रवि है, शशि है, तारे हैं,
हम अपने अंदर अंधियारे से हारे हैं!

मन कितना भारी हो,
आंखें कितनी नम हों,
प्राणों में कांटों-से
चुभते कितने भ्रम हों!

पर हमको चलना है, चलते ही रहना है।

एक और रास्ता है, जिस पर चलना नहीं होता। एक और मार्ग है, जिस पर बैठना होता है, रुकना होता है। न ऊंची-नीची राहें हैं, न कंटरीले मार्ग हैं--चुपचाप सन्नाटा है, न शोरगुल है। न क्रम है, न विधि है। उस क्रम-विधि-हीन शांत बैठ जाने का नाम ध्यान है।

मन तो गति है; ध्यान गति-मुक्ति है। मन तो चलता ही रहता है। मन का तो चलना ही जीवन है। जिस क्षण तुम्हारे भीतर मन नहीं चलता उस क्षण ध्यान है। कैसे वह अपूर्व घड़ी आए जब मन न चले? साक्षी की कुंजी है। बैठो! बैठ कर देखते रहो। चलने दो मन को; न रोकना, न झगड़ना, न निंदा करना, न संग-साथ हो लेना। निरपेक्ष, तटस्थ! जैसे कुछ लेना-देना नहीं है--असंलग्न, दूर! जैसे मन कोई और है। जैसे राह पर चलते हुए

लोग हैं। ऐसी दूरी अपने मन से करके जो बैठ गया, धीरे-धीरे एक दिन पाता है--मन कभी-कभी रुक जाता है। क्षण भर को अंतराल आ जाते हैं। उन्हीं अंतरालों में गंगा फूटती है। उन्हीं अंतरालों में हरि का द्वार खुलता है। उन्हीं अंतरालों में कैलाश के दर्शन होते हैं। फिर अंतराल बड़े होने लगते हैं। फिर धीरे-धीरे वह अंतिम परम अवसर भी आ जाता है, जब मन सदा के लिए विदा हो जाता है।

हरख जपो हरदुवार, सुरत की सैंसरधारा।

माहे मन्न महेश, अलिल का अंत फुंवारा।।

टोपी धर्म दया, शील का सुरंगा चोला।

जत का जोग लंगोट, भजन का भसमी गोला।।

लाल तो सीधे-सादे गांव के आदमी हैं, गांव की भाषा बोल रहे हैं। कहते हैंः टोपी, सिर पर रखने योग्य अगर कोई चीज है तो धर्म, दया, करुणा, प्रेम। अगर कोई चोले को रंगने के योग्य रंग है तो शील का सुरंगा चोला। तो शील... । शील का अर्थ होता हैः जिसके भीतर ध्यान जगा, उसके बाहर फूटती हुई किरणों का नाम शील है। जैसे घर में दीया जले तो खिड़की से, द्वार-दरवाजे से रोशनी दिखाई पड़ने लगे। राह से चलते हुए आदमी को भी पता चलता है घर का दीया जला है। घर का दीया बुझा हो तो खिड़की, द्वार-दरवाजे से अंधेरा झांकता है।

ध्यान की आभा है शील। जब तुम भीतर शांत होते हो, तुम्हारे बाहर शील की शीतलता होती है। जो भी पास आता है तुम्हारी शीतलता से आह्लादित होगा। ठंडा हो जाएगा। आया होगा उत्तप्त, आर्द्र हो जाएगा।

टोपी धर्म दया, शील का सुरंगा चोला।

जत का जोग लंगोट...

और अगर संयम ही कोई बांधना है--तो अंतर-योग, अंतर-मिलन।

... भजन का भसमी गोला।

भस्म ही कोई लगानी है तो भजन की।

खंमा खड़ाऊ राख...

अगर खड़ाऊ ही कोई पहननी हो तो खंमा... क्षमा की।

... रहत का डंड कमंडल।

और अगर कोई आचरण जीवन में लाना हो तो जो ध्यान में उपलब्ध हो उसको जीओ। जो ध्यान में उमगे उसे आचरण में प्रकट होने दो। बाहर और भीतर को एक होने दो। बाहर और भीतर में भेद न रहे, द्वैत न रहे, द्वंद्व न रहे।

... रहत का डंड कमंडल।

रैणी रह सतबोल...

और अगर कोई रहने योग्य बात है, आचरण-योग्य बात है, तो वह है कि तुम्हारी वाणी में सत्य प्रगटे, सत्य का गीत उठे।

... लोपज्या ओखा मंडल। अगर इतना तुम कर सको तो यह विराट ब्रह्मांड है, इसको भी तुम पार कर जाओगे, इसके उस पार निकल जाओगे। इतना सा तुम कर सको कि ध्यान की छोटी सी नौका, यह शील की पतवार, बस काफी है। तुम इस पूरे भवसागर को पार कर जाओगे।

खेलौ नौखंड मांय...

और फिर तुम खेलो अनंत में--खेल अनंत का! फिर सब लीला है। नौ का आंकड़ा अनंत का सबूत है, क्योंकि नौ पर सारी संख्या समाप्त हो जाती है। फिर नौ के बाद तो पुनरुक्ति होती है। दस का मतलब है, फिर लौट गए, ग्यारह-बारह, फिर वही लौटने लगा। नौ पर संख्या समाप्त हो जाती है। नौ अनंत का प्रतीक है; सारी संख्या का अंत आ गया। नौ के बाद असंख्य है।

खेलौ नौखंड मांय...

फिर तो यह जो अनंत जगत है, इसमें खेलो, दिल खोल कर खेलो! फिर सब लीला है। फिर कुछ बोझ नहीं। फिर कोई चिंता नहीं। फिर छाती पर कोई पत्थर नहीं। फिर कोई विषाद नहीं।

खेलौ नौखंड मांय, ध्यान की तापो धूणी।

मगर एक बात ख्याल कर लेनाः ध्यान की धूनी तापो तो ही पक जाओगे, तो ही फिर यह जगत लीला रह जाएगा। परम संन्यास इस जगत को लीला की भांति लेना है। शुरुआत ध्यान से, अंत लीला में।

सोखौ सरब सुवाद, जोग की सिला अलूणी।।

और तुम अगर इतना कर सको कि ध्यान की धूनी को जला सको... लोग आग जला कर बैठे हैं और सोच रहे हैं कि धूनी लगाए हुए हैं! अरे, आग लगानी हो तो ध्यान की लगाओ! लपटें उठानी हों तो ध्यान की उठाओ; क्योंकि ध्यान में ही जलेगा तुम्हारा अहंकार, जलेगी विषय-वासना। सोखौ सरब सुवाद! उसी में तुम्हारे सारे राग-रंग की जो आकांक्षा है, जो स्वाद की इच्छा है, जो विषय-भोग की वासना है, सब जल जाएगी। मगर लकड़ियां जला कर, धूनी लगा कर बैठोगे, इससे कुछ भी नहीं होगा। तुम किसको धोखा दे रहे? औरों को तो ठीक, मगर खुद को भी धोखा दे रहे। क्योंकि जीवन का एक-एक पल जाता है, वह बहुमूल्य है, फिर लौट कर आने का नहीं है। बैठ जाओगे योग की सिद्ध-शिला पर! बस ध्यान की धूनी!

पीने दे! पीने दे ओ!
यौवन मदिरा का प्याला!
मत याद दिलाना कल की;
कल है कल आने वाला।
है आज उमंगों का युग--
तेरी मादक मधुशाला!
पीने दे जी भर रूपसी
अपने पराग की हाला!

लेकर अतृप्त तृष्णा को
आया हूं मैं दीवाना,
सीखा ही नहीं यहां है
थक जाना या छक जाना,
यह प्यास नहीं बुझने की
पी लेने दे मन माना,
बस मत कर देना रूपसी

"बस करना" है मर जाना।

हम तो जीवन को सिर्फ भोग-विलास समझे हैं और सोचते हैंः अगर भोग-विलास का अंत आ गया तो जीवन का अंत आ गया। सचाई ठीक इसके विपरीत है। जहां भोग-विलास का अंत आता है वहीं से वास्तविक जीवन का प्रारंभ है। और भोग-विलास के अंत का यह अर्थ नहीं कि तुम भागो जंगल। भोग-विलास के अंत का यह अर्थ नहीं कि छोड़ो पत्नी-बच्चों को, कि दुकान-बाजार को। भोग-विलास के वास्तविक अंत का अर्थ है कि ध्यान जगे और शेष सारा जीवन, सारा जीवन, उसके समस्त आयामों में एक लीला-मात्र हो जाए, एक अभिनय-मात्र हो जाए! खेलो फिर जम कर!

राम बनते हो तुम रामलीला में, सीता चोरी चली जाती है। तुम रोते भी हो, तुम वृक्षों से पूछते भी हो कि हे वृक्ष, मेरी सीता कहां? लेकिन भीतर! भीतर तुम जानते हो कि कौन सीता, क्या लेना-देना! मगर बाहर आंसू टपकाते हो। युद्ध हो जाता है, रावण से जम कर युद्ध होता है। जीवन दांव पर लग जाता है। फिर भी भीतर तुम जानते हो--किससे दुश्मनी, किससे मैत्री! पर्दा गिरा... । कभी-कभी पीछे जाकर देखा करें, रामलीला का जब पर्दा गिर जाए, तो राम, रावण, हनुमान सब साथ बैठे चाय पी रहे हैं, गपशप कर रहे हैं। सीता मैया चाय ढाल रही हैं; राम को भी पिला रही हैं, रावण को भी पिला रही हैं। हनुमान जी ने भी पूंछ-वूंछ निकाल कर एक तरफ रख दी है।

भीतर तो एक बोध बना रहे कि सब अभिनय है। फिर कोई चिंता नहीं। फिर इस संसार में रहो। और रहने को जाओगे भी कहां? सब जगह संसार है।

भोग का अंत जीवन का अंत नहीं है। लेकिन भोग से जाग जाना, भोग बाहर रह जाए और तुम्हारे भीतर एक जागरण हो, तुम साक्षी हो जाओ और भोग एक अभिनय हो जाए। भोजन भी करोगे फिर, रात सोओगे भी; सोओगे और सोओगे भी नहीं, भोजन करोगे और भोजन नहीं भी करोगे।

जैन शास्त्रों में प्यारी कथा हैः नेमिनाथ का आगमन हुआ। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे और जैनों के तीर्थंकर। नेमिनाथ आए हैं, यमुना के उस पार ठहरे हैं। कृष्ण ने रुक्मणि को कहा है कि जाओ, सुस्वादु भोजन बनाओ और नेमिनाथ की सेवा में उपस्थित होओ। पर उन्होंने कहा कि नदी बहुत गहरी है, नदी बाढ़ पर है, पैदल पार करना संभव नहीं है। नदी इतनी बाढ़ पर है कि नाविक भी खतरा लेना चाहते नहीं। तो हम क्या करें? हम कैसे पार जाएं?

तो कृष्ण ने एक बड़ी अच्छी बात कही। कृष्ण ने कहा कि तुम नदी से कहना कि अगर नेमिनाथ जन्म भर के उपवासे हों तो नदी, राह दे दे। भरोसा तो न आया रुक्मणि को। मगर कृष्ण कहते हैं तो करके देख लेना ठीक है। आजकल की पत्नी होती तो कहती चलो जाओ भाड़ में! किसको बनाने चले हो! पुराने जमाने की कहानी है, रुक्मणि पति को ऐसा तो कह नहीं सकती। कहते होंगे तो कुछ ठीक ही कहते होंगे। कहते होंगे तो कुछ सार होगा। बिना किए तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

भोजन बनाया, चली। शक है भीतर, संदेह बड़ा है--नदी कहीं रास्ता देती है! संदिग्ध मन से, लेकिन पूछा है कि अगर नेमिनाथ सदा के ही उपवासी हों... "सदा के उपवासी"! इस पर भी भरोसा नहीं आता! सदा के उपवासी तो कैसे हो सकते हैं! कमसे कम बचपन में मां का दूध तो पीया ही होगा! और अगर सदा के ही उपवासी हैं तो आज भोजन इनको कौन सी जरूरत पढ़ रही है! ये सब बातें बेबूझ मालूम पड़ती हैं, मगर अब कृष्ण कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे।

और जब नदी ने रास्ता दे दिया तब तो रुक्मणि को अपनी आंखों पर भी भरोसा नहीं आया। रुक्मणि और उसकी साथिनें नदी पार कर गईं। नेमिनाथ को भोजन कराया। भोजन कराया तो बहुत हैरान हुईं, बहुत भोजन बना कर लाई थीं, कि एक नहीं पचास आदमियों का पेट भर जाता। शाही स्वागत था। लेकिन नेमिनाथ तो सब अकेले ही उड़ा गए। तब तो और भी शक होने लगा कि ये जीवन भर के उपवासी कैसे! और तब याद आया कि बड़ी झंझट हो गई, जल्दी में हमने कृष्ण से यह तो पूछा ही नहीं कि लौटते वक्त क्या करेंगे! जाते वक्त चलो कि नेमिनाथ जीवन भर के उपवासी हैं... लौटते वक्त? भोजन करा कर लौट रहे हैं, अब किस मुंह से कहेंगे गंगा से या यमुना से कि अब राह दे दो! अब क्या करें? किंकर्तव्यविमूढ़ वे नदी के तट पर खड़ी हैं।

नेमिनाथ हंसने लगे। उन्होंने पूछाः क्या अड़चन है? उन्होंने कहाः अड़चन यह है कि हम पूछ कर आए थे। कृष्ण ने जो उत्तर दिया था, वह काम कर गया, मगर अब कैसे काम करेगा?

नेमिनाथ ने कहाः फिकर छोड़ो! तुम तो वही कहो कि अगर नेमिनाथ जीवन भर के, जन्म भर के उपवासी हों तो नदी राह दे दे। उन्होंने कहाः महाराज, कृष्ण की बात पर भरोसा नहीं आ रहा था, आपकी बात पर तो अब बिल्कुल ही नहीं आ सकता।

नेमिनाथ ने कहाः भरोसे या न भरोसे का सवाल नहीं। जो मैं कहता हूं वह करो। नदी भलीभांति जानती है कि नेमिनाथ उपवासे हैं।

और रुक्मणि को कोई राह नहीं थी तो कहना पड़ा। झिझकते-झिझकते कहा कि हे नदी, राह दे दे, यदि नेमिनाथ जीवन भर के उपवासी हों।

और नदी ने राह दे दी। कहानी बड़ी प्रीतिकर है! प्रतीकात्मक है, कोई ऐतिहासिक नहीं हो सकती। आदमियों को नहीं दिखाई पड़ता, नदियों को क्या खाक दिखाई पड़ेगा! पर बात प्रतीक की है, बात मूल्य की है।

नेमिनाथ का जीवन भर के उपवास का अर्थ केवल इतना ही है कि सब अभिनय है, भीतर साक्षी है। भोजन किया तो, भूखे रहे तो, दोनों हालत में भीतर साक्षी है। साक्षी क्षण भर को नहीं छूटता है। शाश्वत, सतत साक्षी में थिरता हो गई है। यह ध्यान की धूनी है। फिर खेलो!

खेलौ नौखंड मांय, ध्यान की तापो धूणी।

सोखौ सरब सुवाद, जोग की सिला अलूणी।।

फिर अदभुत सिद्धि की शिला है--शाश्वत, जहां न समय है, न रूपांतरण है! फिर उस सिद्ध-शिला पर विराजमान हो जाओ। वही सिंहासन पाने योग्य है। फिर समाधि के परम सिंहासन पर विराजो।

बांटौ बिसवंत भाग, देव थानै दसवन्त छोड़ी।

अवस जीव जा हार, टेकसी नहचै गोड़ी।।

जल्दी ही आती है मौत, कहते हैं लाल। फिर घुटने टेकने पड़ेंगे। मौत आए उसके पहले जिसने घुटने टेक दिए ध्यान में, उसकी मौत फिर आती ही नहीं। मौत के सामने घुटने टेकोगे! टेकसी नहचै गोड़ी! फिर कुछ उपाय काम नहीं पड़ेगा। तो अभी झुक जाओ! तो अभी मिट जाओ! मौत मिटाए, उससे पहले मिट जाओ, तो फिर तुम्हें कोई मिटा न सकेगा। मौत झुकाए उससे पहले झुक जाओ, तो तुम्हारी विजय शाश्वत।

बांटौ बिसवंत भाग, देव थानै दसवंत छोड़ी।

बड़ा प्यारा वचन है। कहते हैंः कम से कम परमात्मा के लिए अपने जीवन का दसवां हिस्सा तो दे दो। चौबीस घंटे में कम से कम दो घंटे तो दे दो! बस इतना भी अगर तुम ध्यान की धूनी रमाने लगो, चौबीस घंटे में अगर दो-ढाई घंटे भी, दसवां हिस्सा, तो आज नहीं कल क्रांति की वह अपूर्व घड़ी आ जाएगी, वह अभिनव क्षण

आ जाएगा। अगर इतना भी न कर सको तो कम से कम बीसवां भाग दे दो परमात्मा को। घंटा, सवा घंटा! उतने से भी क्रांति हो जाएगी। मगर उतने से कम से क्रांति नहीं होती। लाल बात पते की कह रहे हैं।

जो लोग भी ध्यान की प्रक्रिया में उतरते हैं उन्हें धीरे-धीरे अनुभव होना शुरू हो जाता हैः कोई चालीस मिनट तो मन को विदा करने में लग जाते हैं। चालीस मिनट कम से कम। चालीस मिनट मन की पकड़ है। इसीलिए स्कूलों में, कालेजों में, युनिवर्सिटीज में हम चालीस मिनट का पीरियड रखते हैं। उसका कारण है, मनोवैज्ञानिक कारण है। चालीस मिनट तक ही मन किसी चीज को पकड़ता है। अगर चालीस मिनट से ज्यादा का पीरियड हो तो फिर मन भागा-भागा हो जाता है। सारी दुनिया में चालीस मिनट के पीरियड की स्वीकृति हो गई--किसी खास कारण से। यह कोई आकस्मिक नहीं है, यह मन के नियम का हिस्सा है। चालीस मिनट तक तो मन किसी चीज में रमता है। फिर कहता है अब बस। बस चालीस मिनट उसकी क्षमता है।

तो अगर तुमने चालीस मिनट, कम ध्यान किया चालीस मिनट से तो तुम मन के बाहर न हो पाओगे। चालीस के बाद ही काम शुरू होता है। चालीस मिनट और साठ मिनट के बीच में झलकें आती हैं। और साठ मिनट और पचहत्तर मिनट के बीच में थिरता आती है। इसलिए सवा घंटा ठीक समय है। लाल बिल्कुल पते की बात कह रहे हैं।

लेकिन अगर यह तुम दो बार कर सको, सवा-सवा घंटा, तब तो कहना क्या! और अगर यह तुम ढाई घंटा एक ही साथ कर सको तब तो डुबकी बहुत गहरी लगे और बड़ी जल्दी लगे। और ऐसी डुबकी लग जाए तुम्हारी, तो फिर मौत भी आएगी, तुम्हें घुटने न टेकने पड़ेंगे, मौत तुम्हारे सामने घुटने टेकेगी।

पीछै सूं जम घेरसी, टेकरै काल किरोई।

ख्याल रखो, देर नहीं है, मौत आती ही है! यम के दूत तुम्हारे पीछे ही चल रहे हैं छाया की तरह। किसी भी दिन घेरा डाल देंगे। किसी भी दिन फंदा कस जाएगा।

पीछै सूं जम घेरसी, टेकरै काल किरोई।

और ख्याल रखो, मौत हमेशा पुकार दे रही है--सावधान! सावधान! सुनो या न सुनो, मगर मौत रोज सावधान कर रही है।

कुण आरोगै घीव...

और जब मौत आ जाएगी तो कौन भोगेगा--यह सब जो तुम सोच रहे हो, योजनाएं बना रहे हो, भविष्य की कल्पनाएं बना रहे हो।

... जीमसी कुण रसोई।

इन सारी योजनाओं में, इन सारी कल्पनाओं में तुम जो समय गंवा रहे हो, इस सारे भोजन को जीमने वाला बचेगा नहीं। जीमसी कूण रसाई! मौत आएगी और ले जाएगी--और क्षण में ले जाएगी।

उसके पहले ध्यान साध ही लेना है। जिसने उसके पहले ध्यान न साधा, वह मूढ़ है। इस जगत में बुद्धिमान केवल वे ही हैं जो मृत्यु के पहले ध्यान को साध लेते हैं।

मानापमान हो इष्ट तुम्हें
मैं तो जीवन को देख रहा!

मैं देख रहा दानवता के

दुःसाहस के विकराल कृत्य,
मैं देख रहा बर्बरता का
भू की छाती पर नग्न नृत्य,
मैं देख रहा उठने वाली
अम्बर पर संसृति की उसांस,
मैं देख रहा यह मानवता
कितनी निर्बल कितनी अनित्य!

जमघट है रोने वालों का,
जमघट है गाने वालों का,
सब देने को लाए थे पर
जमघट है पाने वालों का,
कुछ बने लुटेरे लूट रहे
कुछ बने भिखारी लूट रहे
है जमा मिटाने को ही यह
जमघट मिट जाने वालों का

मैं जग की सुख देने वाले
जग के क्रन्दन को देख रहा
मानापमान हो इष्ट तुम्हें
मैं तो जीवन को देख रहा!

तुम साक्षी बनो। मानापमान होने दो दूसरों को इष्ट। सफलताएं-असफलताएं, यश-अपयश--छोड़ो नासमझों को, बच्चों को! खिलौने हैं ये। खिलौने हैं तुम तो जीवन को देखो, तुम तो द्रष्टा बनो। तुम तो साक्षी में डूबो।

साक्षी हरिद्वार है! साक्षी गंगा है! साक्षी कैलाश है! और इतने पास, इतने पास है कि कदम भी नहीं उठाना पड़े और पहुंच जाओ, कि आंख भी न खोलनी पड़े और देख लो! आंख बंद करके देख लो, इतने पास है। बिना हिले-डुले देख लो, इतने पास है। पास कहना ठीक नहीं, तुम्हारा स्वरूप है। तुम साक्षी हो! तुम परमात्मा के अंश हो। तुम परमात्मा हो!

और जब तक तुम्हें अपना यह परमात्म-बोध न हो जाए, तब तक समझना कि जीवन अकारथ है। तब तक समझना, कुछ भी पाया हो तो व्यर्थ है। तब तक इतना करो जितना लाल कहते हैं। बन सके तो दसवां हिस्सा परमात्मा को दे दो। न बन सके, कठिनाइयां हों... हैं तो नहीं कठिनाइयां लेकिन लोग खड़ी कर लेते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। कहते हैंः मन अशांत है, शांति चाहिए। अगर मैं उन्हें कहूं ध्यान करो, वे कहते हैंः समय कहां! अशांत होने को समय है, अशांत होने में चौबीस घंटे लगाते हैं--शांत होने को समय कहां! मैं उनसे पूछता हूंः कभी फिल्म देखते हैं?

हां-हां, कभी जाना पड़ता है। बच्चे हैं, पत्नी है, मित्र हैं।

रोटरी-क्लब जाते हैं?

जाना ही पड़ता है; सदस्य हूं।

रोटरी-क्लब भी जा सकते हैं, फिल्म भी देख सकते हैं, क्रिकेट मैच भी देखते हैं, रेडियो भी सुनते हैं, टेलीविजन भी देखते हैं, अखबार भी पढ़ते हैं--कचरा अखबार! जिसमें सिवाय कचरे के और कुछ भी नहीं होता। और वही कचरा दोहरता रहता है रोज। सबके लिए समय है और ध्यान की बात उठती है तो बस एकदम से समय कहां है! और ये वे ही लोग हैं जिनको तुम ताश खेलते देखोगे और अगर पूछो कि क्या कर रहे हो, तो कहते हैंः समय नहीं कटता, समय काट रहे हैं! एक तरफ समय नहीं कटता, ताश के पत्ते खेलते हैं, ताश के राजा-रानी उनसे उलझते हैं। समय नहीं कटता, शतरंज बिछाते हैं। लकड़ी के हाथी-घोड़े, उनको दौड़ाते हैं। कहो ध्यान; समय कहां है!

और जब वे कहते हैं समय कहां है, तो ऐसा मत सोचना कि वे जान कर धोखा दे रहे हैं। वे मानते हैं कि समय कहां है। उनकी आंखों से बिल्कुल ईमानदारी मालूम पड़ती है। वे कोई ऐसा नहीं कह रहे कि आपको धोखा दे रहे हैं। नहीं, उनको पक्का भरोसा है कि समय है ही कहां। सोने को समय है। सब कामों के लिए समय है। लड़ने-झगड़ने को समय है। गपशप करने को समय है। सिर्फ ध्यान के लिए समय नहीं है!

तुम परमात्मा के लिए एक घंटा भी नहीं देना चाहते, तो चूकोगे, बुरी तरह चूकोगे, बहुत पछताओगे! और फिर पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत! मौत ने अगर द्वार पर दस्तक दे दी, तब बहुत पछताओगे। क्योंकि उस क्षण में जितना समय ध्यान के लिए दिया था वही बचा हुआ सिद्ध होता है और जो और तरह गया वह गया। वह गया, नाली में बह गया! जो ध्यान में लगाया था वही बच जाता है। परमात्मा के सामने तुमने जो ध्यान में समय बिताया था, बस उसका ही लेखा है, बाकी कुछ नहीं लिखा जाता। बाकी तो सब दो कौड़ी का है, उसका कोई मूल्य नहीं है।

तुम परमात्मा के सामने खड़े होकर यह नहीं कह सकोगे कि रोज टेनिस खेलने जाता था, कि इतनी फिल्में देखीं, कि एक फिल्म नहीं छोड़ी।

एक सज्जन को तो मैं जानता हूं, मेरे छोटे गांव में, वहां एक ही सिनेमागृह है, एक फिल्म आती है तो चार-पांच दिन चलती है, वे एक ही फिल्म चार-पांच दिन देखते हैं। उनसे मैंने पूछाः एक ही फिल्म चार-पांच दिन देखना बड़ी हिम्मत की बात है! आदमी एकाध ही बार देखने से... हिंदी फिल्में और! करीब-करीब दूसरी फिल्मों से ही, उनकी ही चोरी और उन्हीं का पुनरुक्तिकरण होता है। तुम एक ही फिल्म पांच बार देखते हो!

उन्होंने कहाः देखता कौन है! मगर न जाएं तो करें क्या? न जाएं तो जाएं कहां? समय कट जाता है। कभी-कभी सो भी लेते हैं वहां, कभी देख भी लेते हैं। और मालूम भी है कि अब यह फिल्म तो दो दफे देख ली तो इसका पता है, क्या-क्या होने वाला है। लेकिन फिर भी जाएं तो कहां जाएं?

तुम देखते हो जीवन कैसा रिक्त है, कैसा खाली है! और हंसना मत उन पर, क्योंकि तुम भी यही कर रहे हो अलग-अलग ढंग से। वही जो तुमने कल किया था, आज भी करोगे। वही तुमने परसों भी किया था, वही तुमने नरसों भी किया था। पुनरुक्ति ही तो तुम्हारा जीवन है। तुम दोहराते ही तो रहते हो। सुबह से सांझ तक एक कोल्हू के बैल की तरह घूमते रहते हो। वही झगड़े वही प्रेम, वही मनाना, वही बुझाना! वही हार, वही जीत, वही अकड़! सब वही है! वही क्रोध, वही संबंध। अंतर क्या है?

अगर तुम अपनी जिंदगी को जरा गौर से देखो तो तुम पाओगे एक पुनरुक्ति है। लेकिन तुम देखते भी नहीं, क्योंकि देखोगे तो बहुत ऊब पैदा होगी, बहुत घबड़ाहट होगी। तुम देखते ही नहीं, भागे चले जाते हो--इस आशा में के कोल्हू के बैल नहीं हो, कहीं पहुंच रहे हो, अब पहुंचे, तब पहुंचे।

जीवन की अंतिम घड़ी में बहुत रोओगे। मौत के कारण नहीं; वह जो जीवन गंवाया, उसके कारण। अभी समय है। अभी थोड़े से क्षण परमात्मा को देना शुरू कर दो। अभी एक घंटे भर बस बैठ ही रहो। और बहुत बाधाएं आएंगी। अगर अखबार पढ़ो, तो पत्नी बच्चों से कहती हैः शांत, डैडी अखबार पढ़ रहे हैं! अगर ध्यान करोगे, तो बच्चे आकर कान में अंगुली डालेंगे और पत्नी कहेगी कि हां ठीक है, फिजूल समय गंवाना!

पत्नियां जितना ध्यान से डरती हैं उतना किसी और चीज से नहीं। क्योंकि ध्यान, फिर आखिरी कदम संन्यास। पति भी ध्यान से बहुत डरते हैं। अगर पत्नी ध्यान करने लगे तो बेचैन। यहां मुझे रोज इस तरह के अनुभव होते हैं। अगर पति ध्यान करे तो पत्नी आ जाती है कि आप क्यों हमारी गृहस्थी बरबाद करना चाहते हैं? जैसे ध्यान से गृहस्थी बरबाद होना कोई अनिवार्यता है! हां, पहले होती रही है बरबाद, वह मुझे पता है। वह संन्यास गलत था। वह संन्यास भ्रांत था।

मैं उस संन्यास का पक्षपाती नहीं हूं। किसी ने उसका लेखा-जोखा नहीं किया कि बुद्ध और महावीर कि पीछे जो लोग घर-द्वार छोड़ कर चले गए, उनके घर-द्वारों का क्या हुआ? पत्नियों ने भीख मांगी, बच्चे बीमारियों में मरे, कि स्त्रियां वेश्याएं हो गईं, कि ब.ूढों को सड़कों पर घिसट-घिसट कर भीख मांगनी पड़ी, कि मरने को उनको कफन भी न मिला। इसका किसी ने कोई हिसाब नहीं लगाया है। लेकिन जिस दिन भी यह हिसाब लगाया जाएगा, उस दिन बड़ी हैरानी होगी। महावीर एक तरफ तो पैर फूंक-फूंक कर रखते रहे कि चींटी न मरे, लेकिन उनके पीछे जो संन्यास खड़ा हुआ उसमें आदमी दबे और मरे, उसमें घर बरबाद हुए, उसमें गृहस्थियां टूटीं।

हजारों साल से संन्यास एक रुग्ण अवस्था से पीड़ित रहा है, जीवन-निषेधक रहा है। इसलिए डर भी ठीक है, पत्नी अगर कहती है घबड़ा कर कि आप बचाएं मेरी गृहस्थी को तो मैं उसकी बात को समझता हूं। क्षम्य है। पुराना संन्यास ही उसकी धारणा में है।

मैं एक नये संन्यास की धारणा दे रहा हूं--संन्यास का एक नया अर्थ, एक नई भाव-भंगिमा, एक नई मुद्रा! ध्यान करो और जीवन को अभिनय समझो। न कहीं भागना है, न कुछ छोड़ना है। पत्नी पत्नी है, बच्चे बच्चे हैं। अभी तुम सोचते हो मेरे हैं, तब तुम समझोगे मेरा कौन! एक पात्र हूं मैं भी, एक अभिनय है; पूरा करना है, ठीक से पूरा करना है! और जब अभिनय ही है तो फिर क्या कंजूसी--ठीक से पूरा करना है! जब अभिनय है तो पूरी कला से पूरा करना है। न कोई चिंता है, न कोई बोझ है।

निर्भार हो जाओगे, निर्बोझ हो जाओगे--जैसे ही अभिनय का भाव समझ में आ जाएगा। फिर खेलो सब रंग, फिर खेलो होली। फिर मनाओ दीवाली। मगर एक काम न चूके, एक बात न चूके--एक घंटा कम से कम परमात्मा को दे दो। एक घंटा चुपचाप बैठ जाओ साक्षी होकर, मन की सारी गतिविधियों को देखते रहो। देखते-देखते तीन महीने से नौ महीने के बीच में साक्षी का भाव उमगना शुरू हो जाता है। और जिस दिन पहली बार क्षण भर को भी तुम्हारे भीतर "साक्षी" शब्द की अनुभूति होगी, नाच उठोगे, गुनगुना उठोगे! पहली दफा वीणा बजी! पहली दफे बांसुरी सुनाई पड़ी! पहली दफा नाद का अनुभव होगा! और पहली दफे स्वाद मिलेगा--वास्तविक जीवन का, शाश्वत जीवन का! उस जीवन का ही दूसरा नाम परमात्मा है।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

मेरा सूत्रः विद्रोह

पहला प्रश्नः ओशो! एक बार किसी ने मुझे बतलाया था कि पूना भारत का आक्सफोर्ड है--संस्कृति का नगर और देश के विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधि। लेकिन यहां प्रायः हर रात अच्छी पोशाकें पहने लोग स्कूटर पर या कार पर चढ़ कर कोरेगांव पार्क के इर्द-गिर्द घूमते हैं और संन्यासियों को, खासकर संन्यासिनियों को डंडे से बेरहमी से पीटते हैं। और अब तो मानो डंडे पर्याप्त नहीं रहे, इसलिए उन्होंने लोहे की चेनों का उपयोग करना शुरू किया है। ओशो, ये कैसे लोग हैं?

कृष्ण प्रेम! भारत की संस्कृति एक बड़ा पाखंड है। शायद पृथ्वी पर इतना बड़ा पाखंड कोई दूसरा और नहीं। हो भी नहीं सकता, क्योंकि यह पाखंड सर्वाधिक प्राचीन है; कोई दस हजार वर्षों का लंबा इसका इतिहास है। यह रोग पुराने से पुराना रोग है इस पृथ्वी पर। इसका मुखौटा एक है, इसकी अंतरात्मा बिल्कुल सड़ी-गली है। यहां बातें अच्छी हैं, विचार अच्छे हैं, लेकिन वे सब बातें हैं और विचार हैं, व्यवहार बिल्कुल भिन्न है। यहां खाने के दांत और, दिखाने के दांत और हैं।

सामने के द्वार से भारत को जो समझेगा, नहीं समझ पाएगा। क्योंकि सामने के द्वार पर तो स्वागतम लिखा है, बंदनवार लगा है, फूलों से सजावट है। लेकिन भारत सामने के द्वार पर रहता नहीं--रहता है पीछे के द्वार पर; आता-जाता है पीछे के द्वार से। भारत की इस विकृति को समझोगे, तो ही यह जो दुर्घटना रोज यहां घट रही है वह भी समझ में आ सकेगी।

हजारों साल से भारत ने जीवन का निषेध किया है। और जीवन का निषेध किया नहीं जा सकता। हम जीवन हैं, जीवन का निषेध कैसे होगा? जीवन स्वभाव है; स्वभाव का निषेध कैसे होगा? और जो स्वभाव के प्रतिकूल जाएगा वह पाखंड में पड़ेगा। और जो चाहेगा कि स्वभाव को मटियामेट कर दे, स्वभाव तो मटियामेट नहीं होगा, वह स्वयं मटियामेट हो जाएगा। फिर एक ही उपाय रह जाता है चेहरे को बचाने का कि हम बाजार में बने सस्ते मुखौटे खरीद लें, उनके पीछे अपनी गंदी स्थिति को छिपा लें, अपनी गंदी आंखों को छिपा लें। ऐसा ही भारत कर रहा है, करता रहा है।

इसीलिए जो लोग पश्चिम से आते हैं वे एक दृष्टिकोण लेकर आते हैं, क्योंकि उन्होंने भारत जाना है किताबों से; उन्होंने वेदों से, उपनिषदों से, धम्मपद, गीता, रामकृष्ण, रमण, कृष्णमूर्ति, इनसे भारत को जाना है। ये भारत नहीं हैं। ये तो भारत के इस विशाल सागर में चम्मच भर भी इनकी सत्ता नहीं है। भारत इनसे बिल्कुल विपरीत है। जरूर बुद्ध हुए हैं लेकिन उनको तो अंगुलियों पर गिना जा सकता है। और उन बुद्धों की प्रतिष्ठा के कारण भारत को एक प्रतिष्ठा मिली, जो उधार है, बासी है, जो भारत की अपनी नहीं है। बुद्धों की आभा से भारत ने अपने को मंडित कर लिया है। वह झूठी आभा है। उस आभा के पीछे कोई भी अस्तित्वगत समर्थन नहीं है।

जो पश्चिम से आता है वह तो किताबों के भारत को जानता है, उसे असली भारत से कोई पहचान नहीं है। यहां असली भारत से पहचान होती है, तब उसके मन में बड़ी दुविधा पैदा होती है। वही दुविधा, कृष्ण प्रेम, तुम्हारे मन में पैदा हुई है। तब उसकी समझ में ही नहीं आता इस विसंगति को कैसे सुलझाएं, इस विरोधाभास

को कैसे निपटाएं? उसके मन में तो ख्याल होता है कि ये सभी भारतीय बुद्ध होंगे। और यहां आकर पाता है कि आदमी पश्चिम से भी ज्यादा बदतर है। पश्चिम में बुद्ध न होंगे बहुत, लेकिन आदमी बेहतर है; क्योंकि आदमी ने वे सारी व्यवस्थाएं बना ली हैं जो आदमी को बेहतर करती हैं।

एक खास पृष्ठभूमि चाहिए संपन्नता की, तो मनुष्य के जीवन में पाखंड कम होता है। भारत विपन्न है, तो बातें तो करता है त्याग की, लेकिन नजर लगी होती है धन पर। रामकृष्ण कहते थेः चील उड़ती तो है आकाश में बहुत ऊपर, इससे धोखा मत खा जाना; उसकी नजर लगी होती है नीचे किसी कूड़े-घर पर; मरा हुआ चूहा पड़ा हो, उस पर उसकी नजर लगी होती है। भारत बातें तो त्याग की करता है, लेकिन नजर भोग पर लगी है। और यह नजर वह बताना भी नहीं चाहता किसी को। इसलिए उसने काले चश्मे पहन रखे हैं कि नजर मरे चूहों पर भी लगी रहे और बातें आकाश की होती रहें। बातें आकाश की, वह जो नजर चूहों पर लगी है उसे छिपाने का उपाय हो गई हैं, कारगर उपाय हो गई हैं।

पश्चिम ने एक संपन्नता पैदा की है। पश्चिम जीवन को स्वीकार करता है। पश्चिम जीवन का विरोधी नहीं है। पश्चिम ने ईसाइयत से अपना छुटकारा कर लिया है। भारत अभी भी धर्म की रूढ़ियों से, अंधविश्वासों से छुटकारा नहीं कर पाया है। भारत अभी भी अतीत से बंधा है। उसकी छाती पर पत्थर हैं अतीत के। भारत में कोई गति नहीं हो रही है। भारत बिल्कुल ही गत्यावरोध की अवस्था में है। भारत सरिता नहीं है। एक डबरा है, जहां सब सड़ रहा है। पश्चिम में थोड़ा बहाव है। जहां बहाव होता है वहां जल शुद्ध होता है। और जहां संपन्नता होती है वहां छोटी-छोटी बातों पर बेईमानी, चोरी अपने आप बंद हो जाती है।

पश्चिम ने मनुष्य की देह को स्वीकार किया है। देह का सम्मान है, देह का सत्कार है। देह के सौंदर्य को भी पुरस्कार है। भारत देह-विरोधी है, शरीर का शत्रु है। मगर कैसे तुम शरीर के शत्रु हो सकते हो--तुम शरीर हो! माना कि तुम शरीर से भी ज्यादा हो, लेकिन शरीर तुम पहले हो, फिर तुम ज्यादा हो। शरीर की सीढ़ी बने तोशायद तुम ज्यादा को भी जान पाओ।

पश्चिम की भ्रांति यहां है कि शरीर पर रुक गया है। और भारत की मुसीबत यह है कि भारत शरीर को अभी तक स्वीकार ही नहीं कर पाया है। अगर इन दोनों भूलों में कोई भूल ही चुननी हो तो पश्चिम की भूल को चुनना मैं ज्यादा पसंद करूंगा। क्योंकि पश्चिम की भूल के बाद दूसरी बात, ठीक बात होनी बहुत कठिन नहीं है। मगर भारत की भूल ऐसी है कि पहली बात हो ही न सकेगी, तो दूसरी के होने का उपाय ही नहीं उठता।

पश्चिम की भूल में एक तर्कसंगति है। शरीर है मनुष्य, ऐसी मान्यता है तो गलत लेकिन फिर भी इस मान्यता से दूसरी मान्यता तक जाना असंभव नहीं है कि मनुष्य शरीर से भी ज्यादा है। भारत मानता है मनुष्य शरीर है ही नहीं; यहीं अटक जाता है। जब शरीर ही नहीं है तो दूसरी बात कि मनुष्य आत्मा है, उस तक पहुंचना असंभव हो जाता है। हमने मंदिर की सीढ़ियां तोड़ दी हैं। तुमने मंदिर तोड़ दिया है। पश्चिम में मंदिर नहीं है, सीढ़ियां ही हैं। भारत में मंदिर बनाने की चेष्टा चली है, मगर बिना सीढ़ियों के। मंदिर बनेगा कैसे? मंदिर बनता नहीं, कल्पना में रह गया है। पश्चिम के पास कम से कम सीढ़ियां तो हैं। कभी मंदिर भी बन जाएगा; सीढ़ियां काम आ जाएंगी। सीढ़ियों के बिना मंदिर नहीं बन सकता। सीढ़ियां हों तो मंदिर बन सकता है।

पश्चिम की भूल ज्यादा सार्थक भूल है, ज्यादा अर्थपूर्ण भूल है। मैं चाहूंगा कि भारत को भी अगर भूल ही करनी हो तो पश्चिम जैसी भूल करे। शरीर के विरोध ने भारत के मन को बहुत कामवासना से भर दिया है। ब्रह्मचर्य का उदघोष होता है। ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ऐसी बातें होती हैं। मगर ये बातें ही हैं। जब तक

कामवासना का रूपांतरण न हो, कैसा ब्रह्मचर्य? और कामवासना का रूपांतरण कामवासना के दमन से नहीं होता। जिसे दबाओगे उससे जीवन भर परेशान रहोगे।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह-सुबह अपने कुछ मित्रों से मिलने जा रहा था, कि तभी बहुत वर्षों का बिछुड़ा हुआ मित्र अपने घोड़े से उतरा। मुल्ला ने कहा कि बड़े बेवक्त आए हो। तुम विश्राम करो। मैं दो-तीन घंटे मैं वापस आता हूं। कुछ मित्रों को आश्वासन दे दिया है, उनके घर तक जाऊं, जाना होगा।

मित्र ने कहाः इतने वर्षों बाद मिले हो, कितनी आकांक्षा से आया हूं! चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। लेकिन मेरे कपड़े सब धूल-धूसरित हैं। लंबी राह, रेगिस्तानी रास्ता। मुझे थोड़ा ढंग के कपड़े दे दो, मैं जल्दी से कपड़े बदल लूं और साथ हो लूं।

मुल्ला ने सम्राट के द्वारा भेंट किए हुए कपड़ों को सम्हाल कर रखा था। पहना नहीं था कभी। मित्र को देना तो फिर कुछ शानदार चीज देनी, उसने वे ही कपड़े लाकर दे दिए। दे तो दिए, लेकिन मन कचोटता था। खुद पहने नहीं आज तक, सम्हाल कर रखे रहा कि किसी सुअवसर पर पहनेगा और आज दे तो रहा है मित्र को, मगर मन में बड़ी चोट भी है। दे तो दिए ऊपर-ऊपर, भीतर नहीं दे पाया।

पहले ही घर पहुंचे। स्वभावतः वे शानदार कपड़े, सम्राट के द्वारा दिए गए कीमती कपड़े! मित्र की नजर मुल्ला से ज्यादा भी उसके मित्र, मुल्ला के मित्र पर पड़ी। बार-बार वह मित्र को देखने लगा। मुल्ला ने कहाः ये हैं मेरे मित्र, जलील। बहुत वर्षों बाद आए हैं। और रहे कपड़े, सो कपड़े मेरे हैं।

जलील तो बहुत हैरान हुआ। बाहर आकर उसने कहा कि यह तो बात कुछ शोभा की नहीं है। कपड़ों की बात ही क्यों उठाई? ऐसा मेरा अपमान करना था तो मुझे साथ ही क्यों लाए? अब दूसरी जगह कपड़े की बात मत उठाना और अगर उठानी ही थी तो कम से कम अपने तो न बताते।

मुल्ला ने कहाः क्षमा करो!

दूसरे मित्र के घर फिर बात चली और फिर मित्र की नजरें उन कपड़ों पर अटक गईं। मुल्ला ने कहाः ये रहे मेरे मित्र, जलील। रहे कपड़े, सो कपड़े इन्हीं के हैं।

बाहर आकर मित्र ने कहा कि तुम बाज न आओगे? कपड़ों की बात ही क्यों उठानी! परिचय मेरा देना चाहिए।

मुल्ला ने कहाः माफ करो। मैंने समझा कि पहली जो भूल हो गई उसको ठीक कर लूं।

तीसरे घर फिर वही हुआ। घरवालों की नजरें मित्र पर लग गईं। मुल्ला ने कहाः ये रहे मेरे मित्र, जलील। रहे कपड़े, सो कपड़ों की बात न करना ही अच्छा है। किसी के भी हों, इससे क्या लेना-देना! कपड़ों के संबंध में तो हम चुप ही रहेंगे।

तुम जो दबाओगे वह निकल-निकल कर बाहर आएगा, उभर-उभर कर बाहर आएगा।

भारत ने काम को बुरी तरह दबाया है। सो सब तरफ से उभर रहा है, सब तरफ से प्रकट हो रहा है।

रोज पूना में यह हो रहा है। संन्यासिनियों का चलना मुश्किल है। धक्के मारे जाएंगे, गालियां दी जाएंगी, पत्थर फेंके जाएंगे। डंडे मारे जाते हैं, सांकलें लोहे की। अब किसी चलती हुई स्त्री को लोहे की सांकल से पीटना बड़े रुग्ण चित्त का लक्षण है। इस आदमी ने कभी स्त्री को प्रेम से छुआ नहीं है, उसकी यह विकृति है। प्रेम से छू लेने का अपना रस है, आनंद है। आखिर यह स्त्री भी परमात्मा की अभिव्यक्ति है। अगर तुमने किसी स्त्री को प्रेम किया है और आह्लाद से उसे छुआ है तो उसको छूने में एक अध्यात्म है, एक प्रसाद है, एक काव्य है। लेकिन किसी स्त्री को तो प्रेम से छुआ नहीं, अब उसकी विकृति हुई है। उसकी विकृति है कि सांकल से उसकी देह पर

घाव कर दो, कि डंडे मार कर उसकी चमड़ी उखाड़ दो। यह प्रेम से छूने की जो महत्वपूर्ण बात थी उसके दमन का विकृत रूप है। यह दूसरा छोर है।

जो लोग बलात्कार करते हैं, वे वे ही लोग हैं जिन्होंने कभी किसी स्त्री को प्रेम नहीं किया। जिन्होंने किसी भी स्त्री को प्रेम किया है उनके मन में सारी स्त्रियों के प्रति एक सम्मान का भाव पैदा हो जाता है। और जिसने किसी स्त्री को प्रेम नहीं किया बल्कि प्रेम को पाप समझा है, उसके मन में इतनी कुंठा इकट्ठी हो जाती है, इतना जहर कि वह जहर फूटेगा, निकलेगा।

और भारत में इस तरह की बातें कहने की आदत है लोगों की कि पूना आक्सफर्ड है। भारत में इस तरह की आदतें हैं। इन आदतों से बहुत परेशान न होना, बहुत चिंता न करना। यहां तो हर छोटी चीज को बड़ा करने की आदत है। यहां तो कोई छोटा-मोटा सम्मेलन होता है तो उसका नाम होता हैः अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन! यहां छोटी-मोटी बातें होती ही नहीं। भारत इतना दीन हो गया है, इसका स्वाभिमान इतना पददलित हो गया है कि हर चीज को बड़ा कर लेता है। यहां एकाध पोस्ट आफिस हो गांव में, और बस रुकती हो तो बस काफी है युनिवर्सिटी बन जाने के लिए। गांव के लोग कोशिश करने लगेंगेः यहां युनिवर्सिटी होनी चाहिए, क्या कमी है? बस भी रुकती है, पोस्ट आफिस भी है। और क्या चाहिए? भारत में गांव-गांव युनिवर्सिटियां फैलती जा रही हैं।

इन तीस सालों में आजादी के, इतनी युनिवर्सिटियां बनी हैं, एक भी युनिवर्सिटी की कोई बड़ी प्रतिष्ठा नहीं है। आधी युनिवर्सिटियां बंद रहती हैं साल में क्योंकि दंगे-फसाद, हड़तालें, मार-पीट, कुलपतियों, उप-कुलपतियों के घेराव। अध्यापक सांझ को घर लौट आते हैं तो भगवान को धन्यवाद देते हैं कि एक दिन कट गया, कि अपनी जान बचाई और घर आ गए। जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए! विश्वविद्यालय की तरफ जाते हैं अध्यापक तो हनुमान-चालीसा पहले पढ़ कर जाते हैं, के हे हनुमान जी, रक्षा करना।

यहां कहां आक्सफर्ड? और पूना?

ये पांच वर्ष जो हम यहां रहे हैं उसका अनुभव कहता हैः है एक दकियानूसी किस्म का नगर, सड़ी-गली मान्यताओं से भरा हुआ। लेकिन कहां की संस्कृति, कहां की सभ्यता? थोथे, तोतों की तरह रटे हुए पंडित हैं और उन पंडितों की अतीत पर पकड़ है और अतीत से वे जकड़े हुए हैं। मगर संस्कृति तो विकासमान होती है, गतिमान होती है। सच तो यह है, अभी संस्कृति पैदा कहां हुई? अभी हम संस्कृति की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी यह घटना घटने को है।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ को किसी ने कहा कि आपका सभ्यता के संबंध में क्या ख्याल है? जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहाः सभ्यता का विचार बहुत सुंदर है, मगर किसी को इसका प्रयोग करना चाहिए। अभी सभ्यता हुई कहां है?

इस देश के दावों से जरा सावधान रहना, यह बड़े दावे करने में कुशल है। यहां हर चीज पर दावे हो जाते हैं। दावे ही बचे हैं। भीतर तो कुछ और नहीं, भीतर सब थोथापन है।

लोगों कोदेखो, लोगों के व्यवहार को देखो, लोगों की अंतरात्मा में झांको, तो बड़ा अंधेरा है। हां, ऊपर-ऊपर एक आवरण है शिष्टाचार का। वह आवरण बस आवरण ही है; चमड़ी जितनी भी उसकी गहराई नहीं है; जरा खरोंचो और भीतर का जंगली आदमी प्रकट हो जाता है। और किसी को भी खरोंचो... ।

कृष्ण प्रेम, इस तरह के दावों के धोखे में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

संन्यासिनियों का जीना मुश्किल है। ... स्त्री जैसे अनूठी चीज है! जैसे भारतीय आदमी कोस्त्री एक अजूबा है! जैसे चांद-तारों से आई हुई कोई अप्सरा है! क्योंकि सदियों-सदियों से स्त्री का संस्पर्श नहीं रहा है। न तोस्त्री

की समाज में कोई जगह है, न घर के बाहर कोई स्थान है, न कार्य-कलाप के संसार में उसकी कोई गति है। बंद है घर में।

एक आदमी की स्त्री अचानक पागल हो गई। मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया गया। उसने पूछा कि यह अचानक कैसे हुआ? कोई इतिहास होगा पागलपन का। पहले भी कभी ऐसी कोई घटना घटी थी?

उस आदमी ने कहा कि बीस साल से हम विवाहित हैं, कभी कोई घटना नहीं घटी। मैं भी चकित हूंः सच तो यह है कि बीस साल में यह कभी चौके के बाहर निकली ही नहीं।

अब बीस साल में जोस्त्री चौके के बाहर न निकली हो वह पागल न हो जाए तो और क्या हो? स्त्री को बंद कर रखा है घरों में, कठघरों में। और जब स्त्रियां कठघरों में बंद हो जाती हैं और समाज केवल पुरुषों का रह जाता है तो समाज में एक तरह की कठोरता हो जाती है--एक तरह की परुषता। क्योंकि पुरुष परुष है, कठोर है। तब समाज में एक तरह की सौम्यता खो जाती है।

तुमने देखा, दस पुरुष बैठे हों और एक स्त्री आ जाए, उसके आते ही एक सौम्यता आ जाती है। उसकी मौजूदगी एक तरलता ले आती है। उसकी मौजूदगी से ही अगर गाली-गलौज चल रही थी तो बंद हो जाती है। अगर लोग कुछ भी ऊलजलूल बातें कर रहे थे तो बदल देते हैं। उसकी मौजूदगी एक रूपांतरण लाती है।

जिस समाज में स्त्रियां घरों में बंद हो जाती हैं वह समाज कठोर हो जाता है, जंगली हो जाता है। और इस देश में स्त्रियां घरों में बंद हैं। उन्हें घरों के बाहर लाना है। उन्हें समाज में प्रवेश दिलाना है। उन्हें उनका अधिकार मिलना चाहिए। उन्हें उनकी समानता मिलनी चाहिए। उनका समाज में वापस लौट आना पूरे समाज के लिए सौम्य हो जाने के लिए बिल्कुल जरूरी है। इसीलिए यह अड़चन होती है।

मेरी संन्यासिनियां हैं, वे मुक्त-भाव से विचरण करती हैं--यह मान कर कि यह मनुष्यों का समाज है। लेकिन उन्हें रोज अपनी मान्यता को खंडित होते हुए देखना पड़ता है। जहां जाती हैं वहीं आंखें गिद्धों की उन्हें घेर लेती हैं। वे जो गिद्ध की तरह उन्हें देखने लगते हैं और अगर मौका मिल जाए उन्हें, तो जो भी दुर्व्यवहार वे कर सकते हैं करने को राजी हो जाते हैं--उसका कारण है। स्त्री से परिचय टूट गया है। स्त्री से संबंध टूट गया है। पुरुष अलग-थलग हो गया है। उसने एक अपनी दुनिया बना ली है--स्त्रियों को बिल्कुल अलग छोड़ दिया है। स्त्रियां जैसे इस भारतीय जीवन का हिस्सा ही नहीं हैं!

इसलिए तुम्हें अड़चन हो रही है, तुम्हें कठिनाई हो रही है। फिर यहां स्त्रियां बिल्कुल ढंकी-ढकाई होती हैं। सब तरफ से ढंकी होनी चाहिए। यह पुरुष की निंदा है। स्त्रियों को इतना ढंका होना चाहिए, यह इस बात की खबर है कि पुरुष की आंखें गंदी हैं, कि पुरुष लुच्चे हैं।

"लुच्चा" शब्द समझने जैसा है। लुच्चा शब्द बनता है लोचन से, आंख से। लुच्चा का अर्थ होता हैः घूर-घूर कर देखने वाला। यहां पुरुष लुच्चे हैं, इसलिए स्त्री को अपने कोढांक-ढांक कर चलना होता है। पश्चिम से आई हुई मेरी संन्यासिनियों को बड़ी हैरानी होती है, क्योंकि वे मुक्त-भाव से विचरण करती हैं। न अपने कोढांकती हैं, न ढांकने की कोई जरूरत समझती हैं, क्योंकि वे मानती हैं कि सय लोगों की दुनिया है! बस वहीं भूल हो जाती है। यहां सय लोगों की दुनिया कहां? यहां सब तरह की असभ्यता है। सब तरह की कठोरता है।

जैसे पश्चिम में तुम समुद्र के तट पर नग्न भी स्नान करो तो कोई चिंता नहीं है। कोई पुरुष तुम पर आकर एकदम हमला नहीं कर देगा। यहां हालत बिल्कुल उलटी है। यहां अगर तुम्हारी बांह भी उघड़ी है तो उसका मतलब यह है कि तुम कोई सच्चरित्र स्त्री नहीं हो, तुम पर हमला किया जा सकता है। साड़ी में छिपी होतीं तो सबूत होता कि कोई कुलीन घर की महिला है। यहां कपड़ों से आदमी तोले जाते हैं!

पश्चिम से जो लोग आएंगे उनके लिए स्वाभाविक अड़चन होने वाली है। वे अपने उसी व्यवहार को जारी रखेंगे जो उन्होंने बचपन से सीखा है। और उस व्यवहार में कहीं भी कोई भूल नहीं है। अच्छे लोग हों तो नदी-तट पर, समुद्र-तट पर नग्न नहाने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। आखिर नग्नता स्वाभाविक है। ठीक है दफ्तर में, दुकान में, बाजार में कपड़े पहनो, लेकिन कभी तो कोई स्थान तो हो जहां आदमी मुक्त विचरण कर सके। मगर यहां कोई मुक्त विचरण का उपाय नहीं है।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने डाक्टर के घर गया। डाक्टर ने नई-नई, पढ़ी-लिखी एक पाश्चात्य लड़की को अपने सहयोगी की तरह रखा था। मुल्ला घूर-घूर कर उस लड़की को देखता रहा। जब भीतर गया तो डाक्टर से उसने कहा कि तुमने इतनी सुंदर लड़की सहयोगी के लिए रखी है कि उसकी बांहें देख कर मेरा मन उसकी बांहें काट लेने का हुआ, कि काट खाऊं। डाक्टर ने कहा कि उसमें कुछ ज्यादा हर्जा नहीं था। मैंने तुमसे कहा है कि ज्यादा कैलरी का भोजन मत करना। उसमें केवल पैंतीस कैलरी होती है। कोई हर्जा नहीं। अगर काट भी लेते तो कोई हर्जा नहीं, सिर्फ पैंतीस कैलरी।

हंसो मत, क्योंकि यही तुम्हारी मनोदशा है। सुंदर स्त्री को देख कर तुम्हें परमात्मा की याद नहीं आती। काट खाओ, चबा लो--ऐसे सुंदर-सुंदर विचार उठते हैं! कुछ न हो, धक्का मार दो। और अभी कोई देख भी नहीं रहा है। और वैसे तो तुम खादी के वस्त्र पहने हो। कोई देख भी लेगा तो भी मानेगा नहीं कि खादीधारी, सर्वोदयी नेता और ऐसा कर सकता है। असंभव! मौका चूको मत। ... जहां मौका मिल जाता है वहां तुम्हारे भीतर की दबी हुई सारी वासनाएं प्रकट होने लगती हैं। बस अवसर की कमी है। तो रात के अंधेरे में अगर कोई स्त्री अकेले चलती मिल जाए तो बस मुश्किल है। भारतीय स्त्रियां तो चलती भी नहीं, उन्होंने तो जमाने हो गए तब से स्वतंत्रता खो दी है। उन्हें पता भी नहीं रहा, उन्हें याद भी नहीं कि रात जब चांद निकला हो दस-ग्यारह-बारह बजे रात जब चांद आकाश में हो, सारा नगर सो गया हो, तब वृक्षों के नीचे घूमने का एक मजा है। यह तो उन्हें याद ही नहीं रहा, यह तो बात ही खत्म हो गई। यह तो उनकी स्मृति में भी नहीं है। यह तो उनकी कल्पना में भी नहीं उठ सकता।

लेकिन पश्चिम से आई हुई स्त्रियों की कल्पना में उठता है। चांद निकला है, सुंदर मौसम है, दिन भर की गर्मी चली गई है, वृक्ष हवाओं से डोल रहे हैं, आधी रात है--इस सन्नाटे में घूमने जैसा है! मगर इस सन्नाटे में घूमने कोई स्त्री निकलेगी तोझंझट होने वाली है। चारों तरफ भूखे भेड़िए हैं। जिनको तुम भारतीय संस्कृति के संरक्षक कहते हो--भूखे भेड़िए हैं। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। झंझट होगी। भाव तो अच्छा था रात घूमने निकलने का।

ऐसा ही समाज होना चाहिए कि कोई आधी रात भी घूमे तो घूम सके। यह रात हमारी है, यह चांद हमारा है, ये तारे हमारे हैं। मगर भारतीय स्त्रियों ने तो सदियों पहले ही यह अधिकार छोड़ दिया है। वे तो पति के पीछे छाया की तरह चलती हैं। वे तो पति की दासी हैं, पति उनका रक्षक है। अकेले घूमने निकलने का तो सवाल ही नहीं उठता। पहले तो घूमने निकलने का सवाल ही नहीं उठता--और रात में! यह तो सवाल ही नहीं है। और अगर कभी स्त्री निकलेगी भी दिन की भर दुपहरी में तो भी पति को साथ लेकर निकलती है, भाई को साथ लेकर निकलती है।

यहां भाई को हर वर्ष रक्षाबंधन बांधा जाता है कि हे भैया, साल भर हमारी रक्षा करना! ... किससे रक्षा करना? भारतीय संस्कृति से रक्षा करना! ये चारों तरफ जो धूर्तों का जाल है, इससे रक्षा करना! अपमानजनक

है। कोई सम्मानपूर्ण स्त्री भाई को रक्षाबंधन नहीं बांधेगी क्योंकि रक्षा की आकांक्षा करना पुरुष से स्त्री की गरिमा को खोना है।

मेरे पास कभी कोई आ जाता है कि राखी बांधनी है आपको। किसलिए?

कि आप रक्षा करना।

रक्षा की बात ही क्यों उठती है? रक्षा किससे करनी है? मगर सदियों-सदियों से भारतीय स्त्री को यह सिखाया गया है।

तो तुम जब पश्चिम से यहां आते हो तो तुम्हें इन सारी धारणाओं का कुछ पता नहीं है कि यहां पुरुष रक्षक है। और जिसका पुरुष रक्षक नहीं है, दूसरे पुरुष उसके भक्षक हो जाते हैं। फिर ये सुंदर स्त्री, जिसको किसी ने डंडा मार दिया, अगर पुलिस में रिपोर्ट करने जाती है तो वह पुलिस का इंस्पेक्टर भी उसको घूर-घूर कर वैसे ही देखता है। क्योंकि वह भी उतना ही पीड़ित और परेशान है। उसकी भी सहानुभूति इस स्त्री के साथ नहीं होती! अगर वह सहानुभूति भी दिखाता है तो उसका इरादा यही होता है कि कुछ थोड़ी दोस्ती बन जाए, कुछ थोड़ा पहचान बन जाए, तो वह भी वही करे।

अभी-अभी एक युवा लड़की पर--युवा भी कहना मुश्किल है, अभी किशोर ही है, केवल पंद्रह वर्ष की उम्र है--उस पर पूना के एक बड़े पुलिस आफिसर ने बलात्कार करने की चेष्टा की। अब तुम जाओ कहां? मजिस्ट्रेट के पास जाओ तो उसकी नजर भी घूर कर देखती है। यहां एक ही तरह के लोगों का जाल है। तुम्हें थोड़ा सावधान होना होगा। तुम मेरे पास आए हो किसी सत्य की खोज में, तुम्हें यह कीमत चुकानी होगी। मैं जानता हूं यह व्यर्थ है, इसकी कोई जरूरत नहीं। यह कीमत तुम्हें मुझे नहीं चुकानी पड़ रही है। यह कीमत तुम्हें इसलिए चुकानी पड़ रही है कि इस देश की स्थिति ऐसी है।

बहुत बार मैं सोचता हूं कि यह देश छोड़ दूं। लेकिन तब दूसरी झंझटें होंगी। तब मेरा किसी दूसरे देश में टिकना एक क्षण के लिए भी आसान नहीं रह जाएगा, क्योंकि जो मैं कह रहा हूं उसे कोई भी समाज पी नहीं सकेगा, पचा नहीं सकेगा। इस देश से तो मुझे वे बाहर कर नहीं सकते। मगर दूसरे किसी देश से तो मुझे किसी भी क्षण बाहर किया जा सकता है। तुम्हारी तकलीफें देख कर मैं बहुत बार सोचता हूं कि छोड़ ही दूं यह देश। लेकिन कहीं तो होना होगा। और झंझटें होने ही वाली हैं। और तब झंझटें ज्यादा बढ़ जाएंगी। तुम्हारे लिए थोड़ी सुविधा होगी। लेकिन मेरा टिकना कहीं भी ज्यादा देर नहीं हो सकता। वहां से मुझे हटना होगा। और मेरे हटने के साथ तुम्हें बार-बार हटना होगा। फिर कहीं भी हम जो एक बुद्ध-क्षेत्र निर्मित करना चाहते हैं वह निर्मित नहीं हो सकेगा।

इसीलिए जल्दी मेरी फिकर है... छह महीने शायद ज्यादा और लग जाएंगे... जल्दी ही हम हट जाएंगे पहाड़ियों में जहां तुम उन्मुक्त मन से विचरण कर सको; जहां तुम्हें ध्यान करना हो वृक्षों के नीचे तो ध्यान कर सको; जहां कोई तुम पर हमला न करे; जहां कोई खूंखार की तरह तुम्हें देखे न। हमें अपनी एक छोटी सी अलग दुनिया ही बना लेनी है, तो ही तुम्हारी सुरक्षा हो सकती है। अब इस पूरे समाज को बदलने अगर हम बैठेंगे, यह तो सदियों का काम है, तो तुम पर मेरा जो काम चल रहा है वह बंद हो जाएगा। इसलिए मैं इस झंझट में पड़ना भी नहीं चाहता। इसमें कुछ अर्थ भी नहीं है। उन्हें सड़ने दो जिन्हें सड़ना है। उन्हें जीने दो जैसा उन्हें जीना है। जो लोग जीवन-रूपांतरण करने को राजी हैं वे मेरे पास आ जाएं। हम अपनी एक अलग दुनिया बना लेंगे। उसमें भी हजार बाधाएं डाली जा रही हैं; क्योंकि घबड़ाहट है; क्योंकि वह एक वैकल्पिक समाज होगा और एक विकल्प बनेगा। और सारी दुनिया से लोग वहां आकर देख सकेंगे कि समाज हो तो कैसा हो, कि लोग हों तो कैसे

हों, कि कोई नग्न भी बैठा रहे वृक्ष के नीचे तो किसी को कोई अड़चन नहीं है, कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं होने की पूरी स्वतंत्रता है। न कोई बाधा डालेगा, न कोई हस्तक्षेप करेगा, कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजता में जीने का स्वरूप-सिद्ध अधिकार है।

कृष्णप्रेम! थोड़ी देर और भारतीय संस्कृति को सह लो, थोड़ी देर और इन पाखंडियों के साथ गुजार लो--होशियारी से, समझदारी से। थोड़ी देर और ये डंडे, ये सांकलें, ये चोटें स्वीकार कर लो। थोड़ी देर और। और शायद यह सब भी तुम उपयोग कर सकते हो अपने आत्म-विकास में। यह सब भी! यह जो जंगलीपन है चारों तरफ, यह है, यह मनुष्य की वास्तविक दशा है। इसका अनुभव भी बुरा नहीं है। इस अनुभव से भी तुम बड़े नतीजे, बड़े निष्कर्ष ले सकते हो।

हम जिस क्रांति की बात कर रहे हैं अभी तो छोटे पैमाने पर होगी, थोड़े से लोगों की होगी; एक वैकल्पिक समाज होगा, उसमें होगी। लेकिन अगर यह क्रांति सफल होती है तो इसके बीज सारी दुनिया में पहुंच जाएंगे।

जिस गैरिक-क्रांति की मैं बात कर रहा हूं, उसके लिए पहले एक प्रयोग-स्थल बन जाना चाहिए। मैं थोथी बातें करने में भरोसा नहीं रखता, कि मैं क्रांति की जाकर बड़ी-बड़ी बातें सारे देश में करता रहूं, उसका मुझे कोई मूल्य नहीं मालूम होता। इस देश में तो क्रांति रोज ही होती है।

अभी-अभी दूसरी क्रांति हो गई! न पहली क्रांति से कुछ हुआ, न दूसरी क्रांति से कुछ हुआ। दूसरी क्रांति ने और इस देश के मुर्दों को सत्ता में बिठा दिया। जिनको कब्र में होना चाहिए था वे कुर्सियों पर हैं। यह देश और सड़े-गले हाथों में पड़ गया। ऐसी क्रांतियों से कुछ होने वाला नहीं है। मैं तो क्रांति का एक प्रयोग-स्थल बनाना चाहता हूं--एक रासायनिक प्रक्रिया, जिससे गुजर कर कुछ लोग सबूत बन जाएं, प्रमाण बन जाएं कि मनुष्य ऐसा होना चाहिए--ऐसा सुंदर, ऐसा काव्यपूर्ण, ऐसा प्रेमपूर्ण, ऐसा स्वतंत्र! स्वयं स्वतंत्र और दूसरों को स्वतंत्रता देने में समर्थ। जहां व्यक्ति का परम मूल्य होगा। वैसा छोटा सा समाज बन जाए तो फिर वहां से हम भेजने लगेंगे किरणें सारे जगत में। किरणें पहुंचनी शुरू हो जाएंगी।

लेकिन पहले एक प्रयोगशाला। उसी प्रयोगशाला की यह शुरुआत है। तुम्हारी कठिनाइयां मुझे पता हैं। तुम्हारी कठिनाइयां मेरे हृदय में कांटों की तरह चुभती हैं। तुम्हारी कठिनाइयां मेरी आंखों को गीला करती हैं। जानता हूं लेकिन कोई और उपाय नहीं है। थोड़े दिन और गुजार लो।

दूसरा प्रश्नः ओशो! भारत जैसे देश में, जहां विषमता और दरिद्रता की जड़ें गहरी हैं, क्या आपकी शिक्षाएं यथास्थिति को बनाए रखने में मददगार नहीं हैं? धर्म ने अतीत में सामंती अन्याय को कोई कारगर चुनौती नहीं दी। गरीबी, बेकारी, और भ्रष्टाचार को बनाए रखने वाले इस यंत्र के साथ आप क्या सलूक कर रहे हैं?

राजकिशोर! तंत्र के कारण गरीबी नहीं है, गरीबी के कारण यह तंत्र है। इस भ्रष्टाचार के तंत्र को मिटाया नहीं जा सकता जब तक गरीबी न मिट जाए। गरीबी सारी बीमारियों की जड़ है। लेकिन तुम्हें उलटी बातें समझाई जाती हैं; तुम्हें इन झूठे वायदों पर भरोसा दिलाया जाता है कि भ्रष्टाचार का तंत्र मिटाना है। भ्रष्टाचार का तंत्र मिट जाएगा तो गरीबी मिट जाएगी, यह बात मूढ़तापूर्ण है। भ्रष्टाचार का तंत्र मिट ही नहीं सकता गरीब देश में। गरीबी भ्रष्टाचार को जन्म देती है। तंत्र मौलिक नहीं है, गरीबी मौलिक है।

लेकिन इस देश में चर्चा होती है--भ्रष्टाचार मिटाओ, रिश्वतखोरी मिटाओ, बेईमानी मिटाओ! न बेईमानी मिटती है, न भ्रष्टाचार न मिटता है--बढ़ते जाते हैं रोज उलटे। और इन्हें मिटाने के लिए तुम जितने कानून बनाते

हो उतने ही कानून को ताड़ने की सुविधा होती जाती है। आखिर भ्रष्टाचार तुम मिटवाओगे किससे? जिनसे भ्रष्टाचार मिटवाओगे वे भी इसी गरीब देश के हिस्से है, वे भी उतने ही भ्रष्टाचारी हैं। जिन नेताओं को तुम पदों पर बिठा देते हो, वे उतने ही भ्रष्टाचारी हैं जितना कोई और। हां, फर्क इतना ही है कि उनके भ्रष्टाचार का पता तुम्हें तब तक न चलेगा जब तक वे पद पर हैं। पद से उतरेंगे तब तुम्हें उनके भ्रष्टाचार का पता चलेगा। जब तक पद पर हैं तब तक तो वे सब छिपा कर बैठे रहेंगे।

मैं नहीं कहता कि भ्रष्टाचार का तंत्र मिटाओ। मिटाया नहीं जा सकता। जयप्रकाश के चिंतन की भूल वहीं है। उस चिंतन की भूल का परिणाम यह हुआ--इतनी उथल-पुथल, हाथ कुछ भी न लगा। गरीबी मिटनी चाहिए। जहां गरीब हैं वहां भ्रष्टाचार रहेगा। भ्रष्टाचार मिट सकता है केवल, जहां लोग संपन्न हों। जहां संपन्न हों वहां एक गरिमा होती है। आदमी भ्रष्टाचारी मजबूरी में होता है।

अब पुलिसवाले को तनख्वाह कितनी मिलती है? और इससे तुम चाहते हो कि रिश्वत न ले? यह असंभव है। तुम असंभव की आकांक्षा कर रहे हो। इसे रिश्वत लेनी ही होगी अगर इसे जीना है। और यह रिश्वत लेगा तो तुम और एक दूसरी गुप्त पुलिस बिठाओ, जो भ्रष्टाचार-विरोधी होगी। मगर उनकी भी तनख्वाह, उनकी भी गरीबी... । उनको भी बच्चों को स्कूल में पढ़ाना है, कालेज भेजना है, युनिवर्सिटी भेजना है। उनके पास भी पैसे नहीं हैं, वे भी रिश्वत खाएंगे।

रवींद्रनाथ ने बड़ी मीठी कथा लिखी है अपने परिवार की। बड़ा परिवार था उनका, सौ लोग परिवार में थे। बहुत दूध खरीदा जाता था। तो दूध में पानी मिल कर आ जाता था। तो रवींद्रनाथ ने कहा कि एक इंस्पेक्टर रख दिया जाए, जो जांच-पड़ताल करे। पिता हंसे और उन्होंने कहाः ठीक है, इंस्पेक्टर रख दो। एक इंस्पेक्टर रख दिया गया, जिसका काम ही यह था कि दूध की जांच-पड़ताल करे कि पानी न मिलाया जा सके। उस दिन से दूध में पानी और थोड़ा ज्यादा आने लगा। रवींद्रनाथ तो बहुत हैरान हुए। मगर गणित तो ऐसे चलता है। रवींद्रनाथ ने कहाः तो एक और इंस्पेक्टर रखो इंस्पेक्टर के ऊपर, कि जोउसकी नजर रखे कि यह कोई बेईमानी न कर सके। उस दिन तो गजब हो गया, पानी तो आया ही आया, एक मछली भी दूध में आ गई! क्योंकि हर इंस्पेक्टर का हिस्सा जुड़ता गया।

बाप ने कहाः तू पागल है! विदा कर इन इंस्पेक्टरों को। यह और एक मुफ्त का खर्चा सिर पर बंधा। दो इंस्पेक्टरों को तनख्वाह दो और इन दोनों के हिस्से बंध गए। जैसा चल रहा था ठीक था। इतना पानी नहीं था, कम से कम मछलियां तो नहीं आती थीं।

ऐसी इस देश की दशा है। यहां तुम भ्रष्टाचार किससे रुकवाओगे? यह तंत्र कौन बदलेगा? जो बदलेगा उसको ही इस तंत्र का हिस्सा होना पड़ेगा। इस तंत्र में जीना है तो इस तंत्र के बाहर खड़ा नहीं हो सकता वह। जिन राजनेताओं से तुम आशा करते हो कि वे इस तंत्र को बदलेंगे, वे कैसे बदलेंगे? उनको चुनाव लड़ने के लिए पैसे चाहिए। पैसे कोई ऐसे नहीं देता।

जयप्रकाश नारायण जिंदगी भर बिड़ला से रुपये लेते रहे हैं, आमूल क्रांति होगी कैसे? बिड़ला के पास इस देश के सारे क्रांतिकारियों को तनख्वाह देने का उपाय है। बिड़ला के पास लिस्ट है कि किन-किन को तनख्वाह देनी... । इन सबको तनख्वाह मिलती है! इन सबके मासिक बंधे हुए हैं! जयप्रकाश नारायण की सबसे बड़ी नाराजगी का कारण इंदिरा से यही था कि इंदिरा ने जयप्रकाश से यह पूछा कि आप यह तो बताइए कि आपका खर्च कैसे चलता है? यह तुम जान कर हैरान होओगे कि ये बड़ी उपद्रव की जो बातें हैं, बड़े-बड़े सिद्धांतों से शुरू नहीं होती हैं, बड़ी छोटी-छोटी बातों से शुरू होती हैं। आदमी छोटा है! इंदिरा का यह पूछना कि आपका खर्च

कैसे चलता है, यह बताइए--यह था असली उपद्रव का कारण, जिससे जयप्रकाश भन्ना उठे; जिससे उनके अहंकार को बड़ी चोट लगी और उन्होंने तय कर लिया कि इंदिरा को उखाड़ कर रहेंगे। इंदिरा का पूछना ठीक था, क्योंकि इंदिरा के पास फेहरिस्त है कि जयप्रकाश को वर्षों से बिड़ला से पैसा मिलता है। और बिड़ला से पैसा क्यों मिलता है? गांधी जी की सिफारिश से मिलता है! गांधी जी ने पत्र दिया था कि जयप्रकाश को पैसा हर महीने मिलना चाहिए।

कैसे क्रांति होगी? जिसको चुनाव लड़ना है उसको लाखों रुपये चाहिए। जिनसे लाखों रुपये लेगा उनके खिलाफ कैसे काम करेगा? और नहीं लाखों रुपये लेगा तो चुनाव नहीं लड़ सकता।

तंत्र बदलेगा कौन, राजकिशोर?

नहीं; मेरी चिंतना और है। मैं तंत्र इत्यादि को बदलने में बहुत समय खराब नहीं करता, न सोचता उस बाबत। यह तो तंत्र स्वाभाविक परिणाम है इस देश की दरिद्रता का। दरिद्रता बदली जा सकती है, क्योंकि दरिद्रता को बदलने के लिए अब विज्ञान ने उपाय जुटा दिए हैं। अब अगर हम दरिद्र हैं तो अपनी मूढ़ता के कारण, अन्यथा और कोई कारण नहीं है। और हमें शक्ति नहीं लगानी चाहिए भ्रष्टाचार को बदलने में। भ्रष्टाचार को तो हमें स्वीकार कर लेना चाहिए; व्यर्थ की झंझट उससे क्यों करनी; वह तो होगा ही। इस स्थिति में इससे अन्यथा नहीं हो सकता। बन सके तो हमें भ्रष्टाचार को, रिश्वतखोरी को, सबको नैतिक मान्यता दे देनी चाहिए; कानूनी स्वीकृति दे देनी चाहिए, ताकि यह फिजूल की बकवास बंद हो। इसे हम लोगों की तनख्वाह ही मान लें। इसको क्यों उपद्रव बनाना?

सारी ताकत लगानी चाहिए देश के औद्योगीकरण में। सारी ताकत लगानी चाहिए देश के भीतर नये-नये उपकरण पैदा करने में। और अब उपकरण उपलब्ध हैं दुनिया में। इस देश की गरीबी मिट सकती है, कोई कारण नहीं है गरीबी के रहने का। लेकिन हम फिजूल की बकवास में लगे रहते हैं। हम चरखे की चिंता कर रहे हैं। चरखे से कहीं गरीबी मिटी है? गरीबी मिटानी हो तो उद्योग की चिंता करो। मगर उद्योगों पर हम उपद्रव खड़े किए रखते हैं। जिन कारणों से गरीबी मिट सकती है उनको तो हर तरह की बाधाएं हैं और जिन कारणों से गरीबी बढ़ेगी उनको हर तरह की सुविधाएं दी जाती हैं।

खादी के लिए सरकार न मालूम कितना करा.ेडों का खर्च करती है कि खादी चले! खादी को चलाने की जरूरत क्या है? खादी में क्यों प्राण अटके हुए हैं? जब कि मिल के वस्त्र ज्यादा टिकाऊ, ज्यादा सस्ते, ज्यादा सुंदर, ज्यादा उपयोगी, तो क्यों खादी के पीछे मरे जाते हो?

मगर हमारा देश अजीब है, इसके सोचने के ढंग अजीब हैं! हम पकड़ लेते हैं किसी चीज को। फिर छोड़ना नहीं आता हमें। और भी दुनिया में देश हैं, और भी दुनिया में नेता होते हैं, लेकिन कोई इस तरह नहीं करता। अब गांधी को गए तीस साल हो गए, मगर चल रही है पूजा--चलेगी। विदा देना भी आना चाहिए, अलविदा देना भी आना चाहिए। अब बेचारों को उनको भी जाने दो और तुम भी किसी दूसरे काम में लगो। मगर नहीं, चूंकि गांधी ने खादी की बात की थी इसलिए खादी हमारा नैतिक कर्तव्य हो गई, हमारा धर्म हो गई।

नये-नये यंत्र... इस देश के पास प्रतिभा है लेकिन हम प्रतिभा को तो अड़चन डालते हैं। इस देश को हमेशा चिंता होती है, बहुत चर्चा चलती है इस बात की कि दुनिया कि दूसरे देश हमारी प्रतिभाओं कोशोषित कर लेते हैं। अगर कोई अच्छा इंजीनियर होता है, अच्छा वैज्ञानिक होता है, स्वभावतः अमरीका चला जाता है। कोई अच्छा डाक्टर होगा, अच्छा सर्जन होगा, स्वभावतः अमरीका चला जाएगा। तनख्वाह अच्छी है, जीवन का स्तर अच्छा है, सुविधा है; सोचने, विचारने, खोजने के उपाय हैं। क्यों रहे यहां? मगर इससे हमें बड़ा

नुकसान होता है। प्रतिभा हमारी, पढ़ा-लिखा कर हम तैयार करते हैं बामुश्किल और फिर चला जाता है पश्चिम। इस पर बड़ा विचार चलता है कि कैसे प्रतिभा को रोकें! मगर तुम कैसे रोकोगे?

इधर मेरे आश्रम में प्रतिभा पश्चिम से आ रही है तो आने नहीं देते। वैज्ञानिक, इंजीनियर, डाक्टर, चिकित्सक, प्रोफेसर यहां आकर रहना चाहते हैं, लेकिन मोरारजी देसाई उन्हें प्रवेश नहीं करने देना चाहते। सारे राजदूतावासों को भारत के बाहर सूचना दी गई है कि जो व्यक्ति भी मेरे आश्रम आना चाहता हो, उसे तो प्रवेश ही मत देना। और तुम भारतीय कुशलता तो जानते ही हो... मूढ़ता ऐसी है कि इस तरह के पत्र भी लिख देते हैं भारतीय राजदूतावास के लोग।

एक प्रसिद्ध डेंटिस्ट डाक्टर भारत आकर यहां रहना चाहता था। उसने पत्र लिखा, तो अमरीकन भारतीय राजदूतावास से उसको उत्तर मिला कि अगर आप श्री रजनीश आश्रम पूना जाना चाहते हैं तो स्वीकृति नहीं मिल सकती। यह लिख ही दिया उसमें। भारतीय कुशलता के भी क्या कहने! यह तो कम से कम छिपा कर रखते। अगर किसी और आश्रम जाना हो तो स्वीकृति मिल सकती है। मगर और किसी आश्रम उन्हें जाना नहीं है।

मैं सारी दुनिया की प्रतिभा को यहां इकट्ठा कर सकता हूं। यहां दुनिया से वे सारे लोग इकट्ठे हो सकते हैं, इस देश का कायाकल्प कर दें। मगर प्रवेश नहीं दोगे, उन्हें टिकने नहीं दोगे। एक तरफ रोओगे कि हमारी प्रतिभा जा रही है और यहां हम प्रतिभा को बुलाने का निमंत्रण भेज रहे हैं और प्रतिभा आना चाहती है, तो आने नहीं दोगे। ऐसा अभागा देश है!

राजकुमार! तंत्र को नहीं बदला जा सकता भ्रष्टाचार के, लेकिन दरिद्रता बदली जा सकती है। और दरिद्रता बदल जाए तो भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा। दरिद्रता बदल जाए तो रिश्वत अपने आप खो जाएगी। तुम किसी समृद्ध देश में किसी व्यक्ति को रिश्वत दो, एक चांटा मारेगा तुम्हारे चेहरे पर। तुम अपमान कर रहे हो... यह रिश्वत। उसके पास काफी है, तुम क्या उसे दे रहे हो! जिसके पास नहीं है कुछ वही खुशी से लेता है और तुम्हें धन्यवाद देता है।

तुम पूछते होः "भारत जैसे देश में, जहां विषमता और दरिद्रता की जड़ें गहरी हैं।"

क्यों गहरी हैं? तुमने आज तक दरिद्रता का सम्मान किया है। जिसका सम्मान करोगे उसकी जड़ें गहरी हो जाएंगी। तुमने सदियों-सदियों से दरिद्रता को आदर दिया है। आदर दोगे जिसको, वह बढ़ेगा। और महात्मा गांधी ने आखिरी सील लगा दी--दरिद्रनारायण कह दिया दरिद्र को! दरिद्रता बीमारी है, रोग है, कैंसर है। दरिद्रनारायण मत कहो दरिद्र को! दरिद्र को विदा करना है, दरिद्र से छुटकारा लेना है। अगर दरिद्र दरिद्रनारायण है तो छुटकारा कैसे लोगे? वह तो फिर "नारायण" से छुटकारा लेना हो जाएगा। दरिद्र को मिटाना तो फिर "नारायण" को मिटाना हो जाएगा।

दरिद्र नारायण नहीं हैं। दरिद्रता सिर्फ रोग है, बीमारी है, अस्वास्थ्य है। ठीक-ठीक मूल्यांकन करो। और तुमने सदियों से इस बात की बड़ी चर्चा की है। बुद्ध ने धन छोड़ दिया, महावीर ने घर छोड़ दिया! बड़ा सम्मान, बड़ा आदर! मैं महावीर का आदर इसलिए नहीं करता कि उन्होंने घर छोड़ दिया; मैं उनका आदर इसलिए करता हूं कि उन्होंने आत्मा को पा लिया। छोड़ने के कारण मेरे मन में कोई आदर नहीं है, पाने के कारण आदर है। मैं बुद्ध का सम्मान इसलिए नहीं करता हूं कि उन्होंने राज्य छोड़ दिया; बुद्ध का सम्मान मैं इसलिए करता हूं कि उन्होंने भीतर का राज्य पा लिया। मेरे सम्मान भी भिन्न हैं। मैं बुद्ध की चर्चा करता हूं, महावीर की भी चर्चा करता हूं, लेकिन मेरे कारण उन्हें आदर देने के बड़े भिन्न हैं। तुमने उन्हें गलत कारणों से आदर दिया है।

और तुमने फकीरी को, गरीबी को सदियों तक सिर पर उठाया है; हो गए तुम गरीब, स्वाभाविक था। पश्चिम भी गरीब था, इन तीन सौ वर्षों में पश्चिम ने गरीबी मिटा डाली। ये तीन सौ वर्षों में पश्चिम ईसाइयत की जो गरीबी की धारणा है उससे छुटकारा पा लिया।

तुम्हें अपने धर्म की जो धारणाएं हैं उनसे छुटकारा पाना होगा। तुम्हें धर्म की नई धारणा को अपने भीतर जड़ें देनी होंगी। मैं उसी नये धर्म की बात कर रहा हूं। मैं एक ऐसे धर्म की बात कर रहा हूं जो संपन्नता का विरोधी नहीं है, जो समृद्धि का विरोधी नहीं है। मैं एक ऐसे धर्म की बात कर रहा हूं जो इस पृथ्वी का सम्मान करता है, इस पृथ्वी को प्रेम करता है; जो इस पृथ्वी का आलिंगन करता है। इस पृथ्वी में हमारी जड़ें जमनी चाहिए, तो आकाश में हमारी शाखाएं उठ सकती हैं। जो वृक्ष पृथ्वी के विपरीत हो वह आकाश में अपनी शाखाओं को न फैला सकेगा। हमने वही भूल कर ली है।

तुम दरिद्र हो क्योंकि तुम्हारे मन में कहीं दरिद्रता का आदर है। इस आदर को खंडित करो, इस आदर को जाने दो। इसकी जगह संपन्न को, संपन्नता को, समृद्धि को, ऐश्वर्य को आदर दो; वही "ईश्वर" शब्द का अर्थ है।

पूछते हो तुमः "भारत जैसे देश में जहां विषमता और दरिद्रता की जड़ें गहरी हैं, क्या आपकी शिक्षाएं यथास्थिति को बनाए रखने में मददगार नहीं हैं?"

जरा भी नहीं! महात्मा गांधी मददगार हैं यथास्थिति को बनाए रखने में। जयप्रकाश नारायण मददगार हैं यथास्थिति को बनाए रखने में। विनोबा भावे मददगार हैं यथास्थिति को बनाए रखने में। और तुम्हारे सारे शंकराचार्य और तुम्हारे शाही ईमाम, सब मददगार हैं यथास्थिति को बनाए रखने में। मैं तो जो बात कह रहा हूं वह मौलिक रूप से इन सबके विपरीत है।

हालांकि एक बात सच है कि मैं कोई क्रांतिवादी नहीं हूं, क्योंकि क्रांति की बात ही मुझे असफलता की बात मालूम होती है। अब तक कोई क्रांति सफल नहीं हो सकी--न रूस में, न चीन में, न फ्रांस में, न कहीं और, न कहीं और सफल होगी। क्रांति सफल हो ही नहीं सकती। मनुष्य का तीन हजार साल का इतिहास कहता है कि सब क्रांतियां असफल हो गईं। क्रांति की असफलता को समझो, क्योंकि क्रांति की मौलिक प्रक्रिया क्या है? मौलिक प्रक्रिया है--तुम्हें लड़ना होता है--जिनसे तुम लड़ते हो तुम्हें उनके ही लड़ने के ढंग सीखने होते हैं; नहीं तो उनसे लड़ोगे कैसे? लड़ते-लड़ते तुम उन्हीं जैसे हो जाते हो। जब तक तुम सत्ता में आते हो तब तक तुममें और तुमने जिनको सत्ता से हटाया, रत्ती भर भेद नहीं रह जाता। और अगर कुछ भेद होता भी होगा तो यही कि तुम उनसे भी बदतर होते हो, इसीलिए तुम जीत पाते हो, नहीं तो तुम जीत नहीं सकते।

अगर रूस में कम्युनिस्ट पार्टी--स्टैलिन, लेनिन और ट्राटस्की की पार्टी अगर .जार से जीत सकी तो इसीलिए कि उन्होंने .जार से भी ज्यादा बदतर, हिंसात्मक प्रवत्तियां दिखलाईं। और फिर पूरा इतिहास प्रमाण है--स्टैलिन ने जहर देकर लेनिन को मारा, हथौड़े की चोट से ट्राटस्की को मरवाया। फिर जितने भी क्रांतिकारी थे, जो भी क्रांति में अग्रणी थे, एक-एक करके मारे गए, या जेलों में सड़े, या साइबेरिया में गले। स्टैलिन जितना बड़ा .जार साबित हुआ दुनिया में, कोई .जार इतना बड़ा .जार साबित नहीं हुआ था। स्टैलिन ने जितनी हिंसा की उतनी ईवान टैरीबल ने भी नहीं की थी। सब सिकंदर, सब नेपोलियन छोटे पड़ गए। यह हुआ कैसे? स्टैलिन इन्हीं से तो लड़ कर, इन्हीं .जारों से लड़ कर सत्ता में पहुंचा। जिनसे तुम लड़ोगे तुम उन्हीं जैसे हो जाते हो।

तुमने यहां भारत में नहीं देखा? भारत में एक क्रांति हुई। भारतीय लोग अंग्रेजों से लड़ कर सत्ता में बैठे। बस ठीक अंग्रेजों जैसे साबित हुए; उनसे बदतर; हर स्थिति में उनसे बदतर साबित हुए! फिर अभी इंदिरा को

हटा कर मोरारजी सत्ता में बैठे; हर स्थिति में इंदिरा से बदतर साबित हो रहे हैं। जिससे तुम लड़ोगे, तुम उससे जीत ही तब सकते हो जब तुम और भी ज्यादा बेईमान, और भी ज्यादा चालबाज, और भी ज्यादा कूटनीतिज्ञ, और भी ज्यादा उपद्रवी... तो ही जीत सकते हो, अन्यथा जीत नहीं सकते।

मैं क्रांति का पक्षधर नहीं हूं। मेरा सूत्र विद्रोह है, क्रांति नहीं। और फर्क दोनों में मैं क्या करता हूं, वह समझ लेना चाहिए। क्रांति होती है संगठित, सामूहिक। उसके लिए पार्टी बनानी होती है, उसके लिए राजनीति में उतरना होता है। विद्रोह होता है वैयक्तिक, निजी; एक-एक व्यक्ति कर सकता है। मैं विद्रोही हूं और मेरे संन्यासी विद्रोही हैं, क्रांतिकारी नहीं हैं। विद्रोह क्रांति से बहुत ऊपर की बात है।

विद्रोह का अर्थ होता हैः मैं अपने को अलग करता हूं; इस सड़े-गले जाल से मैं अपने अंतर्संबंध तोड़ता हूं; मैं इस तंत्र से अपने को भिन्न करता हूं।

समाज के सड़े-गले जाल से अपने को भिन्न कर लेने का नाम ही संन्यास है। इसका भी यह अर्थ नहीं कि तुम जंगल भाग जाओ, क्योंकि जंगल भागने से कुछ भी नहीं होता। जहां हो वहीं रहो, लेकिन अंतर्तम से इससे पृथक हो जाओ, इसको तुम सहारा मत दो। और तुम एक इस ढंग से जीओ जीवन कि तुम्हारा जीवन और लोगों को भी संक्रामक होने लगे। बहुत लोग वैयक्तिक रूप से जब विद्रोह को उपलब्ध हो जाएंगे तो स्वभावतः यह सड़ी-गली व्यवस्था अपने आप गिर जाएगी। मगर इस व्यवस्था से सहयोग छोड़ लेना है। इस व्यवस्था को लड़ कर नहीं गिराना है, इस व्यवस्था से अपने तार अलग कर लेने हैं। इस व्यवस्था से और इस व्यवस्था की मूल मान्यताओं से अपने को मुक्त कर लेना है।

और व्यवस्था उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी इसकी मूल मान्यताएं बड़ी हैं। इसकी मूल मान्यताएं क्या हैं? एक तो हैः राजनीति का बड़ा समादर। मैं अपने संन्यासी को सिखाता हूं की राजनीति दो कौड़ी की है। समादर की तो बात ही नहीं, अपमानजनक है। राजनीति में जो है वह गुंडा है, उसने चाहे कितने ही खादी के वस्त्र पहने हों। राजनीति गुंडों के लिए है, या तो वे राजनीति में होंगे या फिर गुंडागर्दी में होंगे। उनके लिए दो ही विकल्प है।

मैं राजनीति का असम्मान सिखाता हूं। राजनीति हीन लोगों के लिए है, हीनता की ग्रंथि से पीड़ित लोगों के लिए है। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं कि तेरे चित्त से राजनीति के सारे बीज उखाड़ कर फेंक दे। राजनीति महत्वाकांक्षा है, मैं महत्वाकांक्षा-विरोधी हूं। राजनीति स्पर्धा है, मैं स्पर्धा-विरोधी हूं। राजनीति दूसरे के ऊपर शासन है, मैं आत्मानुशासन का पक्षपाती हूं। मैं राजनीति की मूल जड़ें काट रहा हूं। क्रांतिकारी पत्ते काटता है, विद्रोही जड़ें काटता है। पत्ते काटने वाला दिखाई पड़ता है; जड़ें काटने वाला दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि जड़ें ही तुम्हें दिखाई नहीं पड़तीं।

मेरा जो काम है उसके परिणाम वर्षों में प्रकट होंगे, सदियां भी लग सकती हैं। मगर मेरा मौलिक स्वर विद्रोह का है, क्रांति का नहीं है। इसलिए ऊपर से तुम्हें ऐसा लग सकता है कि मैं यथास्थिति को बनाए रखने में मददगार हूं; क्योंकि मैं कोई झंडा लेकर, डंडा लेकर, न तो कोई घिराव कर रहा हूं, न कोई हड़ताल कर रहा हूं, न कोई जुलूस निकाल रहा हूं। तुम्हें लग सकता है कि मैं तो बिल्कुल यथास्थिति को स्वीकार कर रहा हूं।

नहीं; यहां कुछ गहरा काम चल रहा है। यहां मैं वे मूल आधार गिरा रहा हूं जिन पर सारी राजनीति खड़ी है, जिन पर सारा आज का व्यवस्था-सूत्र खड़ा है। मैं ध्यान सिखा रहा हूं। क्योंकि राजनीति मन की विक्षिप्तता का अंग है। शोषण रुग्ण लोगों की आकांक्षा है। ध्यानस्थ अपने आप इतना शांत हो जाता है कि नहीं

किसी के जीवन में बाधा डालता। ध्यानस्थ अपने आप सृजनात्मक हो जाता है, विध्वंसक नहीं रह जाता। ध्यानस्थ अपने आप प्रेम से लबालब हो जाता है, प्रेम से भरपूर हो जाता है, प्रेम बांटता है, प्रेम ही जीता है।

यह बात आज राजकुमार, समझ में शायद नहीं आएगी, समय लगेगा। और धर्म की पुरानी धारणाओं ने--तुम ठीक कहते हो--सामंती अन्याय को कोई चुनौती नहीं दी थी। इसलिए मैं धर्म की भी एक नई अवधारणा कर रहा हूं। मैं बुद्ध पर भी बोलता हूं, महावीर पर, कृष्ण पर भी, क्राइस्ट पर भी, लाओत्सु पर भी, कबीर पर भी; लेकिन अगर तुम गौर करोगे तो तुम पाओगे--मैं उन्हें नई व्याख्या दे रहा हूं, नये मूल्य दे रहा हूं, नये अर्थ दे रहा हूं।

कबीर-पंथी मुझसे राजी नहीं हैं। कबीर-पंथियों के पत्र मेरे पास आते हैं कि यह आपने क्या किया? कबीर का ऐसा अर्थ नहीं है जैसा आप कर रहे हैं।

मुझे जैनों के पत्र आते हैं कि आपने महावीर का यह कैसा अर्थ किया? यह अर्थ शास्त्रों में नहीं है। मैं कहता हूंः भाड़ में डालो तुम्हारे शास्त्र। महावीर तो खूंटी हैं मेरे लिए, टांगूंगा तो मैं अपने को। कबीर तो बस मेरे लिए बहाना हैं; बोलूंगा तो मैं वही जो मुझे बोलना है।

फिर तुम पूछ सकते हो--फिर मैं कबीर पर क्यों बोलता, महावीर पर क्यों बोलता? ये हीरे हैं कीचड़ में पड़े; कीचड़ धोऊंगा, हीरे बचाऊंगा। ये हीरे बचाने योग्य हैं। कीचड़ के साथ हीरे नहीं फेंक सकता और हीरों के साथ कीचड़ नहीं बचा सकता। दुनिया में ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि यह सब कीचड़ ही कीचड़ हैं, फेंको। नीत्शे और कार्ल मार्क्स और ज्यांपाल सार्त्र कहते हैंः यह सब कीचड़ ही कीचड़ है। इनसे मैं राजी नहीं हूं, इनमें हीरे भी हैं। और दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि यह सब हीरा ही हीरा है, इसमें कीचड़ कहां है! मैं दोनों से राजी नहीं हूं। मैं कीचड़ को काटूंगा, हीरों को बचाऊंगा। अतीत पर बोलता हूं, ताकि अतीत में जो भी सुंदर है वह बचाया जा सके। वह हमारी धरोहर है। लेकिन यह बात सच है कि अतीत में धर्म की धारणाओं ने सामंती शासन को, सामंती शोषण को, सामंती अर्थव्यवस्था को कोई चुनौती नहीं दी। धर्म पलायनवादी था। धर्म भगोड़ा था। मेरा धर्म भगोड़ा नहीं है, पलायनवादी नहीं है। यह चुनौती दे रहा है। नहीं तो तुम सोचते हो, अगर मैं भी सिर्फ धर्म की बात करता, उसमें कोई चुनौती न होती, तो मेरे विरोध में इस देश में इतने अफवाहें चलतीं, इतना विरोध का वातावरण बनता? नहीं; जैसे लोग विनोबा के आश्रम पहुंचते हैं--प्रधानमंत्री और मंत्री--ऐसे यहां भी आते हैं। यहां आने में छाती कंपती है! इस दरवाजे के भीतर घुसने की हिम्मत करना मुश्किल है। डर लगता है, मुझसे संबंधित होने में डर लगता है। लोग जान लें कि यहां कोई आया तो पता नहीं उसका उनकी राजनीति पर क्या असर पड़े!

अगर मैं यथास्थिति का सहयोगी होता तो मेरे काम में अड़चन ही न होती, कोई अड़चन न होती। मैं यथास्थिति का सबसे बड़ा दुश्मन हूं। न लेनिन इतना बड़ा दुश्मन था, न माओ। क्योंकि उन्होंने बदली व्यवस्था, लेकिन कहां, बदली कहां जा सकी? फिर वही लौट कर आ जाती है। मैं व्यवस्था बदलने में उत्सुक नहीं हूं। मैं व्यवस्था का मूल आधार बदल देना चाहता हूं। समय लगेगा, समझ की जरूरत होगी। यह क्रांति तो नारों से पूरी होने वाली नहीं है; यह क्रांति ध्यानस्थ लोगों से होगी। शोरगुल से नहीं, शांति से इसका जन्म होगा। उपद्रव से नहीं, संगीत से इसका स्वर उठेगा। यह एक मौलिक ही धारणा है और इसलिए एकदम से पहचानी भी नहीं जा सकेगी; इसे पहचानने में भी समय लगेगा, सदियां लग सकती हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो! "है कोई लेवनहारा," आपने बार-बार पुकारा। वह पुकार मेरे दिल में तीर की तरह चुभ गई, पर अब भी कुछ रुकावट महसूस होती है। वह क्या है, आप ही बता सकते हैं। आपको सुनते-सुनते बार-बार आंसू बहते हैं, वह क्या है? कल दर्शन में आपके स्पर्शमात्र से फिर आंसू फूट पड़े, क्यों?

अक्षय विवेक! आंसू से सुंदर इस जगत में और कुछ भी नहीं। काश आंसू आनंद से आए हों, काश आंसू उत्सव से जन्मे हों!

और तुम्हारे आंसू उत्सव के आंसू हैं। कल जब तुम्हारी आंखों में आंसू देखे तो मैं आह्लादित हुआ था। यह प्रारंभ है पिघलने का। अक्षय विवेक मजबूत आदमी हैं। लोह-पुरुष जैसे व्यक्ति हैं। इसलिए चिंता भी होती होगी कि यह मुझे क्या हो रहा है; कभी रोया नहीं और आज अचानक आंखों में आंसू भर-भर आते हैं! बात सुन कर, स्पर्शमात्र से! यह मुझे हो क्या रहा है!

यह शुभ हो रहा है--यह वसंत का आगमन है। ये पहले फूल खिलने लगे। ये आंसू तुम्हारे जीवन के पहले फूल हैं। इन आंसुओं से तुम नहा जाओगे, तुम नये हो जाओगे, तुम्हारा पुनरुज्जीवन होगा। इन आंसुओं का सत्कार करो। और जब ये आएं तो रोकना मत। जब ये आएं तो संकोच मत करना।

लोकलाज छोड़ो! दिल खोकर, दिल डुबा कर, दिल भर कर आंसुओं में बहो! इन्हीं आंसुओं के पीछे और भी बहुत कुछ छिपा चला आएगा। ये आंसू तो पहली बाढ़ हैं। इसके पीछे बहुत कुछ आने को है। इसलिए आंसुओं को रोकना मत।

आंसुओं के पीछे ही हंसी भी आएगी, मुस्कुराहट भी आएगी। आंसुओं के पीछे ही नृत्य भी आएगा, गीत भी आएंगे।

आंसू तो केवल सुबह की पहली किरण हैं। तुम कहते होः आप पुकारते हैं "है कोई लेवनहारा", तो पुकार मेरे दिल में तीर की तरह चुभ जाती है, मगर फिर भी कहीं कुछ रुकावट महसूस होती है।

स्वाभाविक है। अहंकार जाते-जाते ही जाता है। समय लगता है। चोट होने लगी, चट्टान टूटने लगी। काम शुरू हो गया है, अब देर-अबेर की बात है। सब तुम पर निर्भर है। अगर सहयोग करोगे तो जल्दी हो जाएगी क्रांति। अगर सहयोग न करोगे, अगर संघर्ष करोगे, प्रतिरोध करोगे, तो देर लग जाएगी।

प्रतिरोध छोड़ो! समर्पित भाव से, वह जो तीर चुभ रहा है, उसे अतिथि की तरह अपने हृदय में विराजमान करो। पीड़ा होगी तीर के चुभने से, लेकिन पीड़ा के माधुर्य को पहचानो। यह पीड़ा सिर्फ पीड़ा नहीं है; इसमें छिपी एक मिठास भी है। इस तीर के पूरे चुभने से मृत्यु होगी। अक्षय विवेक, तुम तो मरोगे! लेकिन तुम्हारी मृत्यु ही तुम्हारे भीतर एक नये जीवन का प्रारंभ है।

मृत्यु कहीं होती ही नहीं। मृत्यु तो सिर्फ रूपांतरण है। तुम एक नये सोपान पर आरोहण करोगे। अमृत का दर्शन होगा।

अहंकार डरता है, घबड़ाता है। कुछ और घबड़ाहट नहीं है--घबड़ाहट मरने की, कि क्या हो रहा है! यह मुझे क्या हो रहा है! संतुलित व्यक्ति था, नियंत्रित व्यक्ति था, अपने पर शासन था, अपना मालिक था--यह आज क्या होने लगा! क्या स्त्रियों जैसा रोने लगा! क्या बच्चों जैसा रोने लगा! मिट तो न जाऊंगा? मेरा पुराना तादात्म्य टूट तो न जाएगा?

टूटेगा! टूटना ही चाहिए। टूटने में सहयोग करो।

लोचनों के बंद पिंजर से गया उड़ कीर सुधि का।
श्वास ने सहला अनेकों
बार उसके घाव धोए,
सजल रोमों में छिपा
संकल्प स्वप्नों ने संजोए;
मृदुल पलकों के तिमिर में खो गया है नीड़ सुधि का।

प्रणय के संगीत अधरों
ने सुना उसको बुलाया,
पलक-पुलिनों पर बिठा
सौगात अक्षय दे रिझाया;
तड़ित-आहों में अखंडित खो गया है नीर सुधि का।

अब नहीं कुछ शेष प्राणों
में व्यथा को छोड़ केवल,
सघन विस्मृति का उमड़ता
हृदय में आकाश पागल;
रह गया है शेष अब तो स्वप्न यह बेपीर सुधि का!

यह तीर याद दिलाएगा तुम्हें अपने स्वरूप की। यह तीर सुधि बनेगा, मगर सुधि पीड़ादायी है। सदियों-सदियों से भूले बैठे हो, याद ही नहीं रही कि कौन हूं मैं! यह तीर स्मरण दिलाएगा तुम्हारे परमात्म-स्वरूप का।

निश्चित ही तुम्हारे निहित स्वार्थों के विपरीत होगी यह बात। तुम्हारे छोटे-छोटे निहित स्वार्थ हैं। वे सब तुम्हारे अहंकार के इर्द-गिर्द खड़े किए गए हैं। अहंकार गिरेगा तो वे भी गिर जाएंगे। इसलिए डर भी लगेगा, सोच भी उठेगा कि यह मैं किस राह पर चल पड़ा! मगर अब लौटना हो भी नहीं सकता है, अक्षय विवेक! कल तुम्हारी आंखों में देख कर यह पक्का मुझे भरोसा आ गया है कि अब लौटने का उपाय नहीं। लौटने की जगह तो समाप्त हो गई।

अतीत में तुमने लौटना बहुत बार चाहा भी है, लौट-लौट भी गए हो। बहुत बार करीब आते-आते छिटक गए हो। भय जीत गया, प्रेम हार गया। अब यह नहीं हो सकता। अब प्रेम जीतेगा, अब भय हारेगा।

सिर्फ मुश्किल ही नहीं,
ए मेरे दिल,
जिंदगी और भी है।

यह तो मुमकिन ही नहीं
प्यार में गम न मिले,

अपनी बस्ती हो कहीं

आंख पुरनम न मिले,

एक मंजिल ही नहीं

ए मेरे दिल,

जिंदगी और भी है।

यह तो मुमकिन ही नहीं

आज को कल न मिले,

कोई सागर हो यहां

नाव को जल न मिले,

एक साहिल ही नहीं

ए मेरे दिल,

जिंदगी और भी है।

यह तो मुमकिन ही नहीं

प्यास को दर न मिले,

रूप को छांह कहीं

उम्र को घर न मिले,

एक संगदिल ही नहीं

ए मेरे दिल,

जिंदगी और भी है।

घबड़ाओ न! जिस जिंदगी को तुमने जिंदगी समझा वह कोई जिंदगी ही नहीं है।

ए मेरे दिल,

जिंदगी और भी है।

पुकार उठी है, अज्ञात ने स्मरण किया है। चल पड़ो!

यह तो मुमकिन ही नहीं

प्यार में गम न मिले,

पीड़ा तो होगी। और जितना बड़ा प्रेम होगा उतनी बड़ी पीड़ा होगी। धन्यभागी हैं वे जो अनंत प्रेम की अनंत पीड़ा कोझेलने को तत्पर होते हैं।

यह तो मुमकिन ही नहीं

प्यार में गम न मिले,

अपनी बस्ती हो कहीं

आंख पुरनम न मिले,

आंख तो गीली होगी ही!

एक मंजिल ही नहीं
ए मेरे दिल,
जिंदगी और भी है।

अब तक तुमने जो जाना है, वह कुछ भी नहीं अक्षय विवेक! अभी असली तो जानने कोशेष है। अब तक तुमने जो जीआ है वह कुछ भी नहीं, अक्षय विवेक! असली जीने को तो अभी शेष है।

"है कोई लेवनहारा"--उसी के लिए पुकार उठाई जा रही है। और तुम्हारे हृदय तक पुकार पहुंची। अब साहस करो। अब हिम्मत जुड़ाओ। चुनौती अंगीकार करो।

अज्ञात सागर की चुनौती है! और माना कि नाव हम सबकी छोटी-छोटी है और सागर की उत्ताल तरंगें और अपनी छोटी नाव और अपने छोटे हाथ और अपनी छोटी पतवार देख कर भरोसा नहीं आता कि पार हो सकेंगे! मगर मैं तुमसे कहता हूंः इतने ही छोटे हाथ मेरे, इतनी ही छोटी नाव मेरी--और मैं पार हुआ। इतने ही छोटे हाथ बुद्ध के, इतनी ही छोटी नाव बुद्ध की और बुद्ध पार हुए। तुम भी पार हो सकोगे। असल में जिसने साहस कर लिया नाव को छोड़ देने का सागर में, वह उसी क्षण पार हो जाता है। जिसने साहस कर लिया सागर में उतरने का, सागर की लहरें ही उसको पार करा देती हैं।

रामकृष्ण कहते थेः दोढंग हैं नाव को नदी में छोड़ने के। एक तो पतवार उठाओ, खेओ नाव; और एक है पाल खोलो। रामकृष्ण कहते थेः जिसमें साहस होता है, वह तो पाल खोल देता है। पतवार रख देता है और मस्त होकर लेट जाता है। हवाएं ले चलती हैं।

तुम ही परमात्मा से मिलने को उत्सुक नहीं हो, परमात्मा भी तुमसे इतना ही मिलने को उत्सुक है। उसकी हवाएं तुम्हें ले चलेंगी। मगर साहस तो चाहिए, नहीं तो हम किनारे से ही जंजीर बांध कर बैठे रहते हैं। हम किनारा नहीं छोड़ते, किनारे की सुरक्षा नहीं छोड़ते, किनारे की सुविधा नहीं छोड़ते।

और मैं तुमसे कह दूंः किनारे पर जीए भी तो मौत से बदतर है। और जिस सागर ने तुम्हें पुकारा है, अगर मझधार में भी डुब गए तो किनारा मिल जाता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! प्रार्थना कैसे करें?

सुशीला! प्रार्थना प्रेम का परिष्कार है। प्रार्थना प्रेम की सुगंध है। प्रेम अगर फूल तो प्रार्थना फूल की सुवास। प्रेम थोड़ा स्थूल है, प्रार्थना बिल्कुल सूक्ष्म है।

प्रेम के जगत में तोशायद शब्दों को थोड़ा लेन-देन हो जाए, प्रार्थना के जगत में तोशब्द बिल्कुल ही व्यर्थ हो जाते हैं। वहां तो मौन ही निवेदन करना होता है।

तू पूछती हैः प्रार्थना कैसे करें?

प्रार्थना कोई विधि नहीं है। ध्यान की तो विधि होती है, प्रार्थना की कोई विधि नहीं होती। प्रार्थना तो स्वस्फूर्त है, सहज भाव है। जो विधि से करेगा प्रार्थना, उसकी प्रार्थना तो व्यर्थ हो गई; उसकी प्रार्थना तो नकली हो गई; प्रथम से ही झूठी हो गई।

प्रार्थना तो आंख खोल कर, हृदय को खोल कर इस जगत में जो महा उत्सव चल रहा है, इसके साथ सम्मिलित हो जाने का नाम है। वृक्ष हरे हैं, तुम भी हरे हो जाओ--प्रार्थना हो गई! फूल खिले हैं, तुम भी खिल

जाओ--प्रार्थना हो गई। सूर्य निकला है, तुम भी जग जाओ--प्रार्थना हो गई। हवाएं नाच रही हैं, तुम भी नाचो--प्रार्थना हो गई।

प्रार्थना को कोई ढंग नहीं, रूप नहीं, आकार नहीं, व्यवस्था नहीं। प्रार्थना तो मस्ती है, उन्मत्तता है, दीवानगी है। प्रार्थना तो परमात्मा की शराब को पी लेने का नाम है।

बस मत कर देना अरे पिलाने वाले!
हम नहीं विमुख हो वापस जाने वाले!
अपनी असीम तृष्णा है--तेरा वैभव
अक्षय है अक्षय--अरे लुटाने वाले!
हम अलख जगाने आए तेरे दर पै!
हम मिट जाने आए तेरे दर पै!

इस रिक्त पात्र को भर दे, भर दे, भर दे!
मदहोश हमें तू कर दे, कर दे, कर दे!
हम खड़े द्वार पर हाथ पसारे कब के,
हो जाएं अमर--ऐ अमर हमें तू वर दे!

है एक बिंदु में सिंधु भरा जीवन का;
परिपूरित कर दे मानस सूनेपन का!
फिर और! यहां पर पाना ही है खोना,
हंस कर पीने में छिपा प्यास का रोना!

चलने दे, सुख के दौर अरे चलने दे!
भर जाए दुख से उर का कोना-कोना!
अपना असीम अस्तित्व दिखा दे हमको!
बस लय हो जाना अरे सिखा दे हमको!

तेरी मदिरा का बूंद-बूंद दीवाना!
हम नहीं जानते अपना हाथ हटाना!
इस पथ का अथ है नहीं, न इसकी इति है,
गति है, गति है, गति है बस बढ़ते जाना!

किस ओर चले हैं, है हुआ कहां से आना?
किसने जाना, निज को किसने पहचाना?
माना कि कल्पना और ज्ञान है--माना!

पर अविश्वास का, भ्रम का यहीं ठिकाना!
है एक आवरण, बुना हुआ जिसमें,
दिन-रात और सुख-दुख का ताना-बाना!

उस ओर? व्यर्थ का यह प्रयास--जाने दे!
पाने दे, हमको मुक्ति यहीं पाने दे!
निज आत्मघात कर जग को पछताने दे!
लाने दे अपनी मुक्ति,
लाने दे अपनी भुक्ति हमें लाने दे!
इस रिक्त पात्र को भर दे, भर दे, भर दे!

मदहोश हमें तू कर दे, कर दे, कर दे!
हम खड़े द्वार पर हाथ पसारे कब के,
हो जाएं अमर--ऐ अमर, हमें तू वर दे!

है एक बिंदु में सिंधु भरा जीवन का;
परिपूरित कर दे मानस सूनेपन का!

प्रार्थना हैः अपने भिक्षापात्र को अस्तित्व के सामने फैला देना।

प्रार्थना हैः अपने आंचल को चांद-तारों के सामने फैला देना।

कहने की बात नहीं। प्रार्थना एक भाव-दशा है, वक्तव्य नहीं। कोई हरे कृष्ण, हरे राम, ऐसा कहने से कोई प्रार्थना नहीं होती। कि "अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, सबको सनमति दे भगवान," ऐसा कहने से प्रार्थना नहीं होती! प्रार्थना मौन निवेदन है।

प्रार्थनाझुकने की कला है। जहां झुक जाओ घुटने टेक कर पृथ्वी पर, वहीं प्रार्थना है।

प्रार्थना अंतर्तम की बात है। शायद आंसू टपकें, या शायद गीत फूटे--कौन जाने! किशायद नाच उठो, कि पैरों में घूंघर बांध लो, कि बांसुरी उठा कर बजाने लगो--कौन जाने! कि चुप हो जाओ, कि बिल्कुल चुप जाओ, कि वाणी सदा को खो जाए--कौन जाने!

प्रत्येक को प्रार्थना अनूठे ढंग से घटती है। अद्वितीय ढंग से घटती है। एक की प्रार्थना दूसरे की प्रार्थना नहीं होती। इसलिए प्रार्थना की नकल मत करना। और वहीं अड़चन हो गई है। हमें प्रार्थनाएं सिखा दी गई हैं--हिंदुओं की, मुसलमानों की, जैनों की, ईसाइयों की। कोई पढ़ रहा है गायत्री; दोहराए जा रहा है तोतों की तरह। कोई पढ़ रहा है नमोकार मंत्र; दोहराए जा रहा है तोतों की तरह। कोई पढ़ रहा है कुरान की आयतें। सुंदर हैं वे आयतें और सुंदर हैं वे मंत्र और प्यारे हैं उनके अर्थ; मगर प्रार्थना इतने से नहीं होती। उधार नहीं होती प्रार्थना। प्रार्थना तो तुम्हारे हृदय का बहाव है।

सुशीला, सौंदर्य के प्रति संवेदना को बढ़ाओ, फिर प्रार्थना अपने से पैदा होगी।

संगीत सुनो--झरनों का, वृक्षों से गुजरती हुई हवाओं का, कि किसी वीणा पर किसी वीणावादक का। संगीत सुनो सुबह पक्षियों का, कि रात सन्नाटे में झींगुरों का। सौंदर्य देखो--वृक्षों का, चांद-तारों का, पशुओं का, पक्षियों का, मनुष्यों का! जहां-जहां तुम्हें सौंदर्य का, संगीत का, लयबद्धता का, रसमयता का बोध हो, वहां-वहां अपने हृदय को खोल कर बैठ जाओ। वहीं मंदिर है, वहीं तीर्थ है। धीरे-धीरे प्रार्थना का स्वाद लग जाएगा।

मैं नहीं कह सकता प्रार्थना क्या है। मैं इतना ही कह सकता हूं कि प्रार्थना कैसी परिस्थिति में अनुभव होती है। संवेदनशीलता की जितनी गहराई बढ़ेगी उतनी ही प्रार्थना अनुभव होगी। उस पर किसी की छाप नहीं होगी। फिर जब जगेगी प्रार्थना, तो तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी होगी। उस पर बस तुम्हारे हस्ताक्षर होंगे। और ईश्वर तक वही प्रार्थना पहुंचती है जो तुम्हारी है, अपनी है, निज है। उधार बातें वहां तक नहीं पहुंचतीं।

लोग तो प्रेम-पत्र तक दूसरों से लिखवा लेते हैं। प्रेम-पत्र दूसरों से लिखवाए का क्या मूल्य होगा? कितना ही सुंदर कोई लिख दे, कितने ही बड़े पंडित से तुम प्रेम-पत्र लिखवा लो... ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। फिर प्रेम टूटा, तो अपनी चीजें वापस मांगने आया, जो-जो उसने भेंट की थीं। स्त्री भी गुस्से में थी, उसने सब चीजें लौटा दीं। फिर भी मुल्ला खड़ा था। तो उसने कहाः अब और क्या चाहिए! सब तो दे दिया जो तुमने मुझे दिया था। उसने कहाः मेरे प्रेम-पत्र? स्त्री ने कहाः उनका क्या करोगे, प्रेम-पत्रों का?

मुल्ला ने कहाः अब तुझसे क्या छिपाना, एक पंडित जी से लिखवाता था! और अभी मेरी जिंदगी खत्म तो नहीं हो गई। अभी किसी और से प्रेम करूंगा। अब नाहक फिर पंडित जी को पैसे देने पड़ेंगे। तू लौटा दे वे प्रेम-पत्र, फिर मेरे काम आ जाएंगे। जरा नाम ऊपर का बदल दिया।

प्रेम-पत्र भी तुम दूसरों से लिखवाओगे? प्रार्थनाएं भी तुम दूसरों से सीखोगे? बस वहीं चूक हो जाएगी।

मैं तुम्हें प्रार्थना नहीं सिखा सकता। इतना ही कह सकता हूं कि किन अवसरों में प्रार्थना पैदा होती है। किस परिप्रेक्ष्य में, किस पृष्ठभूमि में प्रार्थना का जन्म होता है।

तुम मुझसे यह पूछो अगर कि कलियों को फूल कैसे बनाएं, तो मैं कुछ नहीं कह सकता। क्या मैं तुमसे कहूं कि कलियों को खींच-खींच कर खोल देना, ताकि वे फूल बन जाएं? मर जाएंगी कलियां, फूल तो नहीं बनेंगी। तुम अगर मुझसे पूछो कि वृक्षों से हम फूलों को कैसे निकालें, तो क्या मैं तुमसे कहूं कि खींचो, ताकत लगाओ? ऐसे तो नहीं होगा। मैं इतना ही कह सकता हूं--खाद देना, पानी देना, भूमि देना, बागुड़ लगा देना। सूरज आ सके, इसका ख्याल रखना। बस तुम परिस्थिति पैदा करना। एक दिन फूल खिलेंगे। कलियां अपने से फूल बन जाएंगी। तुम परिस्थिति देना।

प्रार्थना मत सीखो, परिस्थिति दो। और परिस्थिति है--सौंदर्य का बोध, संगीत का बोध। परिस्थिति है--गहन संवेदनशीलता। उसी भाव-भूमि में तुम्हारी प्रार्थना का फूल खिलेगा। और जब फूल खिले, तो फिर फूल जो करवाए करना। पहले से बंधी हुई धारणाएं लेकर मत बैठे रहना। फिर फूल जो करवाए, वही करना।

और फूल रास्ता दिखाएगा। फूल मार्गदर्शक हो जाएगा। फूल कहेगा नाचो तो नाचना। फूल कहे गाओ तो गाना। फूल कहे चुप बैठ जाओ तो चुप बैठ जाना। अपने भीतर संवेदना में खिले फूल का इशारा पहचानना और उसके पीछे चले चलना। वह कच्चा सा धागा तुम्हें परमात्मा तक पहुंचा देगा; या उस कच्चे धागे में बंधा हुआ परमात्मा तुम तक आ जाएगा। कुछ भी हो, बूंद सागर में गिरे कि सागर बूंद में गिरे, बात एक ही है।

आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

विद्रोह के पंख

पहला प्रश्नः ओशो! किसी अन्य आश्रम से--जैसे युग निर्माण योजना, मथुरा; रामकृष्ण आश्रम आदि--संबंधित कुछ मित्र आपके आश्रम आना चाहते हैं और यहां के विविध ध्यान-प्रयोगों में भाग लेना चाहते हैं। कुछ ऐसे मित्र हैं जिनके लिए शेगांव के प्रसिद्ध संत गजानन महाराज या शिरडी के साईंबाबा श्रद्धा-स्थान हैं; वे भी आपके आश्रम के ध्यान-शिविर में भाग लेना चाहते हैं। परंतु इस धारणा से कि किसी एक जगह श्रद्धा हो तो दूसरी ओर जाना नहीं चाहिए, वह पाप है--इसलिए हिचकिचाते हैं।

ओशो, इस पर कुछ समझाने की कृपा करें!

युगल किशोर! श्रद्धा साहस की अभिव्यक्ति है। श्रद्धा कायरता नहीं है, श्रद्धा कमजोरी नहीं है। जीवन-ऊर्जा के कमल के खिलने का नाम श्रद्धा है--श्रद्धा इतनी नपुंसक नहीं होती कि हिचकिचाए, भयभीत हो।

श्रद्धा का तो अर्थ ही यही है कि अब कुछ भी उसे डिगा न सकेगा--जहां जाना हो जाओ, जो सुनना हो सुनो, जो समझना हो समझो। हिचकिचाहट तो बताती है कि श्रद्धा कमजोर की है, कायर की है, नपुंसक की है। श्रद्धा के पीछे कहीं संदेह छिपा है। श्रद्धा ऊपर-ऊपर है, भीतर संदेह है। तो डर है कि जरा सी खरोंच लग गई तो श्रद्धा तो टूट जाएगी। कांच की बनी है, सम्हाल-सम्हाल कर चलना होता है। और भीतर का पता है कि भीतर संदेह भरा है; कोई भी उकसा देगा, कोई भी भड़का देगा, तो संदेह प्रकट हो जाएगा।

जिन श्रद्धालुओं की तुम बात कर रहे हो उन्हें मैं श्रद्धालु नहीं कहता। वे तो संदेह से भरे लोग हैं। लेकिन इतना साहस भी नहीं है कि अपने संदेह को स्वीकार कर सकें। इतनी भी आत्मश्रद्धा नहीं है कि अपने संदेह को अंगीकार कर सकें; कि ईमानदारी से कह सकें कि हम संदिग्ध हैं, कि अभी श्रद्धा का जन्म नहीं हुआ है। बेईमान हैं, श्रद्धालु नहीं हैं। धोखा दे रहे हैं--दूसरों को ही नहीं, अपने को भी। और जो अपने को धोखा दे रहा है वह परमात्मा को धोखा दे रहा है। आत्मवंचक हैं। श्रद्धा का भय से क्या संबंध? श्रद्धा तो इतनी समर्थ है कि किसी भी परिस्थिति में प्रवेश कर सकती है। आग से गुजरने को राजी है। असली सोना तो आग से गुजर कर और शुद्ध हो जाता है। नकली सोना डरेगा, भयभीत होगा, हिचकिचाएगा, आग में जाने से घबड़ाएगा, भागेगा, बचेगा।

जिन श्रद्धालुओं की तुम बात कर रहे हो वे श्रद्धालु नहीं हैं; संदेहग्रस्त लोग हैं। भय के कारण श्रद्धा को ओढ़ लिया है। फिर चाहे वे रामकृष्ण के आश्रम में हों और चाहे अरविंद के और चाहे रमण के, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि वे कहां हैं। उनकी श्रद्धा ऊपर से ओढ़ी गई श्रद्धा है। और उन्हें अच्छी तरह, भलीभांति पता है कि भीतर संदेह की अग्नि जल रही है, जो कभी भी प्रकट हो सकती है। अवसर की भर बात है, अवसर मिल गया तो आग भीतर की प्रकट हो जाएगी; इसलिए डरते हैं, इसलिए भयभीत होते हैं।

श्रद्धालु को कोई भय नहीं है। रामकृष्ण में जिसकी श्रद्धा है वह मुझमें भी रामकृष्ण को ही पाएगा। मेरे कारण रामकृष्ण में उसकी श्रद्धा कम नहीं होगी, बढ़ेगी। और अगर मेरे कारण कम हो जाए तो न तो उसने रामकृष्ण को पहचाना है और न अभी श्रद्धा से उसका कोई संबंध हुआ है। स्वर होंगे अलग, गीत तो वही है। वाद्य होंगे अलग, संगीत तो वही है।

रामकृष्ण हों, रमण हों कि कोई और, अलग-अलग अभिव्यक्तियां हैं--एक ही सत्य की! और जिसकी सत्य पर श्रद्धा है वह सत्य की सारी अभिव्यक्तियों को प्रेम करने में समर्थ होगा। श्रद्धा की सीमा नहीं होती, और सीमा हो तो जानना वह श्रद्धा नहीं है। जो कहे मुझे तो सिर्फ गुलाब के फूल पर श्रद्धा है, मैं चंपा के फूल के पास नहीं जा सकता; कैसे जाऊं, मेरी तो गुलाब के फूल पर श्रद्धा है--वह सिर्फ इतना ही बता रहा है कि वह डरता है कि कहीं ऐसा न हो कि चंपा की सुगंध आवेष्टित कर ले! कहीं ऐसा न हो कि चंपा में डूब जाऊं और गुलाब भूल जाए! कहीं ऐसा न हो कि चंपा अटका ले, फिर गुलाब तक न आ सकूं!

नहीं; जिसकी श्रद्धा है वह तो गुलाब का भी आनंद लेगा और चंपा का भी और चमेली का भी। क्योंकि उसकी श्रद्धा सौंदर्य में होती है। सौंदर्य की कोई सीमा नहीं है; सौंदर्य असीम है, अमाप है, अपरिभाष्य है। श्रद्धा इतनी संकीर्ण नहीं होती कि एक से बंध जाए। श्रद्धा और संकीर्ण, विरोधाभासी शब्द हैं। श्रद्धा विस्तीर्ण होती है, आकाश जैसी होती है। चर्च में भी जा सकता है श्रद्धालु और मंदिर में भी और मस्जिद में भी और गुरुद्वारे में भी--और उसकी श्रद्धा को आंच नहीं आएगी। उसकी श्रद्धा पकेगी, बढ़ेगी, और फूलेगी, और समृद्ध होगी।

क्योंकि निश्चित ही जीसस के वचनों में कुछ है जो कृष्ण के वचनों में नहीं है। और कृष्ण के वचनों में कुछ है जो जीसस के वचनों में नहीं है। कृष्ण के वचनों में एक अपूर्व सुसंस्कृत अभिव्यक्ति है। जीसस के वचनों में एक ग्राम्य सौम्यता है, सरलता है, सीधापन है, सादगी है। बुद्ध के वचनों में कुछ है--सम्राट के बेटे के वचन हैं--बहुत परिष्कृत हैं। कबीर के वचनों में भी कुछ है--माटी की सुगंध है। होंगे बुद्ध के वचन आकाश के, लेकिन कबीर के वचनों में कुछ है जो बुद्ध के वचनों में नहीं है। माटी की सुगंध नहीं है बुद्ध के वचनों में। और पहली-पहली वर्षा में माटी की सुगंध फूलों को भी मात कर देती है। माटी की सोंधी सुगंध का अपना जगत है।

जिसको श्रद्धा है वह तो कबीर में भी डुबकी लगा लेगा और फरीद में भी और नानक में भी और सब जगह से हीरे बटोर लेगा।

ऐसा समझो कि एक आदमी कहता हो कि मुझे तैरना आता है, मगर मैं तो सिर्फ गंगा में ही तैर सकता हूं, मैं नर्मदा में न तैरूंगा। कहीं डूब जाऊं तो! मैं गोदावरी में न तैरूंगा, कोई जान थोड़े ही गंवानी है। मैं तो सिर्फ गंगा में ही तैर सकता हूं।

ऐसे तैरने वाले पर तुम्हारे मन में क्या विचार उठेगा? इसका तैरना जरूर भ्रांति है। क्योंकि जिसे तैरना आता है, गंगा में तैर सकता है तो नर्मदा में क्या अड़चन है? गोदावरी में क्या अड़चन है? तैरना जिसको आ गया उसके लिए नदियों की बाधा नहीं रह जाती। उसके लिए तो सारी नदियां अपनी हो गईं। उसके लिए तो सारे सागर भी एक दिन अपने हो जाने वाले हैं। और जो पृथ्वी पर तैर लिया है, अगर चांद पर कोई सागर होगा तो उसमें भी तैर सकेगा और मंगल पर कोई सागर होगा तो उसमें भी तैर सकेगा। क्योंकि तैरने की कला नदियों से नहीं बंधती, तालाबों से नहीं बंधती। ऐसी ही श्रद्धा है।

श्रद्धा एक कला है। जिसे भरोसा आ गया है कि परमात्मा है; जिसे प्रतीति होने लगी कि अस्तित्व मिट्टी और पत्थर से ही नहीं बना है, मिट्टी और पत्थर में भी चैतन्य छिपा है; मृण्मय में जिसे चिन्मय का बोध होने लगा--उस बोध का नाम श्रद्धा है। फिर यह बोध किस बहाने हुआ, रामकृष्ण के, कि रमण के, कि कृष्ण मूर्ति के, इससे क्या भेद पड़ता है? मेरी अंगुली से तुम्हें चांद दिखाई पड़ा कि कृष्ण की अंगुली से कि क्राइस्ट की अंगुली से, चांद में थोड़े ही फर्क पड़ जाएगा! अंगुलियां भिन्न होंगी--काली होगी अंगुली, गोरी होगी अंगुली, लंबी होगी, छोटी होगी, दुबली होगी, मोटी होगी; ये अंगुलियों के भेद हैं, इनसे चांद में कोई अंतर न पड़ेगा। जिसको चांद की झलक मिलने लगी वह श्रद्धालु है। और अब जितनी अंगुलियों से मिल सके, लूटेगा, बेधड़क लूटेगा! अब

उसे कोई रुकावट नहीं। सारे मंदिर उसके हैं, सारे तीर्थ उसके हैं। काबा भी उसका, काशी भी उसकी, कैलाश भी उसका। लेकिन तुम जिनकी बातें कर रहे हो, युगल किशोर, ये नपुंसक लोग हैं। इन्हें श्रद्धा का कोई भी पता नहीं है। इनकी श्रद्धा भी बड़ी संकीर्ण है। इनकी श्रद्धा बड़ी छोटी है, बड़ी उथली है। है ही नहीं, ढांके बैठे हैं संदेह को। किसी भांति मना-मनु कर अपने को सम्हाल लिया है। इसलिए डरे हुए हैं।

नास्तिक से बात करने में आस्तिक डरता है, यह कैसा आस्तिक? नास्तिक नहीं डरता, आस्तिक डरता है! मैंने किसी नास्तिक को आस्तिक से बात करते डरते नहीं देखा। और मैं तथाकथित आस्तिकों को नास्तिकों से बात करते डरते देखता हूं। यह तो बड़ी उलटी बात हो गई। नास्तिक डरे, अकेला है बेचारा, ईश्वर का कोई सहारा नहीं है, अस्तित्व उसका सूना है, जीवन उसका अर्थहीन है--नास्तिक डरे, गणित ठीक बैठता है। लेकिन आस्तिक डरता है, जो कहता है सारा जगत, कण-कण परमात्मा से व्याप्त है--यह कंपता है! यह तो बड़ी बेबूझ बात हो गई। यह पहेली कैसे सुलझाओ! यह तो कबीर की उलटबांसी हो गई।

मगर कारण साफ है। नास्तिक ईमानदार है, आस्तिक बेईमान है। तुम्हारा तथाकथित आस्तिक बिल्कुल बेईमान है, इसलिए डरता है। डर बाहर से नहीं आता--नास्तिक क्या कर लेगा? डर भीतर से आता है। उसे अपने ही संदेह का भय है। उसे पता है कि संदेह दबाए बैठा है। कहीं कोई उकसा दे, कहीं कोई कुरेद दे, कहीं कोई ऐसी बात कह दे कि संदेह प्रज्वलित हो उठे, कि श्रद्धा डगमगा जाए! तो ऐसी जगह जाना ही नहीं।

जैन शास्त्र कहते हैंः पागल हाथी भी तुम्हारे पीछे पड़ा हो और पास में हिंदू मंदिर हो तो शरण मत लेना। हाथी के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है, हिंदू मंदिर में शरण लेना बेहतर नहीं है। क्यों? क्योंकि वहां कोई असद्ध वचन सुनने को मिल जाएं; वहां कोई मिथ्याज्ञान की बात कान में पड़ जाए तो जन्म-जन्म भटकोगे। हाथी क्या करेगा, सिर्फ शरीर ही ले सकता है; मगर मिथ्या वचन, मिथ्या गुरु, मिथ्या शास्त्र... अगर उनकी बात कान में पड़ गई तो शरीर ही नहीं आत्मा भ्रष्ट हो जाएगी।

और यही बात हिंदू ग्रंथों में भी लिखी है, क्योंकि ये सब ग्रंथ एक ही जैसे लोगों ने लिखे हैं--कि अगर जैन मंदिर के भीतर शरण मिलती हो तो उससे तो बेहतर हाथी के पैर कि नीचे दब कर मर जाना है।

तुमने घंटाकरण की कहानी तो सुनी है न, जो अपने कानों में घंटे बांधे रखता था! ये तुम्हारे आस्तिक बस घंटाकरण हैं। वह कानों में घंटे बांधे रखता था, क्यों? ताकि उसके कान में उसके इष्ट देवता के अतिरिक्त और कोई नाम सुनाई न पड़े। अगर उसके इष्ट देवता राम हैं तो राम-राम, राम-राम जपता है और कानों में घंटे बांधे हुए है; चलता है तो घंटे बजते रहते हैं। इसलिए कोई दूसरा इष्ट देवता, कोई कृष्ण-भक्त कहीं कृष्ण का नाम न डाल दे, कहीं कान में कृष्ण का नाम न पड़ जाए।

छोटे-छोटे आस्तिकों की तो बात छोड़ दो, तुम्हारे बड़े-बड़े आस्तिक, वे भी कसौटी पर उतरते नहीं। तुलसीदास के जीवन में कथा है कि उन्हें ले जाया गया मथुरा में कृष्ण के मंदिर में तो वे झुके नहीं। जो मित्र उन्हें ले गए थे उन्होंने कहाः आप नमस्कार न करेंगे? उन्होंने कहाः नहीं, मैं तो सिर्फ राम को ही नमस्कार करता हूं। जब तक धनुषबाण हाथ में न लोगे, मैं नमस्कार नहीं करूंगा।

तुलसीदास को कण-कण में राम दिखाई पड़ते हैं, लेकिन कृष्ण में राम नहीं दिखाई पड़ते। यह कैसा मजा हुआ! तो वह कण-कण में राम दिखाई पड़ने वाली बात बकवास है। तुलसीदास को कृष्ण से कुछ लेना-देना नहीं, राम से कुछ लेना-देना नहीं, धनुषबाण ज्यादा मूल्यवान मालूम होता हैं--मार्का, सरकारी मार्का, वह ज्यादा मूल्यवान मालूम होता है। लेबल। नहीं झुकेंगे कृष्ण के सामने, राम के सामने झुकेंगे! और शर्त कि धनुषबाण

अगर हाथ लेते हो तो मैं झुक सकता हूं। अब यह राम पर छोड़ दिया, कृष्ण पर छोड़ दिया कि तुम्हारी मर्जी, अगर मेरे झुकने का मजा लेना हो तो ले लो धनुषबाण हाथ में।

जिन्होंने कहानी लिखी है, बेईमान रहे होंगे। उन्होंने कहानी लिखी है कि और कृष्ण ने जल्दी से धनुषबाण हाथ में ले लिया। मूर्ति ने धनुषबाण हाथ में ले लिया। तब तुलसीदास झुके। मगर इसमें एक बात साफ है कि यह भक्ति न हुई, यह तो भगवान पर भी शर्त हुई! यह तो भगवान से भी सौदा हुआ। इसमें तुलसीदास तो दो कौड़ी के हो ही गए। अगर कृष्ण ने धनुषबाण हाथ लिया तो वे भी दो कौड़ी के हो गए। यह भी क्या बात हुई? तुलसीदास न झुकते तो क्या बिगड़ता है? यह तो झुकाने का बड़ा रस हुआ! ये तो जैसे बैठे ही थे। वह तो अच्छा हुआ कि उन्होंने धनुषबाण कहा, कोई और पहुंच जाते, कोई तुलाधर वैश्य के भक्त पहुंच जाते, कहते कि तराजू हाथ में लो, तो वे तराजू हाथ में लेते। कोई मोहम्मद के भक्त पहुंच जाते, वे कहते कि तलवार हाथ में लो। तो कृष्ण को पूरी दुकान ही सजानी पड़ती, सब सामान सामने रखना पड़ता, जब जो आए। कोई जैन भक्त पहुंच जाते, वे कहते नग्न खड़े होओ, दिगंबर, तो जल्दी से चड्डी इत्यादि उतार कर खड़े होना पड़ता। यह तो बड़ी बेहूदगी हो जाती। मगर यही तुम्हारे आस्तिक की स्थिति है। तुम्हारा आस्तिक कमजोर है, झूठा है। मुझे तो वह नास्तिक प्यारा है जो कम से कम ईमानदार है; जो कहता है मुझे पता नहीं है, इसलिए मैं कैसे मानूं? इसे कभी पता चल सकता है, क्योंकि इसने अपने अज्ञान को छिपाया नहीं, स्वीकार किया है। और अज्ञान की स्वीकृति सत्य की तरफ पहला चरण है।

तो पहली तो बात, युगल किशोर, जिन मित्रों की तुम पूछ रहे हो उनकी आस्था झूठी है, उनकी श्रद्धा बांझ है। दूसरी बात, जहां-जहां वे अटके हैं वहां उन्हें कुछ मिला नहीं, नहीं तो यहां आने की जरूरत क्या? क्या प्रयोजन? गंगा के किनारे जो बसा है और जिसकी प्यास तृप्त हो रही है, अब वह किसलिए जाएगा ब्रह्मपुत्र की तलाश में? पानी तो पानी है। प्यास बुझ गई, बात समाप्त हो गई। तो तुम जिनकी बात कर रहे हो--रामकृष्ण आश्रम, अरविंद आश्रम, रमण आश्रम--वहां जो लोग हैं वे यहां आना चाहते हैं, उनका आना चाहना ही बता रहा है कि वहां कुछ हुआ नहीं है। और नपुंसक श्रद्धा से कहीं भी कुछ नहीं होता। रामकृष्ण क्या करेंगे? रमण क्या करेंगे? मैं क्या करूंगा? कोई भी क्या करेगा? तुम्हारी श्रद्धा ही अगर नहीं है, तुम अगर भीतर बिल्कुल निर्बल हो, तुम अगर भीतर बिल्कुल झूठे हो, थोथे हो, ओछे हो, तो तुम्हारी श्रद्धा लेकर तुम जहां भी जाओगे वहीं कुछ भी होने वाला नहीं। वहां कुछ हुआ नहीं है इसलिए यहां आना चाहते हैं। नहीं तो आने की बात क्या थी? अब डर भी लगता है कि कहीं छोड़ कर गए तो कहीं जिन पर अब तक श्रद्धा की वे नाराज न हो जाएं! मिला भी कुछ नहीं है वहां। ... नाराज न हो जाएं, कहीं श्रद्धा डांवाडोल न हो जाए।

और तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हें ऐसा सिखाते रहे हैं। तुम्हारे पंडित-पुरोहितों ने शिष्य और गुरु के संबंध को तो करीब-करीब पति-पत्नी का संबंध बना दिया है--एक पत्नी-व्रत! यह कोई विवाह थोड़े ही है--खोज है, अन्वेषण है, जिज्ञासा है। ठीक है तुमने तलाशा एक जगह, पूरा श्रम लगाओ, हो सकता है तुम्हें वहां न मिल सके। जरूरी नहीं है कि तुम्हें नहीं मिला, इसका यह अर्थ है कि वहां नहीं है। तुमसे तालमेल न बैठा हो, तुम्हारे व्यक्तित्व के अनुकूल न पड़ा हो।

रामकृष्ण सभी के अनुकूल नहीं पड़ सकते, नहीं तो वैविध्य मिट जाए। किसी को कुरान ही जमती है और कुरान के वचन ही किसी के प्राणों में पड़े हुए जन्मों-जन्मों के बीजों को अंकुरित करते हैं। और किसी को गीता में ही वर्षा होती है। जहां वर्षा हो जाए... प्रयोजन आम खाने से है या गुठलियां गिनने से? लेकिन लोग गुठलियों से बंधे हुए हैं; आम-वाम खाने का तो पता नहीं है, गुठलियों के ढेर लगाए बैठे हैं। तुम्हें अगर वहां मिल गया तो

यहां आने का अकारण कष्ट न करो। अगर नहीं मिला है तो क्षण भर भी रुकना आत्मघात है क्योंकि कौन जाने कल मौत हो!

तो तलाशो, दौड़ो, भागो, जहां मिल सकता हो, जहां से खबर मिले कि सूरज उगा है वहां जाओ। यह तो खोजी की जिंदगी है। साधक की जिंदगी तलाश है। जहां तालमेल बैठ जाएगा, कौन जाने कहां बैठ जाए! किससे हृदय की लयबद्धता हो जाए, कौन सा वाद्य तुम्हें मोहित कर ले! जब तक वैसी जगह न आ जाए तब तक बहुत द्वार खटखटाने पड़ते हैं। अपने द्वार पर पहुंचने के लिए बहुत द्वार खटखटाने पड़ते हैं, अपना मंदिर खोजने के लिए बहुत मंदिरों में तलाश करनी पड़ती है।

लेकिन लोग तलाश नहीं करना चाहते--गोबरगणेश हैं! जहां बैठ गए बैठ गए। फिर वहां से उठने का नाम नहीं लेते, चाहे कुछ मिले, चाहे न मिले।

मैं पुनः याद दिला दूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वहां कुछ नहीं है। होगा, जरूर होगा। लेकिन तुम्हें नहीं मिला, यह सवाल है। दूसरों को मिला होगा, दूसरे जानें। तुम्हें अगर नहीं मिला है तो उठो, चलो। पृथ्वी खाली नहीं है; यहां विविध-विविध रंगों में परमात्मा प्रकट होता है।

और फिर, शिरडी के साईंबाबा या गजानन महाराज अब तो मौजूद नहीं हैं, न रामकृष्ण, न रमण। जैसे ही सदगुरु विदा होता है वैसे ही एक जाल इकट्ठा हो जाता है वहां, जो सदगुरु के नाम का शोषण शुरू कर देते हैं। इसे रोका नहीं जा सकता। इसे रोकना असंभव है। कौन रोके, कैसे रोके? यह होता ही रहेगा। चालबाज आदमी, होशियार आदमी सदगुरु के नाम का लाभ उठाएंगे। उसकी जिंदगी में तो नहीं ले सकते, उसकी मौजूदगी में तो मुश्किल पड़ती है; लेकिन जब वह मौजूद नहीं रहेगा तो उसकी कब्र बना कर बैठ जाएंगे, चमत्कारों की चर्चाएं चलाएंगे, कहानियां फैलाएंगे, बाजार लगाएंगे, दुकान खोल लेंगे। ऐसी ही दुकानें शिरडी के साईंबाबा और गजानन महाराज, ऐसे लोगों के समाधि स्थलों पर इकट्ठी हो गई हैं। हर चीज की वे एक ही उपयोगिता जानते हैं--कैसे उससे शोषण किया जा सके? जरूर वे तुमसे कहेंगे कि यहां से अगर छोड़ कर गए तो बाबा नाराज हो जाएंगे। बाबा प्रसन्न तो हो नहीं रहे हैं, मगर नाराज जरूर हो जाएंगे! जो बाबा प्रसन्न ही नहीं हो रहे हैं, अब उनके नाराज होने से भी क्या होने वाला है? बाबा जा चुके। और वे बाबा ही नहीं हैं जो नाराज हो जाएं।

तुम अगर शिरडी छोड़ कर यहां आओगे तो शिरडी के साईंबाबा की आत्मा प्रसन्न होगी, आनंदित होगी, कि तुम फिर तलाश पर निकल पड़े हो, शायद कोई द्वार मिल जाए। वह द्वार तो बंद हो गया।

जैसे ही कोई सदगुरु विदा होता है इस पृथ्वी से, उसकी सुगंध आकाश में लीन हो जाती है, पीछे छूट जाते हैं पग-चिह्न और पग-चिह्नों के आस-पास इकट्ठे पंडितों-पुरोहितों की भीड़। और पंडित-पुरोहित बड़े कुशल हैं शोषण करने में। वे सब भांति का शोषण शुरू कर देते हैं।

युगल किशोर! अपने मित्रों को कहनाः तुम्हारी हिचकिचाहट बताती है कि श्रद्धा झूठी है। तुम्हारी हिचकिचाहट बताती है कि अभी तुम्हें जो मिलना था नहीं मिला। तुम्हारी हिचकिचाहट बताती है कि तुम्हें अभी मंदिर की तलाश करनी है। तुम्हारी हिचकिचाहट बताती है कि तुम दुकानदारों के चक्कर में पड़ गए हो।

और श्रद्धा इतनी बड़ी है, आकाश जैसी, सबको समा लेती है। श्रद्धा जिसके पास है उसमें राम और कृष्ण और बुद्ध और महावीर और नानक और कबीर सब समाविष्ट हो जाते हैं। श्रद्धा का जादू ऐसा है, श्रद्धा की रसायन ऐसी है कि उसमें राम और कृष्ण में भेद नहीं रह जाता, जीसस और जरथुस्त्र में भेद नहीं रह जाता, महावीर और मीरा में भेद नहीं रह जाता। श्रद्धा की रासायनिक प्रक्रिया ऐसी है कि वह सारे सत्यों को समाविष्ट

कर लेती है। और सारे सत्यों को समाविष्ट करके जो परम सत्य प्रकट होता है उसकी समृद्धि अनूठी है, उसका आनंद अपूर्व है।

श्रद्धा सारे वाद्यों को इकट्ठा करके आर्केस्टर बना लेती है। हां, बांसुरी का भी एक मजा है--एकाकी बजती बांसुरी का, जरूर मजा है! लेकिन जब तबले पर थाप भी पड़ती हो और बांसुरी बजती हो तो मजा और गहन हो गया। और जब पीछे कोई सितार भी, सोए सितार को भी जगा दे तो रस और बढ़ा। और फिर कोई तानपूरा भी लेकर बैठ जाए तो बात और गहन होने लगी, नये-नये आयाम जुड़ने लगे।

परमात्मा अभी भी चुक नहीं गया है, अभी बहुत महावीर होंगे और बहुत बुद्ध होंगे और बहुत मोहम्मद होंगे और बहुत जीसस होंगे। और परमात्मा तब भी चुकेगा नहीं। नये-नये वाद्य जुड़ते जाएंगे, संगीत और सघन होता जाएगा, संगीत और गहन होता जाएगा। कृपण न बनो, कंजूस न बनो। हृदय को खोलो इस विराट आकाश के प्रति। पूरे परमात्मा को ही अंगीकार करो, उसके सब रूपों को अंगीकार करो। फिर जो तुम्हें प्रीतिकर लगता हो, वहां रम रहो। लेकिन इनकार तो कोई भी न हो। श्रद्धा का अर्थ होता है भीतर "हां" का भाव उठा। और "हां" में "नहीं" नहीं होती। "हां" में कोई शर्तबंदी नहीं होती।

अपने मित्रों को कहना... और कौन जाने मित्रों के नाम से सिर्फ तुम अपने संबंध में पूछ रहे हो। इसका भी बहुत डर है। इसकी भी बहुत संभावना है। हम सीधा-सीधा भी नहीं पूछते, क्योंकि सीधा-सीधा पूछो, कौन जाने मैं लट्ठ की तरह तुम्हारे सिर पर चोट करूं! तो लोग मित्रों के नाम से पूछते हैं।

एक सज्जन आए। वे कहने लगेः मेरे मित्र नपुंसक हैं! उनके लिए कोई ध्यान की विधि हो सकती है?

मैंने कहाः तुमने नाहक कष्ट किया! अपने मित्र को क्यों नहीं भेज दिया?

उन्होंने कहाः मैंने तो उनसे बहुत कहा, मगर वे संकोचवश आए नहीं।

मैंने कहाः उनसे तुम यह कह सकते थे कि तुम चले जाओ और कहना कि मेरे एक मित्र हैं, जो नपुंसक हैं, उनको ध्यान की कोई विधि... ।

वे थोड़े बेचैन हुए। मैंने कहाः तुम्हारी बेचैनी, तुम्हारी आंखें, तुम्हारा चेहरा सब कह रहा है कि तुम किस मित्र की बात कर रहे हो। सीधी-सीधी बात करो, अपनी बात करो।

युगल किशोर ठाकुर! ठाकुर होकर तुम भी कैसी बात कर रहे! कहां कि मित्रों की बात उठा रहे हो? अपनी ही बात करो, सीधी-सीधी बात करो। ये परिकल्पित मित्र, अगर हों कोई तो जरूर उनको कह देना, मगर अपनी तो गुन लो। उनकी उन पर छोड़ो। यहां तुम आए हो, तुम भी कहीं दूर-दूर खड़े न रह जाना डर के मारे कि अपनी तो श्रद्धा और, आ तो गए तो ठीक, मगर दूर-दूर खड़े रहें। न ध्यान में उतरें, न प्रार्थना में डूबें। सुनें भी तो एक पर्दे की आड़ से, अपने सिद्धांतों की दीवाल बीच में खड़ी रख कर।

ऐसा करोगे तो चूक जाओगे। ऐसा करोगे तो एक अवसर और आया था, वह भी व्यर्थ चला जाएगा। अवसर खोओ नहीं, अवसर बहुत मुश्किल से आते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो! एक ओर तो आप आधुनिक यंत्र-विधि के पक्ष में हैं और मानते हैं कि धर्म का फूल औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों में ही खिलेगा। दूसरी तरफ आप पश्चिम की औद्योगिक सभ्यताओं की विडंबनाओं का भी बखान करते हैं। "या तो यंत्र बचेगा या मनुष्य"--यह आपका ही वाक्य है। इसके अलावा आप अतीत के जिन महापुरुषों, संतों और भक्तों की वाणी की व्याख्या करते हैं, उनमें से कोई नहीं मानता था कि धर्म गरीबों के लिए नहीं है। इन सबकी पारस्परिक संगति कैसे बिठाई जाए?

राजकिशोर! मैं यंत्र-विधि के पक्ष में हूं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि यंत्र-विधि के साथ जुड़ी कुछ घातक संभावनाएं नहीं हैं। उन घातक संभावनाओं से भी मैं सचेष्ट करता हूं। बुद्धिमान व्यक्ति तो जहर से भी अमृत बना लेता है और बुद्धू अमृत से भी जहर।

विज्ञान ने बहुत बड़ी शक्ति मनुष्य के हाथ में दी है--टेक्नालॉजी की, यंत्र-विधि की। इससे यह सारी पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। सदियों-सदियों का सपना, जो हम देखते थे कहीं दूर आकाश में स्वर्ग है, वह पृथ्वी पर उतर सकता है। इस पृथ्वी पर, हमारी पृथ्वी पर उतर सकता है! विज्ञान ने एक विराट ऊर्जा का विस्फोट कर दिया है। लेकिन उसके खतरे हैं। उन खतरों से भी मैं सावधान करता हूं। सबसे बड़ा खतरा यह है कि कहीं यांत्रिकता मनुष्य के ऊपर हावी न हो जाए! कहीं ऐसा न हो कि मनुष्य सिर्फ मशीन का एक गुलाम होकर रह जाए। मनुष्य की मालकियत तो रहनी ही चाहिए। मनुष्य मालिक हो, यंत्र सेवक हो, तो शुभ है। यंत्र मालिक हो, मनुष्य सेवक हो जाए, तो अशुभ है।

इसलिए मैं एक और यंत्र-विधि का पूर्ण समर्थन करता हूं। क्योंकि उसके बिना अब पृथ्वी भूखी मरेगी। उसके बिना अब आदमी समृद्ध नहीं हो सकेगा। समृद्धि तो दूर, जीवन की सामान्य सुविधाएं भी आदमी को उपलब्ध नहीं हो सकेंगी। हमने इतनी संख्या बढ़ा ली है! संख्या रोज बढ़ती जा रही है। पृथ्वी उतनी की उतनी है। हर आदमी अपने साथ सौ-पचास एकड़ जमीन भी ले आता तो ठीक था। आदमी चले आते हैं, जमीन उतनी की उतनी है।

बुद्ध के जमाने में इस देश की कुल जनसंख्या दो करोड़ थी। आज पाकिस्तान को छोड़ कर, बंगलादेश को छोड़ कर इस देश की जनसंख्या साठ करोड़ है। अगर उन दोनों को भी हम जोड़ लें तो अस्सी करोड़ के करीब पहुंच रही है। इस सदी के पूरे होते-होते एक अरब जनसंख्या भारत की होगी। इस एक अरब जनसंख्या को न तुम भोजन दे सकोगे, न कपड़े दे सकोगे, न दवा दे सकोगे, न छप्पर दे सकोगे। लोग कीड़े-मकोड़े की तरह बिल्लाने लगेंगे। और तुम हो कि चरखे का गीत गाए जाते हो!

इस सदी के पूरे होते-होते तुम्हें पता चलेगा कि गांधीवाद के नाम पर तुमने जो मूढ़ता की है, इससे बड़ी और कोई मूढ़ता नहीं हो सकती थी। गांधी को भविष्य का कोई बोध नहीं था। गांधी मरे-मराए अतीत के प्रशंसक थे। वे रेलगाड़ी के खिलाफ थे, टेलीफोन के खिलाफ थे, पोस्ट आफिस के खिलाफ थे, दवाइयों के खिलाफ थे। मनुष्य ने जो भी मनुष्य के जीवन को सुसमृद्ध करने के लिए विकसित किया, सबके खिलाफ थे। वे चाहते थे, आदमी बाबा आदम के जमाने में वापस लौट चले। मगर यह हो नहीं सकता। यह करना हो, तो करोड़ों लोगों की हत्या करनी होगी पहले।

बुद्ध के जमाने में जब दो करोड़ आदमी थे भारत में तो एक तरह की संपन्नता थी। स्वभावतः, इतनी भूमि, इतना विशाल देश और कुल दो करोड़ आदमी! आज भी दो करोड़ हों तो फिर संपन्न हो जाएगा देश। कोई भूखा नहीं मरेगा। और आज भी दो करोड़ संख्या हो तो घरों में ताले न लगाने पड़ेंगे। ये कोई आदमियों की खूबियां नहीं थीं। ये कोई नैतिक गुण नहीं थे बुद्ध के जमाने में, कि लोग घरों में ताला नहीं लगाते थे। ताला लगाने का सवाल ही नहीं था।

लेकिन आज उसी देश में अस्सी करोड़ लोग हैं। चालीस गुनी संख्या बढ़ गई; और जमीन उतनी की उतनी है। और ढाई हजार साल में हमने जमीन का शोषण कर लिया। उसके जितने रासायनिक द्रव्य थे, हम सब पी गए। और वापस हमने कुछ नहीं डाला। दूसरे मुल्कों में तो लोग, आदमी मर जाता है तो उसे जमीन में गड़ा देते

हैं। तो जो कुछ उसके शरीर में खनिज, विटामिन, जो कुछ भी होते हैं, वापस जमीन में पहुंच जाते हैं। हम वह भी नहीं करते, हम उसे जला देते हैं। तो जिंदगी भर जो खाया-पीया, उसको हम राख कर देते हैं। जमीन में वापस नहीं पहुंच पाता वह फिर। तो ढाई हजार सालों में हम आदमी जलाते रहे और जमीन का शोषण करते रहे। जमीन बांझ हो गई है। उसमें अब कुछ फलता-फूलता नहीं मालूम पड़ता। और संख्या बढ़ती जाती है। यंत्र के अतिरिक्त अब कोई उपाय नहीं है।

इसलिए मैं यंत्र-विधि के पूरे पक्ष में हूं, समग्ररूपेण पक्ष में हूं। देश के द्वार-दरवाजे खोल दिए जाने चाहिए। हमने देश को एक बंद कारागृह बना लिया है, इसलिए हम सड़ रहे हैं। मेरा बस चले तो मैं देश के सारे द्वार-दरवाजे खोल दूं; सारी दुनिया को निमंत्रित करूं कि आओ! सारी दुनिया की पूंजी निमंत्रित होनी चाहिए कि लोग पूंजी लाएं, कि लोग यंत्र लाएं, कि लोग विज्ञान के नये-नये उपकरण लाएं। और इस देश में जितने ज्यादा उद्योग हो सकें उतने उद्योग फैलें।

और दुनिया से लोग आना चाहते हैं। मगर इस देश की मूढ़ताएं ऐसी हैं कि हम चाहते हैं कि दुनिया की पूंजी भारत में न आ जाए, कहीं भारत का शोषण न हो जाए। है कुछ भी पास नहीं... शोषण हो जाने का बड़ा डर है! नंगा नहाए... नहाता ही नहीं। वह नहाता इसलिए नहीं कि अगर नहाऊंगा तो निचोडूंगा कहां? निचोड़ने को कुछ है ही नहीं! वह नहाता ही नहीं है, क्योंकि नहाऊंगा तो फिर सुखाऊंगा कहां? सुखाने को कुछ है ही नहीं। और इस देश के पूंजीपति हैं, उनको भय है कि अगर दुनिया की पूंजी भारत में आए, और दुनिया का विज्ञान भारत में आए तो उनके कचरा उत्पादन की क्या कीमत रह जाएगी! तुम सोचते हो एंबेसेडर कार की कितनी कीमत होगी? बैलगाड़ी से कम हो जाएगी! अगर इस देश में फोर्ड और शेवरलेट और रॉल्स रॉयस और बें.ज, ये सारे कारखाने खुल जाएं तो एंबेसेडर गाड़ी का तुम सोचते हो क्या हाल होगा? कोई मुफ्त भी लेने को राजी नहीं होगा। क्योंकि जितनी कीमत पर एंबेसेडर मिल रही है उतनी कीमत पर तो बें.ज गाड़ी मिल सकती है। जो तीस साल, चालीस साल चले और फिर भी ऐसा लगे कि ताजी है, नई है। और एंबेसेडर गाड़ी तुम शोरूम से घर तक लाओ और खात्मा।

जब युगल किशोर बिरला मरे, तो कहते हैं उन्हें स्वर्ग ले जाया गया... मुझे पक्का पता नहीं कहानी कहां तक सच है, मगर सच ही होगी... वे खुद भी चौंके। मगर फिर सोचा कि शायद मैंने इतने बिरला मंदिर बनवाए इसलिए मुझे स्वर्ग में लाया जा रहा है। स्वर्ग में उन्होंने द्वारपाल से पूछा कि मुझे किसलिए स्वर्ग लाया जा रहा है? तो उन्होंने कहा, इसलिए कि जो-जो तुम्हारी गाड़ी खरीदते हैं, वे कहते हैंः हे राम! तुमने लोगों को जितना राम का नाम याद दिलवाया है, उतना किसी ने नहीं! बड़े-बड़े पंडित-पुरोहित हार गए। तुमने एंबेसेडर क्या बनाई है, ऐसी गाड़ी दुनिया में कोई नहीं! जिसमें हर चीज बजती है, सिर्फ हार्न को छोड़ कर!

तो यह हिंदुस्तानी पूंजीपति है, जिसकी प्रेइंग-लिस्ट पर इस देश के सारे नेताओं के नाम हैं; जो इस देश में बाहर की संपदा को, तकनीक को, विज्ञान को नहीं आने देना चाहता। इसलिए तुम गरीब हो, इसलिए तुम परेशान हो। और तुम परेशान रहोगे। इस देश के द्वार खोल दिए जाने चाहिए। अब यह पृथ्वी खंड-खंड में नहीं होनी चाहिए। अब दुनिया के पास इतना वैज्ञानिक विकास है कि अगर हम अपने द्वार खोल दें तो यह देश समृद्ध हो सकता है। लेकिन हम पिटी-पिटाई बातें दोहराए चले जाते हैं।

हमारे अर्थशास्त्री कौन हैं? चौधरी चरणसिंह जैसे लोग हमारे अर्थशास्त्री हैं। जिनको अर्थशास्त्र का अ ब स भी नहीं आता। अनर्थशास्त्र का आता होगा, अर्थशास्त्र का बिल्कुल नहीं आता। वे अभी तक गांवों का गुणगान किए जा रहे हैं। वे अभी तक गांव की ही प्रशंसा में गीत गाए जा रहे हैं। गांव का कोई भविष्य नहीं है। गांव जा

चुके, गांव का कोई भविष्य होना भी नहीं चाहिए। अब नगरों का भविष्य है--सुसंपन्न, सुशिक्षित, सुनियोजित नगरों का भविष्य है। दुनिया से गांव विदा हो रहे हैं। इधर हम गांव की तरफ सारी ताकत लगा रहे हैं। हमारे गांव भी विदा होने चाहिए। और गांव में कुछ भी नहीं है। बीमारी है, गरीबी है, मच्छर है, मक्खियां हैं, कीचड़ है, कबाड़ है। और एक गुलामी है। जब तक गांव नहीं मिटेगा, वह गुलामी नहीं मिटेगी। छोटे-छोटे गांव की गुलामी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। तुम कवियों की कहानियां और कविताएं पढ़ लेते हो, सोचते हो कि अहा, गांवों में कैसा राम-राज्य! कैसा पंचायत राज्य! और गांव में कैसे लोग मजा कर रहे हैं--कैसी स्वाभाविकता, प्राकृतिकता!

तुम्हें गांव की स्थिति का कोई अंदाज नहीं है। इस देश का गांव एक तरह का कारागृह है। इस गांव में जितना शोषण हो सकता है, शहर में नहीं हो सकता। गांव में हरिजन है, उसको कुएं पर पानी नहीं भरने दिया जा सकता। वह सबके साथ पांत में बैठ कर भोजन नहीं कर सकता। पांत में बैठ कर भोजन करने की तो बात दूर, उसकी छाया किसी पर पड़ जाए, तो पाप हो जाए, तो गांव के लोग मिल कर उसकी हत्या कर दें। अगर हरिजनों से कोई मिले-जुले, तो उसका हुक्का-पानी बंद कर दें। गांव इतनी छोटी जगह है कि वहां कोई आदमी व्यक्तिगत जीवन तो जी ही नहीं सकता। वहां कोई निजी जीवन नहीं है। और जहां निजता नहीं है वहां स्वतंत्रता नहीं हो सकती।

शहरों ने निजता दी है। शहरों में व्यक्ति निजी हो गए हैं।

मैं पक्ष में हूं इस बात के कि यंत्र बढ़ने चाहिए। औद्योगिकता बढ़नी चाहिए। धीरे-धीरे हमारे गांव छोटे-छोटे नगरों में रूपांतरित होने चाहिए। लेकिन खतरे हैं, वे भी हमें जान लेने चाहिए।

एक खतरा है सबसे बड़ा कि कहीं मनुष्य यंत्र से छोटा न हो जाए। कहीं यंत्र मनुष्य की छाती पर न बैठ जाए। नहीं तो भंयकर गुलामी शुरू हो जाएगी। यंत्र का हमें उपयोग करना है, यंत्र हमारा उपयोग न करने लगे। वैसा डर पश्चिम में पैदा हो गया है कि यंत्र आदमी का उपयोग करने लगा है। हम सावधान हो सकते हैं उससे। कहीं ऐसा न हो जाए कि यंत्र मनुष्य की सारी गरिमा और गौरव छीन ले। यह भी हो सकता है, क्योंकि यंत्र इतना कुशल है। उससे प्रतिस्पर्धा मनुष्य नहीं कर पाएगा। यंत्र की कुशलता इतनी बड़ी है कि जो काम हजार आदमी करें, एक यंत्र कर देगा। तो हजार आदमी बेकार हो गए। तो ये बेकार आदमियों की गरिमा खो जाएगी। ये बेकार आदमी कहां जाएंगे, क्या करेंगे?

पश्चिम में जितना ही स्वचालित यंत्र बढ़ते जाते हैं उतना ही सवाल उठता है कि बेकार आदमियों का क्या करना? लेकिन पश्चिम में समझ है। यहां तो काम जो करता है उसको भी तनख्वाह नहीं मिलती, लेकिन पश्चिम के समृद्ध देशों में जो काम नहीं जिसे मिलता है, उसे काम नहीं मिलने की तनख्वाह मिलती है। बेरोजगारी के लिए तनख्वाह मिलती है। क्योंकि वह भी जिम्मा समाज का है। अगर तुमने यंत्रों के हाथ में काम दे दिया और लोगों को काम नहीं मिलता, तो उनको तनख्वाह दो! वे काम करने को तैयार हैं।

धीरे-धीरे यंत्र सारा काम सम्हाल लेंगे। तब खतरे बहुत हैं। एक खतरा तो यह है कि आदमी सदियों से काम का आदी रहा है, खाली बैठने की उसे अकल नहीं है। खाली बैठेगा तो उपद्रव करेगा। झगड़े-झांसे करेगा... झंडा ऊंचा रहे हमारा! चले! अब कुछ काम ही नहीं है... । हिंदू, मुसलमान, ईसाई जूझने लगेंगे, झगड़ने लगेंगे, व्यर्थ के विवाद खड़े हो जाएंगे। या लोग शराब पीएंगे। या दिन-दिन भर टेलीविजन देखेंगे, आंखें खराब करेंगे। या वेश्यागामी हो जाएंगे। तो ये खतरे हैं। और ये खतरे रोके जा सकते हैं। सच तो यह है, सदियों-सदियों का

सपना पूरे होने के करीब है। अब आदमी के लिए मौका है संगीत सीखे; अब मौका है ध्यान करे; अब मौका है काव्य रचे, मूर्ति गढ़े; अब मौका है सुंदर बगीचा बनाए।

तो इसके पहले कि यंत्र मनुष्य से सारे काम छीन ले, हमें आदमी को जीवन का एक नया ढंग और एक नई शैली देनी होगी। ध्यान उसमें केंद्र होगा। बिना ध्यान के मनुष्य मर जाएगा, यंत्र उसकी छाती पर बैठ जाएगा। ध्यान का अर्थ ही होता हैः खाली बैठने का मजा। पुराने जमानों में कहा जाता थाः खाली मत बैठो, खाली बैठना शैतान का घर है। पुराने जमाने में जो खाली बैठता उसको गाली देनी ही पड़ती, क्योंकि दस आदमी कमाते, मेहनत करते, तब मुश्किल से पेट भरता था। खाली आदमी जो बैठता, आलसी होता, उसकी निंदा करनी होती थी। नये भविष्य में जब यंत्र सारा उद्योग हाथ में ले लेंगे तो हमें कहना पड़ेगाः खाली बैठो, खाली बैठना भगवान का मंदिर है। मैं उसी खाली बैठने की कला को सिखा रहा हूं, ध्यान कह रहा हूं उसको। तो ध्यान अनिवार्य होगा।

कला के नये-नये आयाम हमें खोल देने चाहिए, जो सिर्फ राजाओं-महाराजाओं को उपलब्ध थे। ठीक, किसी के दरबार में तानसेन था और किसी के दरबार में बैजू बावरा था, लेकिन अब हमें घर-घर में तानसेन और बैजू बावरा को लाना होगा। तो ही आदमी सुखी रह सकेगा। अन्य यंत्र सारा काम कर लेगा, आदमी क्या करेगा! और खाली आदमी खतरनाक हो सकता है। खाली आदमी बहुत खतरनाक हो सकता है। क्योंकि उसके भीतर सदियों-सदियों के दबे हुए रोग पड़े हैं--क्रोध के, घृणा के, ईर्ष्या के, वे उभरने लगेंगे।

इसीलिए यंत्र से जो खतरा है, उससे में सावधान करता हूं, लेकिन यंत्र-विरोधी मैं नहीं हूं। यंत्र के पूरे पक्ष में हूं। खतरा यंत्र से नहीं आता; खतरा आता है आदमी की नासमझी से। तो आदमी को समझदार किया जा सकता है।

यंत्र का दूसरा खतरा है कि कहीं प्रकृति को यंत्र नष्ट न कर दे। पश्चिम में वह खतरा पैदा हो गया है। ऐसी झीलें हैं जो मुर्दा हो गई हैं, जिनमें मछलियां मर गईं; क्योंकि फैक्टरियों का इतना तेल उन झीलों में पहुंच गया कि उस तेल ने जहर का काम किया। समुद्र तेल से भरे जा रहे हैं। कबीर ने कहा है... वे तो समझे थे उलटबांसी है, उन्हें क्या पता कि आगे क्या हालत होगी! और उन्होंने कहाः "एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागि आगि!" अब लौटो महाराज! तब तुम ऐसा न कहोगे कि एक अचंभा मैंने देखा नदिया लागि आगि। नदियों में आग लग रही है। अब अचंभा नहीं है यह। क्योंकि नदियों में जहाजों का, कारखानों का इतना तेल पहुंच रहा है कि नदियों के ऊपर तेल की तह जम जाती है, उसमें आग लग जाती है। नदियां मर रही हैं, झीलें मर रही हैं। ऐसी झीलें हैं जिनकी सारी मछलियां मर गईं। और वह झील ही क्या जिसमें मछलियां न हों! उन झीलों का पानी पीया नहीं जा सकता, जहरीला हो गया है। समुद्र में लाखों मछलियां मर रही हैं, सिर्फ इसलिए कि बहुत तेल हमारे जहाजों से छूट रहा है। हवा में इतना धुआं फैल रहा है--कारखानों का, कारों का, हवाई जहाजों का! जंगल काटे जा रहे हैं, पृथ्वी की हरियाली नष्ट होती जा रही है। बस बनते जा रहे हैं कोलतार के रास्ते, और खड़ी होती जा रही हैं सीमेंट की बड़ी-बड़ी आकाश छूती हुई गगनचुंबी इमारतें और शेष सब नष्ट होता जा रहा है। इसलिए सावधान करना भी जरूरी है।

लाभ तो बहुत हैं यांत्रिकता के, हानियां भी बहुत हैं! और बुद्धिमानी इसमें नहीं है, जैसा गांधी कहते हैं कि यंत्र ही छोड़ दो। गांधी तो कह रहे हैंः न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। वे तो कहते हैं, यंत्र को ही जाने दो तो खतरा नहीं रहेगा। लेकिन यंत्र के जाने से जो खतरे पैदा होंगे, वे यंत्र के खतरे से ज्यादा बड़े हैं। जरा सोचो तो! बिजली न रह जाए, ट्रेनें न रह जाएं, सड़कों पर कारें और बसें न रह जाएं, कारखाने बंद हो जाएं, जरा

सोचो सात दिन के लिए सब बंद हो जाएं, जैसे विज्ञान रहा ही नहीं, विज्ञान ने जो भी दिया सात दिन के लिए बंद हो जाए, तुम्हारी दुनिया की क्या स्थिति होगी? सात दिन में भस्मीभूत हो जाएगी। सात दिन में सब गिर जाएगा।

तीन दिन के लिए अमरीका के कुछ नगरों में बिजली चली गई, तो बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। एकदम लूट-पाट मच गई! अंधेरा हो गया तीन दिन के लिए, रास्तों पर गुंडे ही गुंडे हो गए! ये गुंडे कहां छिपे थे, पता ही नहीं चलता था पहले। बिजली की रोशनी में छिपे थे। अब अंधेरे में मौका मिल गया। बलात्कार हो गए, स्त्रियां चुरा ली गईं, बच्चों की हत्याएं हो गईं, दुकानें ता.ेड डाली गईं; रास्तों पर निकलना खतरनाक हो गया। बिजली चली गई तो जैसे आदमियत चली गई। तुम जरा सोचो, सात दिन के लिए सारा विज्ञान ने जो भी दिया है बंद हो जाए... । तुम एकदम ऐसे भयंकर उत्पात में पड़ जाओगे कि कल्पना भी नहीं कर सकते। एकदम लूट-पाट, आदमी का जंगलीपन प्रकट हो जाएगा।

गांधी जो कहते हैं, मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। विज्ञान ने जो टेक्नालॉजी दी है वह बहुत उपयोगी है। लेकिन आदमी को थोड़ा समझदार होना पड़ेगा। विज्ञान ने टेक्नालॉजी दी है वह अभी ऐसी है, जैसे बच्चे के हाथ में तलवार। आदमी उतने योग्य नहीं है जितना कि विज्ञान ने उसे साधन दे दिए हैं। आदमी की योग्यता बढ़ानी है; उसे ध्यान देना है, उसे शांति देनी है, उसे आनंदमग्न होने की अवस्था देनी है, उसे थोड़ी करुणा देनी है, उसे थोड़ा प्रेम देना है। वही प्रयोग मैं यहां कर रहा हूं, राजकिशोर!

उद्योग के बिना तो कोई उपाय नहीं है, विज्ञान के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है, पीछे लौटा नहीं जा सकता। आगे ही जाना है! लेकिन आदमी को इस योग्य बनाना है कि वह विज्ञान के खतरों से बच सके और विज्ञान का सदुपयोग कर ले। जरूरी नहीं है कि विज्ञान जंगलों को काटे। हमने गलती से काट डाले हैं।

विज्ञान ने अब इस तरह की सुविधा जुटा दी है कि अगर हम चाहें तो समुद्र में बस्तियां बस सकती हैं, जंगल काटने की जरूरत नहीं है। समुद्र में बस्तियां तैराई जा सकती हैं। जमीन पैदावार के काम में लाई जा सकती है और बस्तियां समुद्र में तैराई जा सकती हैं। और समुद्र काफी बड़ा है। पृथ्वी का जितना हिस्सा समुद्र के बाहर है, उससे बहुत ज्यादा हिस्सा समुद्र के भीतर है। सारी बस्तियां समुद्र में तैराई जा सकती हैं। अब विज्ञान ने इसके उपाय बता दिए हैं। अब इसमें कोई अड़चन नहीं है। यही नहीं, बस्तियां आकाश में उड़ाई जा सकती हैं--पूरी की पूरी बस्तियां! जैसे बादल तैरते हों आकाश में। जमीन पूरी की पूरी उत्पादन में लग सकती है। ये सारे कोलतार के रास्ते और ये बड़े-बड़े भवन, ये सब विदा किए जा सकते हैं जमीन से। ये सब आकाश में उठाए जा सकते हैं, जहां इनसे कोई खतरा नहीं होगा। और पृथ्वी एक सुंदर उपवन हो सकती है--जिसमें तुम उतर सकते हो कभी-कभी आनंद लेने को और फिर वापस जा सकते हो।

समुद्र में और आकाश में बस्तियां होंगी भविष्य में। जमीन को तो हमें खाली करना पड़ेगा। इतनी बड़ी संख्या के लिए तभी उत्पादन हो सकता है।

और अब हम चांद पर पहुंच गए हैं। आज नहीं कल, जो-जो खतरनाक उत्पादन हैं, जिनसे कि विषाक्त होता है वायुमंडल, वे चांद पर हटाए जा सकते हैं। जिनसे वायुमंडल में जहर फैलता है, वे सब चांद पर हटाए जा सकते हैं। चांद पर कोई खतरा नहीं है क्योंकि कोई आदमी नहीं, कोई जानवर नहीं, कोई पशु-पक्षी नहीं। अगर अणुबम बनाना है तो चांद पर बनाओ, जमीन पर बनाने की कोई जरूरत नहीं है।

यह सब संभव है--सिर्फ एक चीज की कमी है और वह यह कि मनुष्य की बुद्धिमत्ता को मुक्त करो। मनुष्य की बुद्धिमत्ता पर पुराने बंधन गिराओ; उसकी बुद्धिमत्ता को निखारो, तराशो, धार धरो। उसी महत कार्य में मैं

संलग्न हूं। मेरे काम का मूल्य आज नहीं आंका जा सकता, इस मूल्य को आंकने में सदियां लग जाएंगी। तुम मेरे मूल्य को आंकते हो पुराने हिसाब-किताब से कि शंकराचार्य ने ऐसा किया और बुद्ध ने ऐसा किया और महावीर ने ऐसा किया, आप ऐसा क्यों नहीं करते हैं? मेरे लिए वे कोई मापदंड नहीं हैं। जो बीत गया बीत गया। उसका अब कोई मूल्य नहीं है। भविष्य एक बिल्कुल नया भविष्य है--जिसका बुद्ध को कोई अंदाज नहीं था; जिसकी कबीर को कोई कल्पना नहीं थी। वे उसके संबंध में सोच भी क्या सकते थे! उसके संबंध में कह भी क्या सकते थे!

बीसवीं सदी का कोई बुद्ध ही भविष्य के संबंध में कुछ कह सकता है। एक विराट भविष्य हमारे सामने है। अगर हमने नासमझी की तो आदमी आत्महत्या कर लेगा। अगर हमने थोड़ी समझदारी बरती; अगर हम हिंदू, मुसलमान, ईसाई जैसी क्षुद्रताओं से ऊपर उठ गए; अगर हम भारतीय, पाकिस्तानी, चीनी, ऐसी बेहूदगियों से ऊपर उठ गए; अगर हम काले-गोरे की नासमझियों से ऊपर उठ गए--तो पृथ्वी इतना सुरम्य स्वर्ग बन सकती है कि हमारी सारी कल्पनाएं फीकी पड़ जाएं! स्वर्ग की जो हमने कल्पनाएं की थीं, वे फीकी पड़ सकती हैं। शक्ति हमारे हाथ में है। समझ अभी हमारे हाथ में नहीं है।

राजकुमार, तुमने पूछाः "एक ओर तो आप आधुनिक यंत्र-विधि के पक्ष में हैं और मानते हैं कि धर्म का फूल औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों में ही खिलेगा।"

निश्चित ही! क्योंकि धर्म मनुष्य की सर्वाधिक ऊंची अवस्था है।

जीवन में एक क्रमबद्धता है। भूखा पेट हो तो भजन नहीं हो सकता। भूखे भजन न होहिं गोपाला। पहले तो पेट भरा होना चाहिए, शरीर पर कपड़े होने चाहिए, छप्पर होना चाहिए। शरीर की जरूरत पहली सीढ़ी है। जिसकी शरीर की जरूरतें पूरी नहीं हुईं वह ईश्वर की बातें कर सकता है लेकिन ईश्वर का अनुभव नहीं कर सकेगा। उसकी ईश्वर की बातें भी सिर्फ भूखे पेट को भरने की बातें होंगी। उसकी ईश्वर की बातें वैसी ही होंगी जैसे सड़क के किनारे बैठे भिखमंगे की बातें, जो तुमसे कहता है कि दो, भगवान तुम्हें खूब देगा। जो भगवान तुम्हें खूब देगा, वह इसी को क्यों नहीं खूब दे देता? इससे कभी पूछो भी तो कि तू हमारे लिए आशीर्वाद दे रहा है, तू सीधे ही क्यों नहीं मांग लेता? हम तुझे दें, फिर भगवान हमें दे, इतना चक्कर क्यों? इतना सरकारी लालफीताबाजी क्यों? तू उसी से मांग ले सीधा, झंझट खत्म कर! जब इतना बड़ा दाता है भगवान, तो तुझे ही दे देगा, हम क्यों बीच में आएं? लेकिन वह तुमसे मांग रहा है कि दो मुझे कुछ, वह तुम्हें करोड़ गुना देगा। उसका न तो भगवान सच्चा है, न उसकी दान की बात सच्ची है, वह सिर्फ तुम्हारा शोषण कर रहा है, तुम्हारी धारणाओं का शोषण कर रहा है।

और ध्यान रखना, भिखमंगे को जो देता है, भिखमंगा समझता है कि बुद्धू है। ... खूब बनाया! भिखमंगे आपस में बैठ कर बात करते हैंः किसको बनाया आज, आज किसको फांसा, आज कौन लुटा? जो नहीं देता, भिखमंगा जानता हैः होशियार आदमी है। भिखमंगे के मन में सम्मान उसका है जो नहीं देता उसको, क्योंकि वह देखता है कि मेरी बातों में नहीं आता। लेकिन भिखमंगे तुम्हारे पुराने संस्कारों को जगा लेते हैं।

तुम अगर भूखे हो तो मंदिर में जाकर भी मांगोगे क्या? रोटी, रोजी, कपड़ा। तुम जरा मंदिरों में जाकर खड़े हो जाओ चुपचाप और लोगों की प्रार्थनाएं सुनो, लोग क्या मांग रहे हैं? कोई मांग रहा है कि बेटे को नौकरी मिल जाए; कोई मांग रहा है पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए; कोई मांग रहा है कि मकान मिल जाए, मकान नहीं मिल रहा है। तुम भगवान से ये चीजें मांग रहे हो! तुम्हारा भगवान से कोई नाता नहीं है। तुम भगवान को नहीं मांग रहे हो; तुम कुछ और मांग रहे हो।

शरीर की जरूरतें पहले पूरी होनी चाहिए। शरीर की जरूरतें पूरी होती हैं तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं।

मन की जरूरतें हैंः संगीत, कला, साहित्य। अब जिस आदमी का पेट भूखा है, उससे कहोः पढ़ो कालिदास! कि पढ़ो मेघदूत, कि यक्ष ने मेघदूत से अपनी प्रेयसी के लिए निवेदन भेजा है! वह कहेगा, भाड़ में जाने दो मेघदूत और उसकी प्रेयसी! अगर बादल कोई संदेश ले जाते हों, तो हमारा संदेश भगवान तक पहुंचा देना कि रोटी कब तक आएगी?

कल मैं पढ़ रहा था कि बुद्ध के सामने सुजाता ने जाकर खीर की थाली रखी। बुद्ध ने एक कौर खीर का लिया और थू-थू करके थूक दिया। कहा, यह किस तरह की खीर? सुजाता ने कहाः क्या करें महाराज, राशन के चावल हैं।

कालिदास, शेक्सपियर, बायरन, रवींद्रनाथ, इनको समझने के लिए शरीर तृप्त, छप्पर हो, बगिया हो, घर में पुस्तकालय हो, वीणा बजाने की सुविधा हो, रात दीया जला कर शांति से बैठ कर पढ़ने का अवसर हो, संग-साथ हो, वैसा वातावरण-माहौल हो, संगति हो, तो मजा है! भूखे पड़े हैं बंबई के रास्ते के किनारे और पढ़ रहे हैं मेघदूत, यह संभव नहीं है।

जब मन की जरूरतें पूरी हो जाती हैं तो आत्मा की जरूरतें पैदा होती हैं। जो तृप्त हो जाता है कला से, संगीत से, साहित्य से, उनके मन में ध्यान, प्रार्थना, योग, तंत्र, इन ऊंचाइयों की बातें आनी शुरू होती हैं। ये सीढ़ियां हैं।

इसलिए मैं कहता हूं कि धर्म तो जब कोई देश समृद्ध होता है तभी पैदा होता है। यह देश जब समृद्ध था तो धार्मिक था। अब यह देश धार्मिक नहीं है। लाख तुम्हारे शंकराचार्य चिल्लाते रहें। यह देश धार्मिक नहीं है। यह देश अब धार्मिक अभी हो नहीं सकता। पहले इस देश को इसकी मौलिक जरूरतें पूरी होनी चाहिए, तब यह देश धार्मिक हो सकता है।

धर्म पश्चिम में ऊगेगा। सूरज पश्चिम में ऊगेगा, पूरब में तो डूब चुका। हमने ही डुबा दिया। हमने ही मूढ़तापूर्ण बातें कर-कर के डुबा दिया, कि संसार में कुछ सार नहीं है, कि सब माया है, कि शरीर में क्या रखा है, यह तो मिट्टी है! हमने इस तरह की बातें कर-कर के जीवन का एक ऐसा निषेध पैदा कर दिया कि उस निषेध का अंतिम परिणाम यह हुआ कि हम दीन हुए, दरिद्र हुए, गुलाम हुए, सड़ गए, गल गए। अब इस सड़े-गले देश में धर्म की बात करनी मखौल उड़ाना है, लोगों का मजाक करना है। धर्म तो औद्योगिक रूप से संपन्नता में ही पैदा होगा।

तो निश्चित ही मैं कहता हूं कि उन्नत देशों में ही धर्म का सूरज ऊगेगा।

और तुमने पूछा हैः "दूसरी तरफ आप पश्चिम की औद्योगिक सभ्यता की विडंबनाओं का बखान भी करते हैं।"

निश्चित ही! अगर मैं नाव की तारीफ करता हूं, तो इसका यह अर्थ नहीं कि नाव के छेदों की भी तारीफ करूं। नाव की तारीफ करता हूं और सचेत करता हूं कि नाव में छेद हों तो उन्हें भर लेना, अन्यथा डूबोगे, तैराने वाली नाव ही डुबाने वाली हो जाएगी। और पश्चिम की नाव में बहुत छेद हैं। नाव तो है उनके पास कम से कम; हमारे पास तो नाव ही नहीं है, छेद का तो सवाल ही कहां उठता है। पहले तो नाव होनी चाहिए, तब छेद हों। पश्चिम के पास कम से कम नाव तो है! छेद वाली है, छेद भरे जा सकते हैं। लेकिन नाव ही न हो तो क्या खाक भरोगे!

तो उन छेदों के प्रति भी मैं सचेत करता हूं। इसलिए एक ओर प्रशंसा भी करता हूं, एक ओर आलोचना भी करता हूं। मेरी आलोचना और मेरी प्रशंसा में विरोधाभास नहीं है। मेरी आलोचना और प्रशंसा, दोनों ही ऐसे हैं जैसे तुमने कुम्हार को कभी घड़ा बनाते देखा? एक हाथ से भीतर सम्हालता है और दूसरे हाथ से बाहर चोट करता है। एक हाथ से सम्हालता, एक से चोट करता, तब घड़ा बनता है। वैसे ही एक हाथ से सम्हाल रहा हूं और दूसरे हाथ से चोट कर रहा हूं। तुम यह मत समझना कि यह चोट करते हैं और सम्हालते हैं, यह तो बड़ा विरोधाभास हो गया, इसमें संगति कैसे बिठाएं? संगति बिठाने की जरूरत है नहीं, संगति बैठ ही रही है। इसी तरह संगति बैठती है--एक तरफ से सम्हालो, एक तरफ से चोट करो। प्रशंसा करो उनकी जो सदगुण हैं और विरोध करो उनका जो छिद्र हैं; ताकि हम एक ऐसी नाव बना सकें जो अछिद्र हो, जो हमें उस पार ले जा सके।

यह भी तुमने पूछा हैः इसके अलावा आप अतीत के जिन महापुरुषों, संतों और भक्तों की वाणी की व्याख्या करते हैं, उनमें से कोई नहीं मानता था कि धर्म गरीबों के लिए नहीं है। इन सबकी पारस्परिक संगति कैसे बिठाई जाए?

अतीत के जिन संतों ने जीवन जीआ, अभिव्यक्ति दी सत्य को, सत्य उतने पर ही सीमित नहीं है और समाप्त नहीं है। सत्य कभी सीमित नहीं होता, कभी समाप्त नहीं होता। सत्य बहुत विराट है। मेरे बाद जो आएंगे, उन्हें कुछ और नई बातें कहनी पड़ेंगी, जो मैं नहीं कहूंगा। क्योंकि बात भी कहने का समय होता है। बुद्ध ने जो कहा, वह बुद्ध के समय के लिए जरूरी था। पच्चीस सौ साल पहले बुद्ध अगर वह कहते जो मैं कह रहा हूं, तो किसके काम आता? हालत तो यह है कि अभी भी मैं कह रहा हूं तो कितनों के काम आ रहा है? पच्चीस सौ साल पहले तो लोग हंसते, कहते आप भी कहां की बातें, उड़नछू बातें कर रहे हैं! मैंने कहा कि आकाश में नगर बस सकते हैं, समुद्र में नगर तैर सकते हैं। बुद्ध अगर ये बातें करते, तो लोग कहते कल्पना की बातें हैं। आज ये कल्पना की बातें नहीं हैं। अब तो विज्ञान ने सब स्पष्ट कर दिया है कि यह सब काम हो सकते हैं। इनमें कोई अड़चन नहीं है। अब चांद पर बस्ती बस सकती है।

बुद्ध ने जो कहाः वह उनके समय के अनुकूल था--उनके समय की जरूरत थी। समय बदल गया है। बुद्ध में जो-जो महत्वपूर्ण है, वह मैं बचा लेना चाहता हूं। इसलिए बुद्ध पर बोलता हूं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मैं बुद्ध की प्रत्येक बात का समर्थक हूं। बहुत सी बातें अब समय-बाह्य हो गईं; तिथि-बाह्य हो गईं; उनकी मैं चर्चा ही नहीं करता। उनका अब कोई मूल्य नहीं है। जैसे बुद्ध को स्त्रियों ने प्रार्थना की थी कि हमें भी दीक्षित करें। बुद्ध बहुत संकोच किए। दस साल तक टालते रहे। मैं जानता हूं, पच्चीस सौ साल पहले बुद्ध ने अगर स्त्रियों को दीक्षा देने से टाला, तो मैं समझ सकता हूं बुद्ध की अड़चन। मैं स्त्रियों को संन्यास देकर जिस अड़चन में पड़ रहा हूं, बुद्ध पच्चीस सौ साल पहले अगर शंकित हुए हों तो आश्चर्य नहीं है। बुद्ध टालते रहे, किसी तरह बचाने की कोशिश की कि स्त्रियों को संन्यास नहीं देना; क्योंकि जिस समाज में जी रहे थे, वह स्त्री-विरोधी समाज था। सदियों से स्त्रियों को दबाया गया था, शिक्षा नहीं दी गई थी, अपढ़ रखा गया था, समाज के बाहर घरों में बंद कर दिया गया था। उनको दीक्षा देनी, उनको संन्यास देना! और फिर जो लोग संन्यासी हुए थे पुरुष के रूप में, उनमें से अधिक लोग कामवासना को दमित किए हुए बैठे थे--यह भी बुद्ध को साफ था, क्योंकि सदियों की शिक्षा यही थीः कामवासना को दबाओ! तो ये कामवासना से उबलते हुए लोग और इनके साथ स्त्रियों को संन्यास दे देना, उपद्रव होगा। बारूद के पास आग हो जाएगी। तो टालते थे। मैं समझता हूं उनकी अड़चन। लेकिन फिर भी अंततः वे राजी हुए। राजी हुए अपने बुद्धत्व के कारण। टालते थे लोगों की मूढ़ता के कारण।

लेकिन मैं नहीं टालूंगा। अब हम एक नई दुनिया में रह रहे हैं--जहां स्त्री उदघोष कर रही है अपनी स्वतंत्रता का; जहां स्त्री वापस अपना स्थान ले रही है; जहां पुरुष और स्त्री के भेद समाप्त हो रहे हैं। फिर, कामवासना का दमन मेरी शिक्षा नहीं। जो मुझे समझेगा, उसके लिए स्त्री-पुरुष का भेद ही क्षीण हो जाता है। हो ही जाना चाहिए। जिस दिन स्त्री-पुरुष का भेद क्षीण हो जाए, उसी दिन जानना कि तुम्हारे जीवन में ब्रह्मचर्य का फूल खिला।

तो मैं बुद्ध की बहुत सी बातों से राजी भी नहीं होऊंगा। मैं महावीर की बहुत सी बातों से राजी भी नहीं होऊंगा। महावीर कहते थे, रात्रि भोजन मत करना, ठीक कहते थे। रोशनी नहीं थी, उजाला नहीं था, लोग अंधेरे में भोजन करते थे--अब भी गांव में करते हैं--मच्छर भी गिर जाते हैं, कीड़े-मकोड़े भी गिर जाते हैं। अगर अहिंसा की बात भी छोड़ दो, तो चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से भी उचित नहीं है; भयानक है। लेकिन अब तो बिजली है। अब तो दिन से ज्यादा उजाला तुम रात में कर सकते हो। इसलिए मैं महावीर की इस बात का समर्थन नहीं करूंगा। और फिर भी मैं कहूंगा कि महावीर ने अपने समय में ठीक ही कहा था। लेकिन आज बात तिथि-बाह्य हो गई है।

तुमने पूछा है, राजकुमारः "कि आप अतीत के जिन महापुरुषों, संतों और भक्तों की वाणी की व्याख्या करते हैं, उनमें कोई नहीं मानता था कि धर्म गरीबों के लिए नहीं है।"

यह प्रश्न ही ठीक से उठाया नहीं गया था। यह प्रश्न ही असामयिक था। गरीब नहीं थे ऐसा नहीं है। गरीब थे। लेकिन बुद्ध के दिन का गरीब आज के मध्यवर्गीय आदमी से बेहतर हालत में था। गरीबी नहीं थी, गरीब थे। बुद्ध का मध्यवर्गीय व्यक्ति भी आज के समृद्ध व्यक्ति से ज्यादा समृद्ध था। और बुद्ध के जमाने का जो गरीब था, वह आज के मध्यमवर्गीय से ज्यादा बेहतर था। उसके कई कारण थे। एक तो खूब धनधान्य था, भूख का कोई कारण नहीं था। यह तो इसी से प्रमाणित होता है कि लाखों लोग भिक्षु हुए बुद्ध के साथ, और लाखों लोग मुनि हुए महावीर के साथ और इन सबको भोजन देने की सामर्थ्य इस देश में थी। कोई भूखा नहीं मरा इनमें से। सच तो यह है कि इनको इतना भोजन मिला, इतना सत्कार मिला! ... देश खूब संपन्न था। नहीं तो इतने भिक्षु, इतने मुनि, इतने संन्यासी, इनको कौन भोजन दे, कौन कपड़े दे? इनको लोग इतना भोजन-कपड़े दे देते थे कि बुद्ध को, महावीर को नियम बनाने पड़े कि इससे ज्यादा कपड़े मत लेना। और अगर कपड़े तुम्हें नये मिल जाएं तो अपने पुराने कपड़े तुम किसी को तत्काल दान कर देना, इकट्ठे मत करने लगना। नहीं तो लोग अंबार लगा देंगे। बुद्ध को कहना पड़ा कि भोजन कितना लेना, नहीं तो वहीं लोग इतना दे देते हैं कि तुम ज्यादा खा लोगे।

काफी था धनधान्य! गरीब कोई इस अर्थ में गरीब नहीं था जैसे आज गरीब है। हो भी नहीं सकता था। दो करोड़ की आबादी, इतना बड़ा देश! फिर इतने साधन नहीं थे; इतनी भोग की सामग्री नहीं थी। अगर तुम्हारे पास एक बैलगाड़ी थी, अच्छी छकड़ा-गाड़ी, तो तुम रईस थे। अगर एक अच्छा घोड़ा था शानदार, तो तुम मूंछ पर, अपनी मूंछ पर ताव देकर चल सकते थे। कोई अड़चन न थी। तुम्हारे मन में यह पीड़ा नहीं उठती थी कि अपने पास फियेट गाड़ी नहीं है, कि क्या बैलगाड़ी में बैठे जा रहे हैं! साधन बहुत कम थे, प्रतिस्पर्धा बहुत कम थी। साधन ही नहीं थे, इसलिए गरीब-अमीर के बीच बहुत फासला नहीं था। इस बात को समझने की कोशिश करो। अमीर भी वही खाता था जो गरीब खाता था। वही गेहूं, वही चावल, वही घी, वही दूध। इतना दूध था कि लोग दूध को बेचते नहीं थे। कौन खरीदता? सबके पास दूध था। ऐसी अवस्था में जहां साधन बहुत कम थे, प्रतिस्पर्धा कम थी, खरीदने की दा.ैड़ कम थी, और भोग, जरूरी भोग के साधन पर्याप्त थे, गरीब का सवाल

नहीं उठा था। आज सवाल उठा है। इसलिए उन संतों और महात्माओं ने ऐसी कोई बात नहीं की कि गरीबों के लिए धर्म नहीं। गरीब इस अर्थ में कोई था ही नहीं। इसलिए धर्म सबके लिए था।

फिर भी मैं तुमसे यह याद दिलाना चाहता हूं कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के बेटे हैं। बुद्ध भी राजा के बेटे हैं। हिंदुओं के अवतार राम और कृष्ण भी सब राजाओं के बेटे हैं। इससे क्या सिद्ध होता है? इससे यही सिद्ध होता है कि धर्म की ऊंचाइयां उस समय भी उन्हीं लोगों ने पाईं जिन लोगों ने जीवन की सारी सुख-सुविधाएं भोग ली थीं। मेरी बात फिर भी सिद्ध होती है। जैनों के चौबीस तीर्थंकर में एकाध गरीब आदमी क्यों नहीं है? एकाध दुकानदार क्यों नहीं है? सब राजपुत्र क्यों हैं? राजपुत्र ने सारी शिक्षा पाई, सब सुख भोगे, महल, सुंदरियां, संगीत, सुरा, जल्दी ही उन सबसे ऊब गया। और जीवन का आत्यंतिक प्रश्न उसके समक्ष खड़ा हो गया कि यह सब तो आज नहीं कल मौत छीन लेगी, फिर क्या है? मृत्यु के पार क्या है? इस सबमें कब तक खोया रहूंगा? इस पुनरुक्ति को दोहराने में क्या सार क्या है? मैं कौन हूं? तो जैनों, हिंदुओं और बौद्धों के, तीनों के जो सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं, वे सभी के सभी राजपुत्र हैं। इससे मेरी बात को प्रमाण मिलता है कि धर्म की जो आत्यंतिक अभिव्यक्ति है, वह तभी होती है जब जीवन के और सब खेल चुक जाते हैं, जीवन के और सब भोग व्यर्थ हो जाते हैं।

मेरे हिसाब में अगर मनुष्य बचा--अगर मूढ़ राजनीतिज्ञों ने तीसरा महायुद्ध न करवा दिया और मनुष्य किसी तरह बच सका, और विज्ञान ने सारी पृथ्वी को एक कर दिया--कर ही दिया है, सिर्फ राजनीतिज्ञों की मूढ़ताएं हट जाएं तो पृथ्वी एक हो गई है--अगर विज्ञान के हमने लाभ उठाए और विज्ञान की हानियों से हम सावधान रहे, तो मेरे हिसाब में इक्कीसवीं सदी इस पृथ्वी पर सबसे बड़ी धार्मिक सदी होगी। इक्कीसवीं सदी इतने बुद्धों, इतने जिनों, इतने सिद्धों को पैदा करेगी जितने पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास ने कभी नहीं किए थे। करीब-करीब ऐसी हालत होगी--तुम्हें पता है, इस समय जो वैज्ञानिक हैं पृथ्वी पर जिंदा और पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में जो वैज्ञानिक हुए हैं, उनका अगर हिसाब लगाओ तो तुम चकित हो जाओगे! नब्बे प्रतिशत वैज्ञानिक आज जिंदा हैं। और पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में--पिछले दस हजार साल में--केवल दस प्रतिशत वैज्ञानिक हुए। और आज नब्बे प्रतिशत जिंदा हैं।

क्या हो गया? विज्ञान का विस्फोट हुआ है!

ठीक ऐसे ही धर्म के विस्फोट की घड़ी करीब आ रही है। नब्बे प्रतिशत बुद्ध जिंदा होंगे इक्कीसवीं सदी में। और अतीत के सारे बुद्ध और सारे जिन केवल दस प्रतिशत की गिनती में रह जाएंगे।

यह एक महान क्षण है--महाक्रांति का! उसकी पूर्व तैयारी के लिए मैं संन्यास का आयोजन कर रहा हूं। यह जो बुद्ध-क्षेत्र है, यह जो बुद्ध-संघ है, यह उस महातैयारी के लिए, उस परम अवसर को निमंत्रित करने के लिए है, उसे आवाहन देने के लिए है। यह प्रार्थना है, कि इक्कीसवीं सदी राजनीतिज्ञों की मूढ़ता से बच जाए और विज्ञान हानिकर सिद्ध न हो, सौभाग्य सिद्ध हो, हम इतनी समझदारी बरत सकें, तो मनुष्य अपने असली स्वर्णयुग के करीब आ रहा है। जिनको हमने पहले स्वर्णयुग कहा है, वे कुछ भी नहीं थे, सब फीके पड़ जाएंगे! क्योंकि इतनी ऊर्जा, इतनी क्षमता, इतना विज्ञान, इतना बोध मनुष्य के पास कभी भी नहीं था जितना आज है।

अगर तुम्हें रात बहुत अंधेरी मालूम होती हो, राजकुमार, तो घबड़ाओ मत। इतना ही समझो कि सुबह बहुत करीब है। सुबह करीब होने के पहले रात बहुत अंधेरी हो जाती है। और मेरी बातों में चाहे ऊपर से संगति न दिखाई पड़े, लेकिन अगर गहरी खोज करोगे, जरा डुबकी मारोगे, तो एक भी असंगति न पाओगे।

तीसरा प्रश्नः ओशो! राजनीति क्या है?

रवींद्र! राजनीति नीति नहीं है, अनीति है। न मालूम किन बेईमानों ने उसे राजनीति का नाम दे दिया! नीति तो उसमें कुछ भी नहीं है। राजनीति हैः शुद्ध बेईमानी की कला।

मुल्ला नसरुद्दीन के बेटे ने उससे पूछा कि पापा, आप बड़े राजनीति के खेल खेलते हैं; राजनीति क्या है? तो उसने कहा कि शब्दों में कहना कठिन है, यह बड़ी रहस्यमय बात है। मगर अनुभव से तुझे समझा सकता हूं। उसने कहाः समझाइए। तो बेटे को कहाः चढ़ सीढ़ी पर। सीढ़ी लगी थी दीवाल से, तो बेटा चढ़ गया। जब ऊपर के सोपान पर पहुंच गया, तो नसरुद्दीन ने कहाः कूद जा, मैं सम्हाल लूंगा। वह जरा झिझका। सीढ़ी ऊंची थी; कूदे और पिता के हाथ से छूट जाए, गिर जाए, न सम्हल जाए, तो हाथ-पैर टूट जाएंगे। नसरुद्दीन ने कहाः अरे, अपने बाप पर भरोसा नहीं करता! कूद जा, कूद जा बेटा। जब बार-बार कहा, तो बेटा कूद गया। और नसरुद्दीन हट कर खड़ा हो गया। दोनों घुटने छिल गए; नाक से खून गिरने लगा। बेटे ने कहा कि मतलब! तो नसरुद्दीन ने कहाः यह राजनीति है बेटा; अपने बाप पर भी भरोसा न करना। भूल करके भी किसी पर भरोसा न करना--यह पहला पाठ।

धोखा ही धोखा है। बेईमानी ही बेईमानी है। गलाघोंट प्रतियोगिता है।

राजनीति हिंसा है और बड़ी चालबाज हिंसा है। कहीं खून दिखाई नहीं पड़ता--और खून हो जाते हैं। हाथ नहीं रंगते--और हत्याएं हो जाती हैं। आदमी पोंछ दिए जाते हैं, उनका फिर पता भी नहीं चलता, और कहीं कोई आवाज भी नहीं होती।

एक राजनेता किसी को अपनी फटी-पुरानी छतरी बेचने का प्रयत्न कर रहे थे। लेकिन भावी ग्राहक छतरी की हालत देख कर थोड़ा सकुचा रहा था। एकदम इनकार भी नहीं कर सकता था। राजनेता कभी-कभी ताकत में आ जाते थे। अभी ताकत में नहीं थे, अभी हालत खराब थी, खस्ता थी, इसलिए तो छतरी बेच रहे थे। मगर फिर भी थे राजनेता और कब ताकत में वापस आ जाएं, कोई कुछ कह नहीं सकता, इसलिए वह एकदम इनकार भी नहीं कर सकता था।

उस भावी ग्राहक ने उनसे पूछा कि नेताजी, छतरी की ऐसे तो मुझे जरूरत नहीं है, लेकिन आपकी छतरी है, जरूर खूबी की होगी। इसकी खास खूबी क्या है? आपकी चीज और खूबी की न हो, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। एक तरफ छतरी को देखता था, एक तरफ नेताजी के चेहरे को देखता था। छतरी की हालत तो बिल्कुल खराब थी; वह तो कोई मुफ्त में भी दे तो लेने योग्य नहीं थी। नेताजी ने कहाः इस छतरी में बड़ी खूबियां हैं। अगर आप सिर्फ एक बात का ख्याल रखें, तो यह छतरी वर्षों आपके काम आएगी। ग्राहक ने पूछाः किस बात का ख्याल रखना चाहिए? नेताजी ने कहाः बस इसे धूप और बरसात से बचाए रखना।

राजनीति शोषण है, धोखा है, प्रवंचना है। राजनीति प्रवंचना का शास्त्र है।

आश्वासन दो और सुंदर आश्वासन दो। और आश्वासन देने में डरो मत, क्योंकि पूरे तो उन्हें कोई न कभी करता है, न करना है। हां, पांच-सात साल में, नये चुनाव आने तक, लोग तुमसे ऊब जाएंगे, कोई फिकर न करो। तुम्हारे भाई-भतीजे तब तक लोगों को राजी कर लेंगे अपने आश्वासन से, वे सत्ता में आ जाएंगे।

जनता की स्मृति बड़ी कमजोर है, वह भूल ही जाती है कि तुमने आश्वासन दिए थे और पूरे नहीं किए। और अगर चुनाव में तुम्हें हरा भी देगी, तो तुम्हारे ही चचेरे भाई, तुम्हारे ही भाई-बंधु सत्ता में बैठ जाएंगे। वे भी उतने ही धोखेबाज हैं। यह राजनीति का खेल चलता है। और इन दो चक्कियों के बीच में लोग पीसते रहते हैं।

जैसे राजाओं के दिन चले गए, ऐसे ही अब राजनेताओं के दिन भी जाने चाहिए। तुम चौंकोगे यह बात जान कर। क्योंकि अगर आज से कोई पांच सौ साल पहले यह कहता कि एक दिन ऐसा भी आएगा कि राजाओं के दिन चले जाएंगे, तो कोई भी न मानता। कोई मान सकता था कि राजाओं के दिन और कभी चले जाएंगे! यह हो ही नहीं सकता। राजा तो स्वयं परमात्मा ने बनाए हैं। वे तो उसकी प्रतिछवियां हैं। वे तो पृथ्वी पर उसके प्रतिनिधि हैं। वे कैसे चले जाएंगे? राजाओं के बिना तो पृथ्वी डगमगा जाएगी। राजा सुखी, तो प्रजा सुखी। राजा के बिना तो प्रजा ही कैसे बचेगी? यह कल्पना के बाहर रहा होता। लेकिन तुमने देखा कि राजा चले गए। अब सिर्फ पांच तरह के राजा दुनिया में बचे हैं। बचेंगे--पांच तरह के राजा बचेंगे। चार तो ताशों के--चिड़ी के, और लाल, और ईंट के, और पांचवां इंग्लैंड का। बस पांच राजा बचेंगे। इंग्लैंड का राजा बचेगा, क्योंकि उसकी स्थिति ताशों के राजा से भिन्न नहीं है। बस, बाकी सब राजा तो गए।

मैं तुमसे यह कहता हूं कि राजनेता भी जाने के करीब हैं। उनका वक्त भी गया। अब घसिट रहे हैं। अब बहुत ज्यादा देर नहीं है। उनकी मृत्यु की घड़ी भी करीब आ गई है। उन्होंने भी खूब उपद्रव कर लिया है। यह सदी उनका अंत देखेगी। राजनेता का अब कोई भविष्य नहीं है, न हो सकता है।

दुनिया में एक और तरह के शासन की जरूरत है। राजनेता का नहीं--विशेषज्ञ का; राजनेता का नहीं--वैज्ञानिक का; राजनेता का नहीं--बुद्धिमत्ता का। और तब दुनिया एक और तरह की दुनिया होगी। लेकिन आज तो कल्पना करनी भी कठिन है।

राजनेता का कुल धंधा इतना है कि किसी भी तरह तुम्हारी छाती पर बना रहे। और न केवल तुम्हारी छाती पर बना रहे, बल्कि तुम्हें यह भी समझाता रहे कि अगर वह तुम्हारी छाती से उतर गया, तो तुम्हारा बड़ा नुकसान होगा। तुम्हारे ही हित में वह तुम्हारी छाती पर बैठा है! राजनेता का इतना ही काम हैः तुम्हें चूसता रहे, और तुमसे कहता रहे कि यह तुम्हारे ही हित में हो रहा है।

एक साहब ने एक आलसी और कामचोर आदमी को नौकर रख लिया। वह नौकर कोई और नहीं, चुनाव में हारा हुआ एक नेता ही था। एक दिन उन्होंने नौकर से कहाः जाओ, बाजार से सब्जी ले आओ। नौकर ने कहाः साहब, मैं इस शहर में नया आया हूं। कहीं गुम हो जाऊंगा। यह सुन कर मालिक ने खुद ही बाजार से जाकर सब्जी खरीदी और नौकर से कहाः लो, अब इसे पकाओ। इस पर नौकर ने कहाः साहब, इस गैस के चूल्हे की मुझे आदत नहीं। कहीं सब्जी जल गई तो? यह सुन कर मालिक ने खुद ही सब्जी पका कर नौकर से कहाः अब खाना खा लो! नौकर ने बड़े सहजभाव से कहाः हुजूर, हर बात पर न कहना अच्छा नहीं लगता! आप कहते हैं तो खा लेता हूं!

तुम पूछते होः "राजनीति क्या है?"

जरा चारों तरफ आंख खोलो। जहां धोखा देखो, समझना वहीं राजनीति है। जहां बेईमानी देखो, वहीं समझना राजनीति है। जहां जेब कटती देखो, समझना वहीं राजनीति है। जहां तुम्हारी गर्दन को कोई दबाए और कहे कि मैं सेवक हूं, जन-सेवक हूं--समझना कि वहीं राजनीति है।

ध्यान रखनाः गर्दन कोई सीधी नहीं दबाता। लोग पैर दबाने से शुरू करते हैं। फिर बढ़ते-बढ़ते, बढ़ते-बढ़ते गर्दन तक पहुंच जाते हैं! पहले सर्वोदय से शुरू करते हैं! सर्वोदय यानी पैर दबाओ--कि हम सेवा करने आए। अब सेवा करने को कोई मना भी नहीं करता। कि ठीक है भाई! सर्वोदयी है, करने दो। फिर वह बढ़ते-बढ़ते गर्दन दबाएगा। लेकिन तब तक बहुत देर हो जाती है।

तुम्हारी गर्दनों पर बहुत लोग फंदे कसे बैठे हैं। और तुम एक फंदे से छूटते हो, तो दूसरे में गिर जाते हो। तुम एक जेल से निकलते हो, दूसरी जेल में भर्ती हो जाते हो।

राजनीति की व्यर्थता को समझो। और राजनेता को इतना आदर देना बंद करो। क्या कारण है कि राजनेता को इतना सिर पर उठाए फिरते हो? यह क्षुद्र, क्रूर शक्ति की पूजा है। यह हिंसक संगीनों की पूजा है। राजनेता की ताकत क्या है? क्योंकि अब संगीनें उसके हाथ में हैं।

सत्ता की पूजा तुम्हारे भीतर इस बात की खबर देती है कि न तो तुम्हें संस्कार है, न तुम्हें समझ है।

आने दो राजनेताओं को, जाने दो राजनेताओं को। उपेक्षा करो। राजनेताओं की जितनी उपेक्षा की जाए, उतना अच्छा है--कि मोरारजी देसाई आएं, तो न कोई भीड़ इकट्ठी हो, न कोई फूलमालाएं पहनाए। आएं और चले जाएं! तो उनको पता चले कि गए दिन; लद गए दिन! मगर तुम हो तमाशबीन। तुम चले! जहां भीड़ चली वहां तुम चले! और तुम्हारी भीड़ शक्ति देती है राजनेताओं को। इस भीड़ को विदा करो।

कहीं सत्संग में बैठो। कहीं कोई हरिगुण गाता हो, वहां बैठो। कहीं राम की चर्चा होती हो, वहां बैठो। कहीं चार दीवाने बैठ कर प्रभु-चर्चा में संलग्न हों, वहां डूबो। कुछ प्रेम के गीत गाओ। कुछ करुणा के कृत्य करो। कुछ ध्यान में डुबकी लगाओ। समय ऐसी जगह लगाओ। राजनीति को अपेक्षित करो; उपेक्षा दो। इसी को मैं विद्रोह कहता हूं।

मैं राजनीति के विपरीत क्रांति नहीं सिखाता; विद्रोह सिखाता हूं। राजनीति की तरफ से पीठ मोड़ लो। ये राजनेता अपने आप उदास और व्यर्थ हो जाएं। इनको पता चल जाए कि लोगों को अब कोई रस नहीं रहा। तुम्हारा जितना रस इनमें कम हो जाएगा, उतना ही इनका बल कम हो जाएगा। जितना इनका बल कम हो जाएगा, उतना राजनीति की तरफ दौड़ने वाले लोगों की संख्या कम हो जाएगी। और धीरे-धीरे अपने जीवन को अपने हाथ में लो।

मैं राज्य की सत्ता के पक्ष में नहीं हूं। इसलिए मैं समाजवाद-विरोधी हूं। समाजवाद-विरोधी इसलिए नहीं हूं कि मैं नहीं चाहता कि गरीब दुनिया में मिट न जाएं। समाजवाद-विरोधी इसलिए हूं कि समाजवाद राजनेता के हाथ में पूरी सत्ता दे देता है। मैं चाहता हूं कि लोग सत्ता अपने हाथ में वापस ले लें।

जिंदगी अपनी है, उसे जीओ; जितने सुंदर ढंग से जी सको, जीओ। उसे राज्य पर मत छोड़ो।

और राज्य के हाथ में शक्ति को इकट्ठा मत होने दो। राज्य की इच्छा यही है कि बैंकों का भी राष्टीकरण हो जाए, कारखानों का भी राष्टीकरण हो जाए, जमीनों का भी राष्टीकरण हो जाए। और आज नहीं कल वे कहेंगे कि लोगों का भी राष्टीकरण हो जाए! वही हो रहा है।

मैं स्वतंत्रता का पक्षपाती हूं। कोई चीज के राष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। लोगों को मुक्त करो। द्वार खोलो देश के, सारी दुनिया के लोगों को निमंत्रित करो कि आओ, सहयोग दो। अपना विज्ञान लाओ। अपना उद्योग लाओ। अपनी तकनीक लाओ। अपना धन लाओ। दुनिया में धन है बहुत।

अमरीका ने अरबों-खरबों डालर सारी दुनिया में लगा रखे हैं। भारत में केवल एक प्रतिशत अमरीकी पूंजी है, जब कि भारत में कम से कम बीस प्रतिशत होनी चाहिए। मगर हम दरवाजे नहीं खोलते। हम ऐसे भयभीत हैं!

यह देश संपन्न हो सकता है, सुख से भर सकता है। यह सारी पृथ्वी संपन्न हो सकती है, सुख से भर सकती है। लेकिन धीरे-धीरे इसकी बागडोर वैज्ञानिक, दार्शनिक, संत के हाथ में जानी चाहिए।

राजनेताओं का समय लद गया। राजनीति को नमस्कार करो, विदा करो।

एक राजनेता चुनाव में खड़े हुए हैं। किसी मतदाता से वोट मांग रहे हैं। मतदाता ने पूछाः क्या आप किसी जिम्मेदार व्यक्ति का नाम बता सकते हैं, जिससे आपके चाल-चलन के बारे में पता लगाया जा सके? क्यों नहीं, राजनेता ने कहाः यहीं के थानेदार से पूछ लो, जिन्होंने मुझे मेरे अच्छे चाल-चलन के लिए तीन माह पहले ही छोड़ दिया था!

सब तरह के अपराधी राजनीति के झंडे के नीचे इकट्ठे हैं।

राजनीति अपराधों को सुंदर-सुंदर रंग और सुंदर-सुंदर मुखौटे पहनाने की कला है।

तुम मुझसे पूछते हो रवींद्र, राजनीति क्या है? उससे पूछते हो, जिसको राजनीति का क ख ग भी पता नहीं! ऐसे कठिन प्रश्न मुझसे मत पूछा करो; इनमें मेरा रस नहीं है। मुझसे पूछोः धर्म क्या है? मुझसे पूछोः जीवन क्या है? मुझसे पूछोः प्रेम क्या है? मुझसे पूछोः परमात्मा क्या है?

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

मेरे हांसे मैं हंसूं

साईं बड़ो सिलावटो, जिण आ काया कोरी।
खूब रखाया कांगरा, नीकी नौ मोरी।।
"लालू" क्यूं सूत्यां सरै, बायर ऊबो काल।
जोखौ है इण जीवनै, जवरो घालै जाल।।
ऊमर तो बोली गई, आगे ओछी आव।
बेड़ी समंदर बीच में, किण बिद लगसी न्याव।।
"लालू" ओजी आंधलो, आगैं, अलसीड़ा।
झरपट बावै सरपणी, पिंड भुगतै पीड़ा।।
निरगुण सेती निसतिया, सुरगुण सूं सीधा।
कूड़ा कोरा रह गया, कोई बिरला बीधा।।
पिरथी भूली पीवकूं, पड़या समंदरा खोज।
मेरे हांसे मैं हंसूं, दुनिया जाणै रोज।।
भली बुरी दोनूं तजो, माया जाणो खाक।
आदर जाकूं दीजसी, दरगा खुलिया ताक।।

यह जीवन क्या है? केवल एक पहेली है;
यह यौवन क्या है? विस्मृति की रंगरेली है;
यह आत्मज्ञान तो भ्रम है, भ्रम है, भ्रम है!
ममता रहती है निशि-दिन यहां अकेली!

जी भर कर मिल लो आज, ठिकाना कल का?
युग का वियोग, संयोग एक ही पल का?

जग क्या है? उसको जान नहीं पाया हूं,
मैं निज को भी पहचान नहीं पाता हूं,
जग है तो मैं हूं, मैं हूं तो यह जग है,
जग मुझ में, मैं भी जग में मिल जाता हूं।

यह एक समस्या, कठिन जिसे सुलझाना!
सुलझाने वाला हाय बना दीवाना!

दीवानापन है पाप? नहीं जीवन है;
ज्ञानी का केवल ज्ञान व्यर्थ क्रंदन है;
ममता पर प्रति पल हंस-हंस कर घुल-घुल कर
मरने वाले का यहां मृत्यु ही धन है;

कामना कसक है और तृप्ति सूनापन;
हंसना ही तो है मृत्यु, रुदन है जीवन!
वैभव-सागर का बूंद-बूंद उत्पीड़न,
आहों के जग का प्रति कण पुलकित स्पंदन--
नादान विश्व क्या समझ सकेगा इसको?
मर मिटने में ही अरे यहां है जीवन!

चातक से सीखो तड़प-तड़प मर जाना;
सीखो पतंग से निज अस्तित्व मिटाना!

मधुकर क्या जाने प्रेम? प्रेम है तड़पन!
उन्माद-भरा है दो प्राणों का बंधन;
कलिका का ले सर्वस्व, नष्ट कर उसको
उड़ जाने में ही है मधुकर को पुलकन!

रस में मिल जाना ही है रस का पीना;
जो मिट न सका वह नहीं जानता जीना!

लेना पल भर का, युग-युग भर का देना,
निज का देना ही है जीवन का लेना;
बाजार उठ रही, और दूर जाना है,
जितना जी चाहे कर लो लेना-देना!

उर की लाली से मुख की कालिख धो लो
सर आज हथेली पर है बोलो बोलो!

मस्ती में भरी हुई गाफिल की
मन बात चलाता और अभी मंजिल की
चलना है हमको बरबस जाना होगा
फिर क्यों रह जाने पाए दिल में दिल की?

मैं समय-सिंधु में डुबा चुका अपनापन!
कल एक कल्पना और आज है जीवन!

जीवन एक तो वह है जो हम जानते हैं; वह सरासर स्वप्नवत है। एक और जीवन है जो उन्होंने जाना जो जागे हैं। उस जीवन का नाम ही ईश्वर है।

ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है; वास्तविक जीवन की अनुभूति का नाम है। संसार का कोई अस्तित्व नहीं; सोए हुए आदमी के सपनों की भीड़ है।

ऐसा समझो, संसार है सोए हुए आदमी की कल्पना-जाल का नाम और ईश्वर है जागे मनुष्य की प्रतीति, साक्षात्कार।

जो है वही है। अगर तुम सोए हो तो सपने फैल जाएंगे, सपने छा जाएंगे। जो है, उस पर सपने सवार हो जाएंगे। तुम जागे हो, सपने हट जाएंगे। जो है, जैसा है, वैसा प्रकट हो जाएगा।

नींद क्या है? अहंकार नींद है। मैं भिन्न हूं, मैं पृथक हूं, मैं अलग हूं, मेरा अपना निज का अस्तित्व है--ऐसी प्रतीति निद्रा है। फिर शेष सारे उपद्रव इस प्रतीति से ही खड़े होते हैं। फिर मैं से ममता होती है। फिर मैं से माया होती है। फिर मैं के फैलाव का कोई ओर-छोर नहीं है। जिसे जागना है, उसे मैं को जड़ से काट देना होगा।

चातक से सीखो तड़प-तड़प मर जाना
सीखो पतंग से निज अस्तित्व मिटाना
रस में मिल जाना ही है रस का पीना
जो मिट न सका वह नहीं जानता जीना

मिटने की कला धर्म है। अपने को बिल्कुल नेस्तनाबूद कर देने की कला धर्म है। अपने को ऐसे मिटा देना है जैसे बूंद सागर मैं गिर जाती है और खो जाती है; कि बीज भूमि में गिर जाता है और विनष्ट हो जाता है। पर देखना राज, रहस्य, चमत्कार! मरे हुए बीज से उगता है वृक्ष। मृत्यु से अमृत का पौधा निकलता है। बीज में तो कुछ भी न था, वृक्ष मैं बहुत कुछ होगा। रसधार बहेगी। हवाओं में नर्तन होगा। बदलियों से प्रेमालाप होगा। चांद-तारों से गुफ्तगू होगी। सूरज से छेड़छाड़ होगी। फूल खिलेंगे। फल लगेंगे। पक्षी आवास करेंगे। थके-मांदे लोगों को छाया मिलेगी।

बीज में तो यह कुछ भी नहीं था। बीज तो व्यर्थ था। अगर बीज की कोई सार्थकता थी तो इतनी ही थी की वृक्ष बन जाए। वृक्ष बने तो सार्थक, बीज रह जाए तो व्यर्थ। मनुष्य भी परमात्मा बन जाए तो सार्थक, मनुष्य ही रह जाए तो व्यर्थ।

मनुष्य बीज है; उसमें बहुत कुछ होने की संभावना है। मनुष्य पर अपनी इतिश्री न मान लेना, अंत न मान लेना। मनुष्य अंत नहीं, प्रारंभ है। मनुष्य समाप्ति नहीं है; मनुष्य के पार जाना है, अतिक्रमण करना है। अपने से ऊपर उठने की जो आकांक्षा है, वही सत्य की खोज है--वही संन्यास है।

फ्रेडिक नीत्शे ने कहा है, वह दिन सबसे अभागा दिन होगा मनुष्य के इतिहास में जब आदमी अपने अतिक्रमण की आकांक्षा को भूल जाएगा; जब आदमी अपने से तृप्त हो जाएगा; जब आदमी का तीर चढ़ेगा नहीं

प्रत्यंचा पर, निकलेगा नहीं अज्ञात की यात्रा को; जब मनुष्य मान लेगा कि जो मैं हूं बस काफी हूं। जिस दिन मनुष्य इस भांति तृप्त हो जाएगा, उसे नीत्शे ने सबसे अभागा दिन कहा है।

और वह अभागा दिन लगता है करीब आने लगा। क्योंकि बहुत लोग अपने से तृप्त मालूम होते हैं। कमा लिया कुछ धन, बैंक में कुछ पूंजी इकट्ठी हो गई, बना लिया मकान। पत्नी है, बच्चा है, पद-प्रतिष्ठा है--और बस जीवन की समाप्ति हो गई। अगर यही जीवन है तो होना बिल्कुल व्यर्थ है। क्योंकि पूंजी पड़ी रह जाएगी और तुम्हारी अरथी उठेगी। और पत्नी-बच्चे चार दिन बाद भूल जाएंगे कि तुम कभी थे भी। तुम्हारा कोई चिह्न भी समय की रेती पर छूट नहीं जाएगा। पानी पर खींची गई लकीरों की तरह तुम मिट जाओगे।

नहीं; यही जीवन नहीं है। जीवन की एक और दिशा है, एक और आयाम है। एक शाश्वत जीवन भी है। और दूर नहीं बहुत, यहीं पास है। जरा टटोलो, जरा खोजो।

"लाल" के आज के वचन उसी जीवन की तरफ इशारा करते हैं। जो समझदार हैं, जिनमें थोड़ा बोध है, वे तो इन सीधे-सादे वचनों में से भी नाव बना लेंगे उस पार जाने ताली। हंसा तो मोती चुगैं! कंकड़-पत्थर भी पड़े हों, तो भी हंस तो मोती चुग लेता है। सीधे-सादे वचन हैं। उपनिषदों, वेदों जैसी दुरूहता नहीं है। धम्मपद, ताओ-तेह-किंग, वैसी सैद्धांतिक उड़ान नहीं है। सीधे-सादे ग्राम्य वचन हैं। पर गांव की सोंधी सुगंध भी है उनमें, जो परिष्कृत उपनिषदों में नहीं हो सकती। गांव की ताजगी भी है उनमें, जो बुद्ध के वचनों में नहीं हो सकती। सीधे-सादे सामान्य जन का, शब्दों के आडंबर से रहित, सिद्धांतों के जाल से मुक्त--दर्पण है उनमें। चुन सको तो मोती चुन सकते हो।

साईं बड़ो सिलावटो, जिण आ काया कोरी।

कहते हैंः परमात्मा बड़ा कारीगर है। सिलावटो! बड़ा सर्जक है! पत्थर में मूर्ति बना दे, ऐसा मूर्तिकार है। साईं बड़ो सिलावटो, जिण आ काया कोरी! जिसने मनुष्य की यह देह रची है।

इस जगत में मनुष्य की देह सबसे बड़ा चमत्कार है। ऐसे तो चमत्कार ही चमत्कार हैं। ऐसे तो वृक्ष की देह भी कुछ कम चमत्कार नहीं। ऐसे तो आकाश में उड़ते हुए पक्षी की देह भी कुछ कम चमत्कार नहीं। पर मनुष्य बेजोड़ है! उसकी देह में जितने फूल संभव हैं उतने किसी और देह में नहीं। उसके भीतर जितने खजाने भरे हैं, उतने किसी और देह में नहीं। उसमें जितने फल लग सकते हैं, उतने किसी और वृक्ष में नहीं। और वह जितना ऊंचा उड़ सकता है, कोई पक्षी न कभी उड़ा है, न उड़ सकेगा। वह जितना गहरा जा सकता है, कोई मछली न कभी गई है, न जा सकेगी।

मनुष्य अपूर्व है, अद्वितीय है। हिमालय के उत्तुंग शिखर भी उसकी चेतना के शिखर के सामने टीले-टाले हैं। चांद-तारों की रोशनी भी उसके भीतर ध्यान से जन्मी हुई रोशनी के सामने फीकी है, अंधेरी है। यह विराट सूरज जो रोज सुबह उगता है और जिससे इस पृथ्वी का सारा जीवन चलता है, यह कुछ भी नहीं, जिन्होंने भीतर आंख खोली है, उन्होंने ऐसे हजार-हजार सूरज एक साथ उगते देखे हैं। उन्होंने उसका जल्वा देखा है। उन्होंने उसकी रोशनी देखी है।

शराब पी कर मस्त हुए लोग तुमने देखे हैं, मगर वह मस्ती तो अभी है और अभी उतर जाती है, क्षण भर को है। लेकिन जिन्होंने उसको पीया है, उनकी मस्ती फिर चढ़ी सो चढ़ी, फिर चढ़ती ही जाती है, बढ़ती ही जाती है! फिर कोई उतार नहीं है। उस ज्वार का कोई भाटा नहीं है। उस बाढ़ में फिर कभी कोई ग्रीष्म ऋतु नहीं आती कि सुख जाए धार।

साईं बड़ो सिलावटो...

लाल कहते हैंः बड़ा सिलावट है परमात्मा, पत्थर में फूल उगा देता है। पत्थर में प्राण डाल देता है। ऐसे तो मनुष्य मिट्टी है।

उर्दू में, अरबी में, हिब्रू में मनुष्य के लिए शब्द है--"आदम", आदमी। आदम का अर्थ होता हैः मिट्टी। क्योंकि परमात्मा ने मिट्टी से आदमी को रचा और फिर उसमें सांस फूंकी। अंग्रेजी में शब्द है--ह्यूमन। ह्यूमन का अर्थ होता हैः मिट्टी, ह्यूमस। ऐसे तो आदमी मिट्टी है। और अगर हम आदमी में तलाश न करें, खोज न करें, मोती न चुगें, तो मिट्टी ही रह जाता है। मिट्टी में मिट्टी एक दिन गिर जाती है। कब्र में सब समा जाता है। कुछ बचता नहीं। लेकिन अगर हम खोज करें, अगर हम थोड़ा श्रम उठाएं, अगर हम अपनी ही पहाड़ियों पर चढ़ें और अपने ही प्रशांत महासागरों में डुबकी लगाएं, तो बहुत-बहुत मोती हाथ लगते हैं। उन मोतियों में सबसे बड़ा जो मोती है, सबसे बड़ा चमत्कार जो है, वह यह कि मृण्मय में चिन्मय छिपा हुआ है। मिट्टी में अमृत का आवास है। देह मिट्टी है और उसके भीतर परमात्मा छिपा है। मंदिर मिट्टी है मगर मंदिर का देवता मिट्टी नहीं है।

पर देवता से तो कितने कम लोगों की पहचान होती है! लोग तो दर्पण में देख कर अपनी पहचान करते हैं। दर्पण में तो तुम्हें जो दिखाई पड़ता है वह मिट्टी की छाया है। दर्पण में तो मिट्टी की ही छाया बन सकती है। तुम्हारी छाया दर्पण में कभी नहीं बन सकती। ऐसा कोई दर्पण नहीं है जिसमें तुम्हारी छाया बन सके। कोई दर्पण तुम्हारी चेतना का प्रतिबिंब नहीं पकड़ सकता। चेतना कोई वस्तु तो नहीं कि उसका प्रतिबिंब हो सके।

और दर्पण से ही हमें अपनी पहचान है। अलग-अलग तरह के दर्पण हमने निर्मित किए हैं। कांच का दर्पण ही अकेला दर्पण नहीं है। दूसरों की आंखों में जब तुम झांकते हो और उनसे अपने संबंध में कुछ सूत्र लेते हो, वह दर्पण भी कांच का ही दर्पण है। तुम्हें अपने संबंध में जो पता है वह तुमने दूसरों से इकट्ठा किया है, उनके मंतव्य हैं। किसी ने कहा प्यारे हो, किसी ने कहा सुंदर हो; तुम्हारी छाती फूल गई। और किसी ने कहा कुरूप हो, और किसी ने कहा गंदे हो; और तुम्हारे प्राण सिकुड़ गए। और किसी ने फूलमालाएं पहना दीं और किसी ने पत्थर मारे और गालियां दीं... । और इस तरह तुम चारों तरफ से अपने संबंध मैं मंतव्य इकट्ठे कर लेते हो। वे सारे मंतव्य बहुत विरोधाभासी हैं। उनमें मित्रों के मंतव्य हैं, शत्रुओं के मंतव्य हैं, तटस्थों के मंतव्य हैं। इसलिए तुम एक बिगूचन हो। तुमने सब तरह के मंतव्य तो इकट्ठे कर लिए, उनमें कोई तालमेल बिठालना मुश्किल है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। आज कुछ कहता है, कल कुछ कहता है।

तुम्हारे भीतर इतने विरोधाभासी वक्तव्य तुम्हारे ही संबंध में इकट्ठे हो गए हैं कि तुम एक विभ्रम हो गए हो। तुम एक भीड़ हो विचारों की, जिसमें कुछ तय करना मुश्किल है। तुमने बहुत दर्पणों में झांका है और सब दर्पणों से तस्वीरें इकट्ठी कर ली हैं। तुम कभी दर्पणों की ऐसी प्रदर्शनी में गए हो, जहां बहुत तरह के दर्पण होते हैं। एक में तुम लंबे दिखाई पड़ते हो, बहुत लंबे। और एक में तुम ठिगने दिखाई पड़ते हो, बहुत ठिगने। और एक में मोटे दिखाई पड़ते हो, बहुत! और एक में दुबले दिखाई पड़ते हो, बहुत। और एक में बिल्कुल कुरूप और एक में अति सुंदर।

यही तुम्हारी दशा है। चारों तरफ से तुम तस्वीरें इकट्ठी कर रहे हो अपनी। अलबम बना लेते हो। उसी अलबम को तुम अपना आत्मज्ञान समझते हो। वह तुम्हारा आत्मज्ञान नहीं है। जो स्वयं को नहीं जानते हैं, वे तुम्हारे संबंध में क्या कहेंगे? और दूसरे तुम्हारे संबंध में कुछ कहना भी चाहें तो क्या कह सकते हैं? तुम्हारी अंतरात्मा में उनका प्रवेश नहीं है। वहां तो केवल तुम ही जा सकते हो, तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं जा सकता है। इसलिए वहां जाने के लिए आंख बंद करनी पड़ती है।

आंख खोल कर सारी दुनिया से परिचय होता है; अपने से परिचय आंख बंद करके होता है। विचार के द्वारा सारी दुनिया समझी जाती है; निर्विचार के द्वारा स्वयं को समझा जाता है। मन उपयोगी है जगत को समझने में; स्वयं को समझने में मन की कोई अर्थवत्ता नहीं है, मन को एक तरफ हटा कर रख देना पड़ता है।

मन बहिर्मुखी है--और तुम भीतर हो, बहुत भीतर हो! मन की कोई अंतर-गति नहीं है। वह सिर्फ बाहर जाना ही जानता है; वह पीछे लौटना जानता ही नहीं। मन के पास कोई रिवर्स गियर नहीं है।

फोर्ड ने जब सबसे पहले अपनी कार बनाई थी, उसमें रिवर्स गियर नहीं था। ख्याल में ही नहीं आया था। तो उसकी जो पहली कार थी, अगर अपने घर लौटना हो या गाड़ी को पीछे लाना हो तो बड़े चक्कर लगाने पड़ते थे। यह तो उसे बाद में ख्याल आया कि इसमें रिवर्स गियर भी हो सकता है। जरा सा पीछे लौटना हो तो मील भर का चक्कर लगा कर आओ, कि दो मील का चक्कर लगा कर आओ, यह तो बहुत महंगा धंधा है। रिवर्स गियर तो बाद में आया, लेकिन आदमी के मन में रिवर्स गियर अभी भी नहीं है और कभी नहीं होगा।

मन तो बस बाहर ही जाता है। मन सिर्फ दूर ले जाता है। जितना तुम्हारे पास मन है उतने ही तुम अपने से दूर।

इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः अ-मनी दशा में कोई स्वयं से साक्षात्कार करता है, मन-मुक्त होकर, मन से शून्य होकर, मन-रिक्त होकर! और तब दिखाई पड़ता है कैसा चमत्कार है, कैसा अदभुत चमत्कार है! भरोसे योग्य नहीं। मिट्टी की इस काया में--अमृत का वास! मिट्टी के इस बर्तन में--अमृत भर दिया! सोने का बर्तन होता, हीरे-जवाहरात जड़े होता, तोशायद हम सोचते भी कि इसके भीतर अमृत होगा। मिट्टी की इस देह में, जो मिटी से बनी और मिट्टी में गिर जाएगी... और जीवन की परम संपदा भर दी!

शायद यह देह मिट्टी की है, इसलिए हमें स्मरण भी नहीं आता। सोने की देह होती, तो तुम शायद भीतर टटोलते कि जब देह सोने की है तो भीतर पता नहीं और खजाने पड़े हों। देह तो मिट्टी की है, सो तुम भीतर जाते नहीं और बाहर ही बाहर तलाश करते रहते हो। और बाहर मिलेगा नहीं, क्योंकि जो है वह भीतर है। खूब गहरे में दबाया है। उतनी गहरी खुदाई अपने भीतर करनी होगी। उस खुदाई का नाम ही ध्यान है।

ये सूत्र ध्यान से जन्में हैं--

साईं बड़ो सिलावटो...

मगर हैं गांव के ग्रामीण आदमी के सूत्र। गांव में जो पत्थरों को गढ़ता है, उसको "सिलावट" कहते हैं। परमात्मा को कह रहे हैं कि तू भी खूब बड़ा पत्थरों का कारीगर है--

... जिण आ काया कोरी।

मिट्टी-पत्थर से तूने मनुष्य की यह देह बना दी और इस देह के भीतर छिपा दिया खजानों का खजाना, रहस्यों का रहस्य, काव्यों का काव्य! जहां से गीताएं फूटती हैं और कुरान जन्मते हैं!

खूब रखाया कांगरा, नीकी नौ मोरी।

कैसे कंगूरे तूने उठाए हैं भीतर, कैसे शिखर, गौरीशंकर! मंदिर पर कंगूरे होते हैं, मनुष्य के मंदिर पर भी कंगूरे हैं। कंगूरों पर स्वर्ण चढ़ाया होता है। मनुष्य के भीतर भी स्वर्ण के कंगूरे हैं। मगर बहुत थोड़े से सौभाग्यशाली लोग हैं जो अपने मंदिर के कंगूरों की तरफ आंख भी उठाते हैं। उनसे पहचान करनी, उन तक पहुंच जाना तो दूर; तुम्हें बोध ही नहीं हो पाता कि तुम कौन थे और मर जाते हो। तुम ऐसे ही व्यर्थ की आपा-धापी में मर जाते हो। चीजें इकट्ठी कर लेते हो और मर जाते हो। आत्मा गंवा देते हो और चीजें इकट्ठी कर लेते हो।

जीसस ने कहा हैः जो अपने को बचाएगा, सब गंवा देगा; और जो अपने को गंवाने को राजी है, सब बचा लेगा।

तुम जिंदगी भर चीजों को बचाते हो, और चीजों को बचा कर तुम सोचते हो कि तुम अपने को बचा रहे हो। तुम सोचते हो जितनी चीजें तुम्हारे पास होंगी, उतने ही तुम सुरक्षित रहोगे। चीजें तो बच जाएंगी, तुम नहीं बचोगे।

स्वयं को बचाने का तो रास्ता बड़ा अनूठा है--बड़ा बेबूझ, बड़ा अटपटा, बड़ा उलटा! मिटाने की कला आनी चाहिए, बचाने की नहीं। अपने को समर्पित करने की कला आनी चाहिए, संघर्ष की नहीं।

धर्म का रास्ता संघर्ष का नहीं है, संकल्प का नहीं है--समर्पण का है। अपने को डुबा देने का, अपने कोझुका देने का है। और जोझुकता है उसे कंगूरे दिखाई पड़ते हैं। जोझुकता है उसे अपने भीतर के गौरीशंकर का दर्शन होता है--उत्तुंग शिखर, जिन पर जमी है कुंवारी बर्फ, जो न कभी पिघली और न पिघलेगी। उन ऊंचाइयों से परिचित न होना, पैदा होना और न होने के बराबर है।

इसलिए जो व्यक्ति उन ऊंचाइयों से परिचित हो जाता है, उसे हमने द्विज कहा है। उसका दुबारा जन्म हो गया। उसे हमने ब्राह्मण कहा है, क्योंकि उसने अपने भीतर छिपे ब्रह्म को जान लिया। ब्राह्मण का जन्म से कोई संबंध नहीं और गले में यज्ञोपवीत डाल लेने से कोई द्विज नहीं हो जाता।

द्विज होने की तो बड़ी रासायनिक प्रक्रिया है। ध्यान से द्विज होता है कोई। ध्यान से एक नया जन्म होता है, क्योंकि अपनी नई प्रतीति होती है, अपनी नई प्रतिमा का बोध होता है, अपनी झलक मिलती है।

साईं बड़ो सिलावटो, जिण आ काया कोरी।

खूब रखाया कांगरा...

लाल कहते हैंः तूने भी गजब किया, छोटी सी देह और इतनी ऊंचाइयां, ऐसे कंगूरे, स्वर्ण-मंडित! तूने भी गजब किया, छोटी सी देह और ऐसी गहराइयां!

... नीकी नौ मोरी।

इसमें ऊंचे-ऊंचे कंगूरे भी दिए हैं, जिनके द्वारा जगत की ऊंचाइयों से संस्पर्श हो सके और इसमें नौ द्वार भी दिए हैं, जिनसे जगत की गहराइयों से भी संस्पर्श हो सके। शरीर में नौ छिद्र हैं। इन नौ छिद्रों के द्वारा हम पदार्थ के जगत से संबंधित होते हैं। जैसे नाक है, जैसे मुंह है, जैसे कान है, जैसे आंख है--ऐसे नौ छिद्र। इन नौ छिद्रों से हम जो बाहर है उससे परिचित होते हैं। जो हमसे नीचे है उससे परिचित होते हैं। ये नौ द्वार हैं, जिनसे हम परमात्मा का अभिव्यक्त रूप जान पाते हैं।

आंख के बिना रोशनी का पता न चलेगा। अंधे को लाख समझाओ, समझ न सकेगा। सिर पटको कितना ही, कितने ही गणित बिठाओ, कितनी ही भाषा जमाओ, अंधे को तुम रोशनी न समझा सकोगे। कैसे समझाओगे? और अंधा मान भी ले सिर्फ तुम्हें संतोष देने को, तो भी अंधे को कुछ पता नहीं हो सकेगा कि रोशनी क्या है।

रामकृष्ण कहते थे, एक अंधा आदमी अपने मित्र के घर भोजन करने गया। मित्र ने उसके स्वागत में खीर बनवाई थी। गरीब आदमी था, उसने कभी खीर न खाई थी। जब वह खीर खाया, खीर उसे बहुत पसंद आई। खूब बादाम-पिस्ता और केसर उसमें डाले थे। उसने पूछा अपने मित्र कोः यह क्या है, मुझे बहुत रुचिकर लगा, बहुत स्वादिष्ट लगा! मित्र ने कहाः खीर है। अंधे ने पूछाः खीर! खीर यानी क्या? खीर से मैं क्या समझूं?

मित्र पंडित था, शास्त्रों का ज्ञाता था। अंधे ने ऐसा प्रश्न उठा दिया तो मित्र के लिए चुनौती मिली। उसने कहाः समझा कर रहूंगा। कहाः खीर सफेद होती है। अंधे ने कहाः तुम पहेलियों पर पहेलियां बूझने लगे! मैं एक प्रश्न पूछता हूं; तुम और एक नई पहेली खड़ी कर देते हो। अब यह सफेद क्या बला है? सफेद यानी क्या?

मित्र ने कहाः सफेद नहीं जानते? एक बात मित्र देख ही नहीं रहा है कि अंधे आदमी से बात हो रही है। सफेद नहीं जानते, बगुले जैसा रंग! बगुला देखा है? बगुला जरूर देखा होगा, गांव में बहुत बगुले हैं!

उस अंधे आदमी ने कहा कि तुम मेरी मुश्किल बढ़ाए जाते हो। मुझे खीर का पता नहीं, मुझे सफेद का पता नहीं। अब यह बगुला और एक नई झंझट। यह बगुला कैसा होता है? कुछ इस तरह से कहो कि मेरी समझ में आए।

तब याद आया पंडित को कि अंधे को समझा रहा है। ऐसे हल नहीं होगा। तो उसने... अपना हाथ अंधे के पास ले गया, हाथ को मोड़ा और कहाः मेरे हाथ पर हाथ फेर। इस तरह बगुले की गर्दन होती है। उस अंधे आदमी ने अपने मित्र के हाथ पर हाथ फेरा और बड़ी प्रसन्नता से बोला, आनंदित होकर बोला कि अब मैं समझा, कि खीर मुड़े हुए हाथ की तरह होती है!

अंधे आदमी की जैसी समझ वैसी ही तो होगी न! आंख चाहिए। आंख नहीं है। आंख के द्वारा हम प्रकाश से जुड़ते हैं--और प्रकाश परमात्मा का बर्हिरूप है। ये चांद-तारे सब उसकी चादर पर जड़े हुए हैं, टिमटिमाते हीरे-जवाहरात हैं। यह उसकी नीली चादर, यह आकाश... । नौ द्वार हमें दिए हैं कि हम परमात्मा के अभिव्यक्त रूप से परिचित हो सकें, उसकी देह से परिचित हो सकें। कान के बिना नाद सुनाई न पड़ेगा। वीणा बजती रहेगी और तुम्हारे लिए कुछ भी न बजेगा। ऐसे नौ द्वार दिए हैं इस मिट्टी की देह में कि हम बाहर के जगत से परिचित हो सकें। और इसमें ऐसे कंगूरे भी हैं कि अगर हम ये नौ द्वार बंद कर लें और भीतर मुड़ें तो उन कंगूरों से परिचित हो सकें।

ये नौ द्वार दोहरे काम करते हैं। अगर खोलो, तो बाहर ले जाते हैं, अगर बंद करो तो भीतर ले जाते हैं। आंख खुले तो बाहर का दर्शन। कान खुले तो बाहर का नाद। आंख बंद हो तो भीतर का प्रकाश। कान बंद हो तो ओंकार।

इन नौ द्वारों पर सब कुछ निर्भर है। योग की सारी प्रक्रियाएं--इन नौ द्वारों को कैसे बंद किया जाए, ताकि हम भीतर के परमात्मा से परिचित हो सकें। जब बाहर वह इतना सुंदर है तो भीतर कितना सुंदर न होगा!

राबिया अपने झोपड़े में बैठी है--एक सूफी फकीर औरत; मीरा की कोटि की स्त्री; महावीर और बुद्ध की कोटि की स्त्री! और हसन नाम का फकीर उसके घर ठहरा था। हसन बाहर आया। सुबह हुई है, सूरज निकला है, पक्षी गीत गा रहे हैं, वृक्ष लहलहा रहे हैं। हवाओं में सुगंध है। सुबह की ताजगी, नयापन है।

हसन ने आवाज दीः राबिया, तू भीतर झोपड़े में बैठी क्या करती है? बाहर आ! देख, परमात्मा ने कितना सुंदर सूरज निकाला है और कैसे फूल खिल आए हैं रंग-बिरंगे! और आकाश में बदलियां तैर रही हैं। और बड़ा प्यारा मौसम है। परमात्मा ने बड़ी सुंदर सुबह को जन्म दिया है, तू बाहर आ राबिया, भीतर क्या करती है?

राबिया खिलखिला कर हंसी और उसने कहाः हसन, तुम्हीं भीतर आओ! जिसने सुबह बनाई, मैं भीतर बैठ कर उसे देख रही हूं। मैं मालिक को देख रही हूं। तुम उसके हाथ के खिलौने देख रहे हो, मैं उसी को देख रही हूं। तुम्हीं भीतर आओ। और जब बाहर इतना सुंदर है तो भरोसा रखो, मालिक इससे अनंतगुना सुंदर है।

हसन ने तो बात यूं ही कही थी। मगर राबिया जैसे व्यक्तियों से जब तुम बात करो तो उनकी तो छोटी-छोटी बात में से बात होती है, बात में से बात निकलती है। राबिया ने तो राज खोल दिया सारा। हसन रोने

लगा। भीतर आकर राबिया के चरणों पर गिर पड़ा और कहा कि मैंने तो यूं ही कहा था, लेकिन तूने मुझे सोते से जगा दिया।

राबिया ने कहा। व्यर्थ समय खराब न करो, आंख बंद करो! ये चरण भी मेरे जो तुम पकड़े बैठे हो, बाहर हैं। और ये आंसू भी जो गिर रहे हैं, ये भी बाहर हैं। हसन, देर न करो, क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं, क्षण भर का कोई भरोसा नहीं। आंख बंद करो, भीतर जाओ। चरण ही पकड़ने हैं तो उस मालिक के पकड़ो!

हमारे भीतर अनभिव्यक्त परमात्मा है और बाहर अभिव्यक्त परमात्मा है। बाहर उसका प्रकट रूप, भीतर उसका अप्रकट रूप। बाहर उसकी देह है और भीतर उसकी आत्मा। इस छोटी सी मिट्टी की काया में कैसा आयोजन है!

साईं बड़ो सिलावटो, जिण आ काया कोरी।

खूब रखाया कांगरा, नीकी नौ मोरी।।

"लालू" क्यूं सूत्यां सरै, बायर ऊबो काल।

लाल कहते हैंः "लालू" क्यूं सूत्यां सरै! कब तक सोया रहेगा? ऐसे ही सोते-सोते मिट जाना है? जागना नहीं है? "लालू" क्यूं सूत्या सरै! और सोते रहने से कुछ होने का नहीं है। क्या सरेगा? सोते रहने से कुछ बनेगा नहीं, खोएगा ही।

"लालू" क्यूं सूत्यां सरै, बायर ऊबो काल।

और जरा देख तो, बाहर मौत आकर खड़ी हो गई है। कब द्वार पर दस्तक दे देगी, कहा नहीं जा सकता। और तू यूं ही सो रहा है और यूं ही सोए-सोए समय गंवा रहा है!

सोने का अर्थ समझ लेना। जिसने भी ध्यान नहीं जाना, वह सोया हुआ है। ध्यान के बिना जागरण नहीं है। वह जो तुम सुबह रोज जागते हो उसको जागना मत समझ लेना; नहीं तो सभी बुद्ध होते। बुद्ध का अर्थ होता है जो जाग गया। जो तुम सुबह रोज जागते हो, वह जागने की भ्रांति है। तुम वही के वही हो। जो तुम सोए हुए होते हो, वही तुम जागे हुए होते हो। तुममें जरा भेद नहीं होता। सच तो यह है कि तुम जागे में कहीं ज्यादा बेईमान होते हो, ज्यादा चोर होते हो, ज्यादा धोखेबाज होते हो। सोते में तुम कहीं ज्यादा ईमानदार होते हो, ज्यादा सच्चे होते हो।

इसलिए तो मनोविश्लेषक तुम्हारे जागरण की तलाश नहीं करते। तुम्हारे मन में अगर कोई बीमारी हो, तुम्हारा चित्त अगर रुग्ण हो, अगर तुम विक्षिप्त हो, अगर मन किसी परेशानी से बहुत ज्यादा दब गया है, टूट गया है--तो मनोविश्लेषक तुम्हारे सपनों में तलाश करता है। मनोविश्लेषक तुम्हारे जागरण पर जरा भी भरोसा नहीं करता। क्योंकि तुम ऐसे धोखेबाज हो कि तुम औरों को तो धोखा देते ही हो, तुम अपने को भी धोखा दे लेते हो! तुम धोखे में ऐसे पारंगत हो गए हो! तुमने धोखे का शास्त्र ऐसा सीखा है कि तुम्हारे रोएं-रोएं में समा गया है। तो ऐसे नहीं कि तुम दूसरे को धोखा देते हो, दूसरे को देते-देते अपने को दे लेते हो। बहुत बार धोखा देते-देते, देते-देते, देते-देते तुम अपने को ही दे लेते हो। लोग दूसरों की जेब ही नहीं काटते, धीरे-धीरे अपनी भी काटने लगते हैं!

मनोविश्लेषक तुम्हारे जागरण पर जरा भी भरोसा नहीं करता। तुम क्या कहते हो, उसका कोई मूल्य नहीं मानता। वह तो कहता है अपने सपने बताओ। अपने सपने खोलो। अपने सपने उघाड़ो। क्योंकि तुम्हारे सपनों में तुम कहीं अभी ज्यादा सच्चे हो। तुमने अपने सपनों को अभी तक विकृत नहीं किया है। तुम्हारे सपनों में सभ्यता

की छाप नहीं पड़ी है। तुम्हारे सपनों में शिक्षा नहीं घुसी है। तुम्हारे सपनों में तुम्हारा सोच-विचार ज्यादा हेर-फेर नहीं कर पाता। तुम्हारे सपने अभी भी शुद्ध हैं, निर्दोष हैं।

तुम्हारे सपनों से तुम्हारी वास्तविकता के संबंध में मनोवैज्ञानिक पता लगाता है।

यह बड़ी अनूठी बात है। जागरण की तो वह फिकर ही नहीं करता, तुम्हारे सपनों की फिकर करता है।

जॉर्ज गुरजिएफ के पास जब भी कोई नये शिष्य आते थे तो पहला उसका काम था कि वह उनको इतनी शराब पिला देता... । अब तुम थोड़े हैरान होओगे कि कोई सदगुरु और शिष्यों कोशराब पिलाए! लेकिन गुरजिएफ के अपने रास्ते थे। हर सदगुरु के अपने रास्ते होते हैं। इतनी शराब पिला देता... पिलाए ही जाता, पिलाए ही जाता; जब तक कि वह बिल्कुल बेहोश न हो जाता, गिर न जाता, अल्ल-बल्ल न बकने लगता। जब वह अल्ल-बल्ल बकने लगता, तब वह बैठ कर सुनता कि वह क्या कह रहा है। उसी से वह निर्णय लेता उसके संबंध में कि कहां से काम शुरू करना है। क्योंकि जब तक वह होश में है तब तक तो वह धोखा देगा। तब तक मसला कुछ और होगा, बताएगा कुछ और। कामवासना से पीड़ित होगा और ब्रह्मचर्य के संबंध में पूछेगा। धन के लिए आतुर होगा और ध्यान की चर्चा चलाएगा। पद के लिए भीतर महत्वाकांक्षा होगी और संन्यास क्या है, ऐसे प्रश्न उठाएगा। भोग में लिप्सा होगी और त्याग के संबंध में विचार-विमर्श करेगा। क्यों? क्योंकि ये अच्छी-अच्छी बातें हैं और इन अच्छी-अच्छी बातों पर बात करने से प्रतिष्ठा बढ़ती है।

लोग अपनी सच्ची समस्याएं भी नहीं कहते। लोग ऐसी समस्याओं पर चर्चा करते हैं जो उनकी समस्याएं ही नहीं हैं; जिनसे उनका कुछ लेना-देना नहीं है। और अगर तुम चिकित्सक को ऐसी बीमारी बताओगे जो तुम्हारी बीमारी नहीं है तो इलाज कैसे होगा?

गुरजिएफ ठीक करता था, डट कर शराब पिला देता। और जब वह गिर पड़ता आदमी और अल्ल-बल्ल बकने लगता तब बैठ कर सुनता, उसके एक-एक वचन को सुनता, क्योंकि अब वह सच्ची बात बोल रहा है। अब होश-हवास तो गया, अब हिसाब-किताब तो गया। अब वह जो कहता है, उससे उसकी सचाई पता चलेगी। वह उसके आधार पर उसकी साधना तय करता। उसको पता ही नहीं चल पाता कभी कि उसकी साधना कैसे तय की गई।

गुरजिएफ बड़ा मनोवैज्ञानिक था! फ्रायड को तीन साल लग जाते हैं मनोविश्लेषण करने में, गुरजिएफ दो-तीन घंटों में निपटा लेता था; क्योंकि रोज-रोज सपनों की फिकर करो, पूछो और फिर भी आदमी इतना बेईमान है कि रात सपना एक देखता है सुबह दूसरा बताता है। और ऐसा भी नहीं है कि जान कर; थोड़े से हेर-फेर कर लेता है, थोड़े सुधार कर लेता है, थोड़े रंग लगा देता है। यह सब अनजाने हो रहा है, यह हमारी मूर्च्छा है।

तुम अपना कच्चा सपना भी नहीं कहते। तुम सपने में भी थोड़ा सा संशोधन कर लेते हो, संपादन कर लेते हो। और ऐसा नहीं है कि जान कर करते हो; बस अनजाने हो रहा है। यह सब मूर्च्छा में हो रहा है।

तुमने देखा, सुबह जब तुम जागते हो तो कितनी देर तक तुम्हें सपने याद रहते है? कुछ सेकेंड। बिल्कुल जब तुम सुबह-सुबह जागते हो, पहली जाग, अभी आंख खुली ही नहीं तब तुम्हारे पास सपने थोड़े से छाए रहते हैं। आंख खुली, क्षण भी नहीं बीत पाते, हाथ-मुंह धोया, दतुवन की, तब तक गए, सपने भूल-भाल गए। तुम्हारा मन इतनी जल्दी उनको हटा देता है कि कहीं कोई सत्य प्रकट न हो जाए। कहीं कोई बात सच में ही बाहर न आ जाए।

तुम्हारे सपनों की एक दुनिया है और तुम्हारे जागरण की दूसरी दुनिया है। मगर तुम्हारा जागरण झूठा है। जो लोग सच्चे रूप से जागे हैं उनके जागरण का एक लक्षण है कि उनको सपने नहीं आते। क्योंकि जो सच्चा है, उसने कुछ छिपाया नहीं, दबाया नहीं। जिसने कुछ छिपाया नहीं, दबाया नहीं, सपने आने को उसके पास कुछ बचा नहीं। सपने में वही आता है जो हम दबाते हैं और छिपाते हैं।

तुम्हें अपने पड़ोसी की पत्नी बड़ी सुंदर मालूम पड़ती है। दिन में तो तुम दबा जाते हो। दिन में तो तुम बहन जी, बहन जी कहते हो। रक्षाबंधन पर राखी भी बंधवा आते हो। शायद डर के कारण ही बंधवा आते हो। ऊपर से तो ऐसा लगता है कि इस स्त्री की रक्षा करोगे, लेकिन रक्षाबंधन बंधवा कर तुम अपनी रक्षा कर रहे हो! तुम अपने मन को यह कह रहे हो कि अब यह मेरी बहन हो गई। अब और तरह के ख्याल उठाना ठीक नहीं। अब इसके पैर छू लिए। अब और तरह के ख्याल उठाना ठीक नहीं। लेकिन रात सपने में तुम उसे ले भागते हो। सुबह उठ कर तुम भूल जाना चाहोगे यह, क्योंकि यह बात तुम्हारे अहंकार के विपरीत है कि तुम रात अपनी पड़ोसी की पत्नी को ले भागे। तुम्हारी पत्नी भी बरदाश्त नहीं करेगी यह; सपने में भी ले भीगोगे तो बरदाश्त नहीं करेगी। और तुम्हारा अहंकार भी बरदाश्त नहीं करेगा। जल्दी सपना तुम भुला देते हो। जागते से ही हम सपने को भुलाना शुरू कर देते हैं।

जिस दिन उपवास करोगे, उस रात सपना देखोगे--भोजन, भोजन, भोजन। जो दबाओगे, वही सपने में आएगा। लेकिन जिसने कुछ दबाया नहीं, जो अ-दमित जाग्रत भाव से जीता है, उसके स्वप्न समाप्त हो जाते हैं। और जिसके स्वप्न समाप्त हो गए, वही जागा हुआ है। वह जागने में तो जागा ही होता है; नींद में भी जागा होता है। इसलिए कृष्ण ठीक कहते हैं अर्जुन सेः "या निशा सर्वभूतायां तस्याम जागर्ति संयमी।" जो सबके लिए अंधेरी रात है, जो सबके लिए भयंकर निद्रा है, संयमी के लिए वह भी जागरण है। संयमी वहां भी जागा होता है।

संयम शब्द का अर्थ तुमने अपना बिठा लिया है। संयमी से तुम्हारा अर्थ होता है जिसने नियंत्रण किया है। संयम शब्द में ही कंटरेल और नियंत्रण आ गया है। संयम शब्द का वैसा अर्थ नहीं है। संयम बड़ा अदभुत शब्द है।

संयम का अर्थ होता हैः संतुलन, अति से मुक्ति। संयम का अर्थ होता हैः जैसे कोई सितारवादक अपने सितार के तार कसता है। बहुत ढीले रहें तार तो भी संगीत पैदा नहीं होता। और बहुत कस जाएं तो तार टूट जाते हैं। तारों की एक ऐसी भी दशा है जब न तो वे बहुत कसे होते हैं, न बहुत ढीले होते हैं। उस मध्य की दशा पर, उस मध्य की अवस्था में, उस मध्यम में, उस संतुलन में संयम है। उस संयम से संगीत पैदा होता है।

ऐसे ही जीवन का भी एक संयम है। न तो बहुत त्याग की तरफ झुका हुआ, न बहुत भोग की तरफ झुका हुआ--जो दोनों के मध्य में खड़ा है। तुमने नट को देखा है रस्सी पर चलते हुए? कभी-कभी बाएं झुकता है, कभी दाएं झुकता है--सिर्फ सम्हालने को। मगर सम्हला रहता है बीच में। अगर डर लगता है उसे कि बाएं ज्यादा झुक जाऊंगा तो गिर जाऊंगा, तो दाएं झुक जाता है ताकि संतुलन हो जाए। दाएं गिरने लगता है तो बाएं झुक जाता है, ताकि संतुलन हो जाए। मगर उसकी नजर एक बात पर रहती है कि बीच में रहूं, मध्य में रहूं।

बुद्ध ने अपने मार्ग को मज्झिम निकाय कहा है--मध्य का मार्ग। ठीक बीच में हो जाना। बुद्ध ने संयम की परिभाषा में कहा है कि जो ठीक मध्य में है, जो दो विपरीतों के बीच चुनाव नहीं करता, जो चुनाव-रहित है। कृष्णमूर्ति जिसको च्वाइसलेस कांशसनेस कहते हैं, चुनाव-रहित चैतन्य, वही मध्य अवस्था है।

वैसा मध्यस्थ व्यक्ति न तो दिन में डोलता है, न रात में डोलता है--डोलता ही नहीं। उसका डोलना गया। वही जागा हुआ है। जब तक तुम डोल-डोल जाते हो, जब तक तुम्हें चित्त यहां से वहां भटकाए फिरता है, तब तक तुम निद्रा में हो। तुम जागे हुए भी निद्रा में हो; बुद्ध जागे हुए तो जागे हुए होते ही हैं, सोए हुए भी जागे

हुए होते हैं। तुम्हारा जागरण भी सोने का ही एक ढंग है--आंखें खुले हुए सोने का ढंग है। और बुद्धों का... आंखें बंद किए भी वे जागते ही हैं।

आनंद बुद्ध के पास कोई चालीस-पचास साल रहा, सतत उनकी सेवा में रहा। उसे एक बात से बड़ी हैरानी होती थी कि बुद्ध जिस करवट सोते थे उसी करवट रात भर सोते थे। जहां रखा पैर वहीं रहा पैर। जहां रखा हाथ वहीं रहा हाथ। रात में हिलते ही नहीं। दिन में तो अडिग हैं ही, रात भी अडिग हैं। रात में तो करवट बदलनी होती है। आदमी थक जाता है एक ही करवट पड़े-पड़े। एक दिन आनंद ने पूछा कि मैं बहुत बार, कई बार जाग-जाग कर देख चुका हूं रात में, आप जैसे सोते हैं वैसे ही सोए रहते हैं! तो बुद्ध ने कहाः नासमझ, सोता कौन है? शरीर सोता है, मैं तो जागा ही रहता हूं। भीतर जागरण का दीया वैसा ही जलता रहता है जैसा दिन में। चौबीस घंटे सतत जागरण की धारा भीतर बहती रहती है।

उसी जागरण की बात लाल कह रहे हैं।

"लालू" क्यूं सूत्यां सरै...

सोया रहेगा? ऐसे कहीं काम सरेगा? ऐसे कहीं काम बनेगा? बिगड़ी को बना ले। अभी समय है थोड़ा-बहुत। अभी मौत द्वार पर तो खड़ी है मगर दस्तक नहीं दिया। इतनी थोड़ी देर कुछ सम्हाल ले।

... बायर ऊबो काल।

बाहर आकर खड़ी है मौत। और तुम यह मत सोचना, लालू अपने बाबत कह रहे हैं, लालू तुम्हारे बाबत भी कह रहे हैं। मौत खड़ी ही है द्वार पर, किसी भी क्षण गले को दबा लेगी। मगर आदमी की बड़ी से बड़ी भ्रांतियों में एक भ्रांति यह है कि सदा दूसरे मरते हैं, मैं तो नहीं मरता। आज रामलाल जी मर गए, कल कृष्णलाल जी मर गए, परसों कोई और मरा, मैं तो कभी मरता नहीं। तुम तो जाकर सभी को मरघट पहुंचा आते हो। तो तुम्हें एक भ्रांति बनी रहती है कि सदा दूसरा मरता है, मैं तो मरघट पहुंचाने का काम करता हूं। मैं तो अब तक मरा नहीं, शायद मैं अपवाद हूं।

तुम सोचते नहीं इस बात पर कि उन जिनको तुम मरघट पहुंचा आए हो, वे भी बहुतों को मरघट पहुंचा चुके थे। और जैसे तुम सोच रहे हो ऐसे वे भी सोचते थे। इस पृथ्वी पर कोई भी बचा नहीं। छोटे मर जाते हैं, बड़े मर जाते हैं, गरीब मर जाते हैं, अमीर मर जाते हैं। कमजोर, शक्तिशाली सब मर जाते हैं। मृत्यु सार्वजनीन है, सार्वभौम है। मृत्यु अपवाद नहीं मानती है।

"लालू" क्यूं सूत्यां सरै, बायर ऊबो काल।

जोखौ है इण जीवनै, जवरो घालै जाल।।

जरा सम्हल, बड़ा जोखम से भरा जीवन है। जोखौ है इण जीवनै! इस जीवन में बड़ा जोखम है। पल-पल जोखम है। जवरो घालै जाल! क्योंकि मौत ने ऐसा जाल फैला रखा है कि तू बच नहीं पाएगा। इधर बचा तो उधर फंसा, उधर बचा तो इधर फंसा। चारों तरफ जाल है।

मौत उसी दिन आ गई जिस दिन तुम जन्मे। जन्मने के साथ ही मौत घट गई। जन्म सिक्के एक पहलू, मौत दूसरा पहलू। एक पहलू हाथ में आ गया तो दूसरा भी हाथ में आ गया। अब देर-अबेर की बात है, साठ साल कि सत्तर साल, कुछ फर्क नहीं पड़ता, मौत आनी निश्चित है। मौत ने जन्म के साथ ही जाल फैला दिया। सच पूछो तो जन्म में फंस कर ही हम मौत में फंस जाते हैं। अब फंसने का कुछ बचा नहीं, हमारे पैर फंस ही चुके हैं।

जोखौ है इण जीवनै...

बहुत जोखम से भरी यह जिंदगी है। और जहां इतना जोखम है, वहां एक काम तो कर ही लो--जाग तो जाओ! सोए-सोए जन्मे, सोए-सोए जीए, सोए-सोए मर जाओगे। जन्मने और मरने के बीच में एक ही क्रांति की घटना घटने जैसी है, घटने योग्य है, घटाने योग्य है--वह है जागने की घटना।

जन्म और जीवन के बीच जो जाग जाता है, उसने पा लिया। उसने पा लिया सर्वस्व! उसने पा लिया धनों का धन, उसने पा लिया पदों का पद। जन्म और जीवन के बीच जो जाग गया, उसने शाश्वत जीवन का अनुभव कर लिया। फिर न उसका कोई जन्म है और न कोई मृत्यु है।

निर्बाध अक्षय गति लिए
मैं चल रहा, बस चल रहा।

यह पथ अजान कठोर है,
दिखता न ओर-छोर है,
रंजित अनिश्चय से यहां
हर सांझ है, हर भोर है।

हर काम में कुछ भूल,
हर कदम खतरे से भरा
हर दृष्टि कुछ सहमी हुई
हर सांस में कुछ शोर है।

सब जानता हूं पर वहीं
कुछ लग रहा ऐसा मुझे
साहस बला का मैं लिए
मुझ में बला का जोर है।

उर में असीमित दाह है
है रक्त में ज्वाला अमिट
निष्कंप-सा निर्धूम-सा
मैं जल रहा, बस जल रहा!
आकुल अतृप्त तृषा लिए
मैं जल रहा, बस जल रहा!

उन्माद सौरभ का भरे
निज में, कली है झूमती
होकर विकल मधु ज्वाल को

कोयल स्वरों में चूमती!

उन्माद मुझमें सुरभि का
संगीत है मधु ज्वाल का
पागल बसंत बयार-सी
हर चाह दिशि-दिशि घूमती!

जलती हुई हर भावना,
जलता हुआ हर प्यार है,
कुछ लग रहा ऐसा मुझे
जीवन स्वयं अंगार है।
अंगार--जिसमें पुलक है,
अंगार--जिसमें तरलता,
नित हास में नित अश्रु में
मैं गल रहा, बस गल रहा!
कोमल मृदुल करुणा लिए
मैं गल रहा, बस गल रहा!

बादल गला, पीकर उसे
प्यासी धरा मुसका पड़ी,
हिम की गलन से उमग कर
सरिता विसुध-सी गा पड़ी!

गलना नियति का क्रम यहां--
मैं जानता हूं क्या करूं
निःसीम भ्रम से ज्ञान की
सीमा विवश टकरा पड़ी!

कितनी घुटन, कितनी व्यथा,
कितनी विवशताएं लिए
मैं रच रहा सपने कि जो
रंगीन आशाएं लिए!
कैसी झिझक? कब सत्य को
कोई यहां पर पा सका?
इसलिए अपने आपको

मैं छल रहा, बस छल रहा!

जग के रुदन को हास से
मैं छल रहा, बस छल रहा!

है धूप कुछ हंसती हुई,
कुछ चांदनी मुसका रही,
सुकुमार फूलों की सुरभि
उल्लास-लास लुटा रही!

लेकर कुतूहल कम्प को
हर दिन यहां उत्सव नया,
संगीत तारों में विशुद्ध
है रात लोरी गा रही

पर क्या करूं, निज स्वप्न से
कब कौन उलझा रह सका?
हैं पैर रुकना चाहते
पर राह बढ़ती जा रही!

जो रुक गया वह मर गया
चलना अकेले जिंदगी
विश्वास भ्रम से खेलता
मैं चल रहा, बस चल रहा

निर्बाध अक्षय गति लिए
मैं चल रहा, बस चल रहा।

चले जा रहे हैं, बस चले जा रहे हैं। पक्का पता नहीं, कहां से आए हैं! पक्का पता नहीं, कहां जा रहे हैं! पक्का पता नहीं, क्यों जा रहे हैं! पक्का पता नहीं, कौन हैं! बस भीड़ चल रही है, भीड़ के साथ हम भी चल रहे हैं। बंधे हैं पंक्ति में भीड़ के सम्मोहन में।

जागो! ऐसे सोए-सोए चलने से बात सरेगी नहीं।

लाल ठीक कहते हैंः

"लालू" क्यूं सूत्यां सरै, बायर ऊबो काल।
जोखौ है इण जीवनै, जवरो घालै जाल।।

जोखम बहुत है इस जिंदगी में, तो एक जोखम और उठा लो--जागने की जोखम! जोखम बहुत है इस जिंदगी में, जहां मौत ही आने वाली है, एक जोखम और उठा लो--संन्यास की जोखम। जहां सब मिट ही जाने वाला है, एक जोखम और उठा लो--अपने को अपने हाथ से मिटाने की जोखम, ध्यान की जोखम, समाधि की जोखम। और जो उस जोखम को उठा लेता है, वह सब जोखम के पार हो जाता है।

ऊमर तो बोली गई, आगे ओछी आव।

लंबी उम्र तो जा ही चुकी। उसकी तो बोली लग ही चुकी। वह तो बिक ही गई बाजार में।

ऊमर तो बोली गई, आगे ओछी आव।

अब बहुत थोड़ी बची है। बहुत तो बीत गई, बहुत थोड़ी बची है।

बेड़ी समंदर बीच में, किण बिद लगसी न्याव।

लाल कहते हैंः बड़ी समझ में नहीं आ रही है बात। किनारा दिखाई नहीं पड़ता दूसरा। बीच समुंदर में आ गए हैं। अधिक उम्र तो बीत गई, बहुत थोड़ी बची है। किण बिद लगसी न्याव! यह नाव किस विधि से उस पार लगेगी?

सोचो, विचारो, मनन करो। लोग तो सोचते ही नहीं, क्योंकि सोचने से घबड़ाहट होती है। सोचने से भय लगता है। सोचने से ऐसा लगता है, फिर कुछ करना पड़ेगा। तो लोग सोचने को टालते हैं। लोग अपने को व्यस्त रखते हैं--फिल्म में, टेलीविजन में, रेडियो में, मित्रों में, ताश खेल रहे, होटलों में, क्लब-घरों में। चले लायंस-क्लब, रोटरी-क्लब... कहीं भी! आ गया कोई बुद्धू राजनेता, चले। कहीं भी उलझाए रखो अपने को। सड़क पर दो आदमी लड़ रहे हैं, गालियां दे रहे हैं, बस वहीं खड़े हो गए। किसी तरह उलझाए रखो अपने को, व्यस्त रखो अपने को।

आदमियों कि तो बात छोड़ो, लोग मुर्गियों को लड़ाते हैं, कबूतरों को लड़ाते हैं, तीतरों को लड़ाते हैं। सैकड़ों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। सांडों को लड़ाते हैं। आदमियों को लड़ाते हैं, औरों की तो बात छोड़ दो। और हजारों-लाखों लोग इकट्ठे हैं। क्योंकि दो मूढ़ लड़ रहे हैं, लोग देखने आए हुए हैं कि कौन किसकी छाती पर सवार होता है, कौन किसको तारे दिखा देता है! लाखों लोग देख रहे हैं आतुरता से, उत्सुकता से।

फुटबाल खेली जा रही है। लोग गेंद को इधर से उधर ले जा रहे हैं और लाखों लोग बैठे देख रहे हैं। मार-पीट हो जाएगी अगर उनकी टीम हार गई। दंगे-फसाद हो जाएंगे। जरा लोगों की हालत तो देखो, कुछ भी हो, क्रिकेट का मैच हो रहा है; अगर नहीं पहुंच सके तो रेडियो के सामने ही बैठे हुए हैं।

मैं एक सज्जन को जानता हूं, क्रिकेट के दीवाने, प्रोफेसर थे विश्वविद्यालय में। जहां मैं प्रोफेसर था वहीं थे प्रोफेसर। क्रिकेट के ऐसे दीवाने कि कहीं भी क्रिकेट का मैच हो, जाना ही है। न जा पाएं तो रेडियो के पास लगे बैठे हैं। रेडियो से बिल्कुल कान लगाए बैठे हैं। एक बार उनकी पार्टी हार गई, जिसको वे जिताना चाहते थे, इतने गुस्से में आ गए, रेडियो उठा कर जमीन पर पटक दिया। रेडियो! रेडियो का जैसे कुछ कसूर हो! लोग इस तरह अपने को व्यस्त रखे हुए हैं।

कोई सिगरेट पी रहा है। तुम सोचते हो, उसकी अड़चन क्या है? धूम्रपान असली सवाल नहीं है; वह उलझा रहा है अपने को, किसी काम में उलझाए हुए है। धुआं बाहर-भीतर कर रहा है। इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। कोई भगतजी माला फेर रहे हैं; उसमें और धूम्रपान में कोई बहुत फर्क नहीं है। वे माला में उलझा रहे हैं। वे गुरिए गिन रहे हैं। कोई बैठा राम-राम, राम-राम, राम-राम, राम-राम... राम जप रहा है। उलझाओ, कहीं भी उलझाए रखो मन को! कहीं ऐसा न हो कि जीवन का जोखम दिखाई पड़ जाए कि मौत द्वार पर खड़ी है!

"लालू" क्यूं सूत्या सरै, बायर ऊबो काल।
जोखौ है इण जीवनै, जवरो घालै जाल।।
ऊमर तो बोली गई, आगे ओछी आव।
बेड़ी समंदर बीच में, किण बिद लगसी न्याव।।

नाव बीच पड़ गई है। समुंदर बड़ा है। आर-पार, ओर-छोर दिखाई पड़ता नहीं, चलो ताश ही खेलो! जितनी देर ताश में उलझे रहे, कम से कम उतनी देर तो इसकी फिकर न रहेगी कि नाव का क्या होगा, किनारे लगेंगे कि नहीं लगेंगे! ... कि चलो बिछाओशतरंज, असली हाथी-घोड़े नहीं हैं तो चलो नकली हाथी-घोड़े चलाओ। और शतरंजों में तलवारें खिंच जाती हैं। शतरंजों में सिर कट गए हैं।

आदमी का पागलपन अदभुत है! आदमी ऐसी बातों पर लड़ बैठता है जिसका हिसाब नहीं! लड़ना भी अपने से बचने की एक व्यवस्था है। उलझना, विवाद, व्यर्थ की बकवास, ये सब उपाय हैं--किसी तरह जीवन का जो जोखम है वह दिखाई न पड़े। क्योंकि दिखाई पड़ेगा तो फिर कुछ करना पड़ेगा।

मेरे एक परिचित को उनकी पत्नी मेरे पास लाई। वे डाक्टर के पास जाने को राजी नहीं। और उनकी दलील भी ठीक। वे कहें कि मैं जाऊं क्यों, मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं। और पत्नी मुझे कहे कि ये स्वस्थ नहीं हैं। रात भर इन्हें नींद नहीं आती, खांसते-खंकारते हैं। कभी-कभी खांसी में खून भी आता है। और मुझे डर है कि कहीं इनको टी.बी. न हो। और पति कहें, वह कुछ भी नहीं। कभी एकाध बार ऐसा खून आ गया, उससे कोई टी.बी. होता है। और खांसी किसको नहीं आती! मुझे कोई बीमारी नहीं है। मैं क्यों जाऊं?

और कारण कुल इतना कि वे खुद डरे हुए हैं। वे डरे हुए हैं कि कहीं बीमारी हो न। वह उनकी आंखों में मैंने पढ़ा कि वे डरे हुए हैं, कि कहीं ऐसा न हो कि बीमारी निकल ही आए। कहीं पता न चल जाए कि टी.बी. है!

तो मैंने उनसे कहा कि आप बात तो बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। पत्नी तो उनकी बहुत हैरान हुई। पत्नी ने कहाः हम आपके पास इसलिए लाए हैं कि आप इनको समझा कर डाक्टर के पास भेजें; ये आपकी मानते हैं, किसी और की मानेंगे नहीं।

मैंने कहा कि तू बिल्कुल गलत बकवास कर रही है। वे बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। जब उनको बीमारी है ही नहीं, तो क्यों उनके पीछे पड़ी है? तो उन्होंने बड़ी शान से अपनी पत्नी की तरफ देखा और कहाः अब समझी! अब कभी भूल कर बात मत करना। मैंने उनसे कहा कि अब सिर्फ इस बेचारी पर दया के कारण चले जाओ डाक्टर के पास; तुम्हीं कोई बीमारी तो है नहीं, तुम्हें डर क्या? इसका मन भर जाएगा। यह फिकर में बीमार पड़ी जा रही है। इस पर ख्याल करो।

अब वे बड़ी मुश्किल में पड़े। मैंने कहाः मैं तुम्हारी दलील मानता हूं कि तुम्हें यह बीमारी नहीं। तुम्हें कोई भय भी नहीं डाक्टर का। डाक्टर तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगा? मगर यह बेचारी मरी जा रही है। देखते हैं, सूख गई बिल्कुल। चिंता में ही मरी जा रही है, इसको टी.बी. हो जाएगी अगर तुम डाक्टर के यहां न गए।

उन्होंने कहाः अब आप ऐसा कहते हैं तो मैं चला जाता हूं। मगर मैंने देखा उनकी हालत बड़ी कंपी हुई है। अब कोई जवाब नहीं था उनके पास तो जाना पड़ा और टी.बी. निकला। वे मुझसे कहने लगे कि अब मैं आपसे क्या छिपाऊं, मुझे यह भय था कि कहीं टी.बी. निकले न। और अब मैं जिंदा न रह सकूंगा।

मैंने कहाः तुम बिल्कुल पागल हो। तुम सौभाग्यशाली हो। तीस साल पहले टी.बी. हुआ होता तोशायद खतरा था, अब क्या खतरा है? अब तो सर्दी-जुकाम का इलाज नहीं है, टी.बी. का इलाज है। अब तुम क्या घबड़ाते हो? सर्दी-जुकाम जिसको हो वह डरे, वह घबड़ाए; उसका कोई इलाज नहीं है। कौन फिकर करता है, दिखता है कोई चिकित्सक उत्सुक नहीं है सर्दी-जुकाम में, अपने आप तीन-चार दिन में ठीक हो जाता है।

कहावत है कि अगर दवा लो, तो सर्दी-जुकाम एक सप्ताह में ठीक होता है और अगर दवा न लो तो सात दिन में। कोई चिकित्सक फिकर क्यों करे उसकी, वह हो ही जाता है अपने आप ठीक-ठाक। लेकिन टी.बी. तो अब सर्दी-जुकाम से भी छोटी बीमारी है। मैंने कहाः तुम घबड़ाओ मत। मगर वे मर गए। वे कोई पंद्रह-बीस दिन के भीतर मर गए। टी.बी. से नहीं मरे; वह टी.बी. का सदमा, जिसको वे बरसों से छिपा रहे थे, अपने को दबा रहे थे, रोक रहे थे... । वे नहीं झेल सके।

मैंने कहा कि अब टी.बी. से मरने कोई जरूरत ही नहीं है। अब टी.बी. से कोई मरे तो उसकी मर्जी। अब टी.बी. तो बिल्कुल छोटी-मोटी बीमारी है। टी.बी. का तो अब इलाज है। मगर उनको तो टी.बी. शब्द बड़ा था। टी.बी. यानी मौत। वह शब्द ही बहुत बड़ा! घबड़ाहट में मर गए। उनके चिकित्सक ने भी मुझसे कहा कि ऐसा कोई मरने का कारण नहीं था। मैंने कहा कि कारण कोई भी नहीं था, लेकिन उनका मन... ।

तुम अपने को उलझाए हो हजार-हजार बातों में, सिर्फ एक बात छिपाने को--बायर ऊबो काल... द्वार पर मौत खड़ी है और जीवन में जोखम ही जोखम है।

इस जोखम से जागो। यह जोखम अच्छा है, यह चुनौती है। यह जोखम तुम्हारी छाती में तीर की तरह चुभ जाए तो क्रांति हो जाए। तो तुम्हें कुछ करना ही पड़े। और करोगे क्या? तुम्हें अंतर्यात्रा करनी पड़ेगी। अगर बाहर मौत खड़ी है तो भीतर जाना होगा। क्योंकि बाहर तो मौत है, बाहर गए कि मौत मिलेगी। अब तो एक ही रास्ता बचता है कि भीतर जाओ।

जापान में एक झेन फकीर को कुछ मित्रों ने भोजन पर बुलाया था। सातवीं मंजिल के मकान पर भोजन कर रहे हैं, अचानक भूकंप आ गया। सारा मकान कंपने लगा। भागे लोग। कोई पच्चीस-तीस मित्र थे। सीढ़ियों पर भीड़ हो गई। जो मेजबान था वह भी भागा। लेकिन भीड़ के कारण अटक गया दरवाजे पर। तभी उसे ख्याल आया कि मेहमान का क्या हुआ? लौट कर देखा, वह झेन फकीर आंख बंद किए अपनी जगह पर बैठा है--जैसे कुछ हो ही नहीं रहा! मकान कंप रहा है, अब गिरा तब गिरा। लेकिन उस फकीर का उस शांत मुद्रा में बैठा होना, कुछ ऐसा उसके मन को आकर्षित किया, कि उसने कहा, अब जो कुछ उस फकीर का होगा वही मेरा होगा। रुक गया। कंपता था, घबड़ाता था, लेकिन रुक गया। भूकंप आया, गया। कोई भूकंप सदा तो रहते नहीं। फकीर ने आंख खोली, जहां से बात टूट गई थी भूकंप के आने से, वहीं से बात शुरू की।

लेकिन मेजबान ने कहाः मुझे क्षमा करें, मुझे अब याद ही नहीं कि हम क्या बात करते थे। बीच में इतनी बड़ी घटना घट गई है कि सब अस्तव्यस्त हो गया। अब तो मुझे एक नया प्रश्न पूछना है। हम सब भागे, आप क्यों नहीं भागे?

उस फकीर ने कहाः तुम गलत कहते हो। तुम भागे, मैं भी भागा। तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर की तरफ भागा। भागे हम दोनों। तुम्हारा भागना दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम बाहर की तरफ भागे। मेरा भागना दिखाई नहीं पड़ा तुम्हें। लेकिन अगर गौर से तुमने मेरा चेहरा देखा था, तो तुम समझ गए होओगे कि मैं भी भाग गया था। मैं भी यहां था नहीं, मैं अपने भीतर था। और मैं तुमसे कहता हूं कि मैं ही ठीक भागा, तुम गलत भागे। यहां भी भूकंप था और जहां तुम भाग रहे थे वहां भी भूकंप था। बाहर भागोगे तो भूकंप ही भूकंप है। मैं

ऐसी जगह अपने भीतर भागा जहां कोई भूकंप कभी नहीं पहुंचता है। मैं वहां निश्चिंत था। मैं बैठ गया अपने भीतर जाकर। अब बाहर जो होना हो हो। मैं अपने अमृत-गृह मैं बैठ गया, जहां मृत्यु घटती ही नहीं। मैं उस निष्कंप दशा में पहुंच गया, जहां भूकंपों की कोई बिसात नहीं।

अगर तुम्हें बाहर का जोखम दिखाई पड़ जाए तो तुम्हारे जीवन में अंतर्यात्रा शुरू हो सकती है।

"लालू" ओजी आंधलो, आगैं अलसीड़ा।

लालू कहते हैंः जरा देखो, एक तो अंधियारा बहुत, फिर तुम अंधे बहुत, और आगे झाड़-झंखाड़।

"लाले" ओजी आंधलो, आगैं अलसीड़ा।

झरपट बावे सरपणी, पिंड भुगते पीड़ा।।

और जगह-जगह सांपों ने घर बना रखे हैं। जगह-जगह सांपों ने स्थान बना रखे हैं। कहां से सांप हमला कर देगा... और इतनी झटपट करता है हमला कि बचने का मौका नहीं रहता, समय नहीं रहता।

"लालू" ओजी आंधलो, आगैं अलसीड़ा।

एक तो अंधेरा बहुत, अंधापन बहुत। फिर बहुत झाड़-झंखाड़ हैं जीवन में। और जगह-जगह सांपों ने बावली बना रखी हैं। क्यों भागे जा रहे हो बाहर की तरफ? गिरोगे किसी झाड़ी में। काटे जाओगे किसी सांप से। यूं ही आए, यूं ही चले जाओगे। जीवन का यह परम अवसर यूं ही खो दोगे? कंकड़-पत्थर ही बीनते रहोगे।

हंसा तो मोती चुगैं! और तुम हो हंस--मोती चुगने को बने हो!

चरण बढ़ाता हूं मैं अपने जिन सपनों को संग ले,
मैं क्या जानूं वे आए हैं अपनी एक उमंग ले?
वैसे कल है एक आवरण जो अभेद्य है मौन है,
पर हम उसका चित्र बनाते अपने-अपने रंग ले!

रंगों में अस्तित्व यहां है रंगों में दिन-रात है,
फिर उससे क्यों टकराना जो अदृश्य अज्ञात है?

उठती-गिरती इन सांसों की घटती-बढ़ती प्यास है,
जो टूटा वह असत्य, सत्य जो बना हुआ विश्वास है।
वैसे बनना और बिगड़ना अपने बस की बात कब,
पर रीते को भरने वाला जीवन अपने पास है?

कब देखा इस पार कि उलझूं कहां छिपा उस पार है?
जिधरझुकाई दृष्टि उधर ही दिखा मुझे मझधार है!

कभीशोक का कभी हर्ष का मेरा प्रतिपल पर्व है,
कुछ चाहों में कुछ आहों मेरी संज्ञा सर्व है!
वैसे पागल सी यह दुनिया उलझ रही है ज्ञान से,

पर मैं सुलझा जिन भूलों से उन पर मुझको गर्व है!

मैंने कब पूछा है किससे कि क्या हर्ष क्या खेद है?
खुलने पर बन गया धुआं-सा मन का जो भी भेद है!

है इतनी सामर्थ्य भला कब अनचाहे को छोड़ दूं?
किस प्रकाश के बल पर अपनी खोई राहें मोड़ दूं?
वैसे कौतुक क्षणिक भावना पल भर का उन्माद है,
पर मैं अपनी ही सीमा को बोलो कैसे ता.ेड़ दूं?

मेरे सनमुख जो कुछ है वह सीमा में लयमान है।
सीमाओं में बंधा अहं है, सीमा ही वरदान है!

ऐसे आदमी अपने को समझाता रहता है। यही जिंदगी है--यही सीमाओं की, यही अहंकार की; यही आपाधापी, यही व्यवसाय, यही धन, पर-प्रतिष्ठा।

मेरे सनमुख जो कुछ है वह सीमा में लयमान है।

सीमाओं में बंधा अहं है, सीमा ही वरदान है!

ऐसे हम अपने को सांत्वना दे लेते हैं कि बस यही हमारी नियति है।

नहीं-नहीं, मृत्यु तुम्हारी नियति नहीं है। अमृत का तुम्हारा स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। और अगर तुम्हें सब जगह मझधार दिखाई पड़ती है...

कब देखा इस पार कि उलझूं कहां छिपा उस पार है?

जिधरझुकाई दृष्टि उधर ही दिखा मुझे मझदार है!

... तो तुम्हारे पास अभी देखने वाली दृष्टि नहीं है। तो अभी तुम आंख बंद करके देख रहे हो। तो तुम अभी अंधे की तरह देख रहे हो। तो तुम्हें अभी देखने का बोध ही नहीं मिला, देखने की कला नहीं मिला; अन्यथा कहीं भी मझधार नहीं है, सब जगह किनारा है। साहिल ही साहिल हैं। जिसको दिखाई नहीं पड़ता, उसे सब जगह मौत है और जिसको दिखाई पड़ता है उसे सब जगह अमृत है। जो अंधा है उसे कहीं भी परमात्मा नहीं है, सब जगह पदार्थ है, मिट्टी ही मिट्टी है। और जिसके पास आंख है उसके लिए मिट्टी है ही नहीं, क्योंकि मिट्टी में भी वही छिपा है। मिट्टी के कण-कण में भी वही विराजमान है।

निरगुण सेती निसतिया, सरगुण सूं सीधा।

कूड़ा कोरा रह गया, कोई बिरला बीधा।।

निरगुण सेती निसतिया...

जिसने उस निर्गुण को, निराकार को, न दिखाई पड़ने वाले को, अदृश्य को, अज्ञात को स्मरण किया, दिन-रात स्मरण किया, सब उस पर अर्पित किया--वह सिद्ध हो गया!

... सुरगुण सूं सीधा।

वह सिद्ध हो गया। उसके भीतर संगीत उठा शाश्वत का। उसके भीतर कमल खिला शाश्वत का, जो कभी मुरझाता नहीं।

कूड़ा कोरा रह गया...

लेकिन जो व्यर्थ के संसार में फंसे हुए हैं, वे कोरे के कोरे रह गए।

... कोई बिरला बीधा।

शायद मुश्किल से कभी कोई, कोई विरला उस सत्य की तरफ आकृष्ट होता है। अधिक तो कूड़ा-करकट में ही उलझे रह जाते हैं। रोते हैं फिर बहुत बाद में। पर पीछे पछताए होत का जब चिड़ियां चुग गईं खेत! मरते क्षण रोते हैं। मरते क्षण किसकी आंखें गीली नहीं हो जातीं? मगर फिर समय नहीं बचता। और लोग यहां इसी आशा में बैठते हैं कि मरने वक्त भगवान का नाम ले लेंगे, कि राम-राम कर लेंगे। जिंदगी भर नहीं कर पाए, मरते वक्त कैसे कर पाओगे? मृत्यु तो वही करवाएगी जो जिंदगी भर किया है।

जो जिंदगी भर सम्हाला है वही मृत्यु में प्रकट होता है--निचोड़ की तरह, इत्र की तरह जिंदगी भर के फूल निचुड़ आते हैं। मगर यह मत सोचना कि जिंदगी भर तो धन-धन करेंगे, पद-पद करेंगे और मरते वक्त एकदम से हरि को स्मरण कर लेंगे। ऐसी असंगति नहीं हो सकती।

जिंदगी एक सुसंबद्धशृंखला है, उसमें हर कड़ी जुड़ी है। अगर जिंदगी भर तो वेश्यालय गए तो यह मत सोचना कि मरते वक्त अचानक मंदिर पहुंच जाओगे। पैरों की पुरानी आदत वेश्यालय ही ले जाएगी; मरते वक्त भी ले जाएगी। पैर दूसरा रास्ता ही नहीं जानते हैं। हां, यह हो सकता है कि तुम मर जाओ और दूसरे अरथी ले जाएं और कहें राम-नाम सत्य है। यह होगा, मगर तुम तो गए।

यह बड़े मजे की बात है, जिंदगी भर जिनको राम-नाम सत्य नहीं था, उनको दूसरे मरते वक्त राम-नाम सत्य करवा रहे हैं। मर ही चुके वह; मरते वक्त भी नहीं, मर ही चुके; अब वे हैं ही नहीं, वहां कुछ है ही नहीं। खाली पिंजड़ा पड़ा है, हंसा तो उड़ चला। अब दूसरे चले मरघट लेकर उनको राम-नाम सत्य। और ये दूसरे भी अपने लिए नहीं कह रहे हैं राम-नाम सत्य; ये भी जो मर गए हैं सज्जन, उनके लिए कह रहे हैं राम-नाम सत्य है।

मुल्ला नसरुद्दीन मरा। गांव भर उससे परेशान था। राजनेता था। हर तरह से उसने गांव को परेशान किया था, पीड़ित किया था, हैरान किया था, झंझटों में डाला था। कब्र पर मौलवी अंतिम विदा देने, कुरान की आयतें पढ़ने, मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में दोशब्द बोलने खड़ा हुआ। हमारी दुनिया के रिवाज बड़े अजीब हैं! जिनको लोग जिंदगी भर गाली देते हैं, उनको भी मरते वक्त कहते हैं "स्वर्गीय" हो गए। जिनको लोग जिंदगी भर भलीभांति जानते हैं, उनकी भी प्रशंसा करते हैं। हम कहते ही हैं कि मरे की क्या निंदा करना! अब मर ही गया बेचारा!

तो मौलवी ने भी दिल खोल कर प्रशंसा की, ऐसी प्रशंसा की कि मुल्ला की पत्नी अपने बेटे से बोली कि फजलू, जरा जाकर देख तो कि अरथी में तेरे पिताजी ही हैं कि कोई और? क्योंकि इतनी प्रशंसा और तेरे पिताजी की!

मरोगे तो लोग प्रशंसा करेंगे। राम-राम का गीत गा देंगे। हरि-भजन करेंगे। पहुंचा आएंगे मरघट तक। अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए राम-नाम सत्य है। उनके लिए तो अभी और दूसरी चीजें सत्य हैं। अब तुम तो मर ही गए, तुम्हें कोई खतरा ही नहीं है। अब तो राम-नाम सत्य करने में कुछ हर्जा भी नहीं है। ऐसी प्रतीक्षा मत करो कि दूसरों को कहना पड़े राम-नाम सत्य है। जीवन में राम को सत्य कर लो। अपने जीवन में, अपने अनुभव से राम को सत्य कर लो तो तुमने जीवन पाया और जीवन का उपयोग किया।

बीत गई बातों में
रात वह ख्यालों की
हाथ लगी निंदियारी जिंदगी
आंसू था सिर्फ एक बूंद
मगर जाने क्यों
भीग गई है सारी जिंदगी
वह भी क्या दिन था--
जब सागर की लहरों ने
घाट बंधी नावों की
पीठ थपथपाई थी
जाने क्या जादू था
मेरे मनुहारों में
चांदनी
लजा कर इन बाहों तक आई थी
अब तो
गुलदस्ते में बासी कुछ फूल बचे
और बची रतनारी जिंदगी
मन के आईने में
उगते जो चेहरे हैं
हर चेहरे में
उदास हिरनी की आंखें हैं
आंगन से सरहद को जाती--
पगडंडी की दूबों पर
बिखरी कुछ बगुले की पांखें हैं
अब तो
हर रोज हादसे गुमसुम सुनती है
अपनी यह गांधारी जिंदगी
जाने क्या हुआ--
नदी पर कोहरे मंडराए
मूक हुई सांकल,
दीवार हुई बहरी है
बौरों पर पहरा है--
मौसमी हवाओं का
फागुन है नाम

मगर जेठ की दुपहरी है

अब तो

इस बियावान में

पड़ाव ढूंढ रही

मृगतृष्णा की मारी जिंदगी!

ऐसा न कहना पड़े अंत में। आज ही देख लो मृगतृष्णा को। आज ही देख लो जिंदगी की भरी दोपहरी को। अभी इसे वसंत माने बैठे हो, फिर रोओगे बहुत। अभी इसे मधुमास समझा है और यहां मृत्यु के सिवाय और कुछ भी नहीं।

जागो और थोड़ा देखो!

देखी है खिजां की बेरहमी वीरान गुलिस्तां देखा है?

जलते हुए जंगल देखे हैं सूखा हुआ चश्मा देखा है?

लुट जाते हैं चौराहे पर गफलत में कभी चौकन्ने में,

दावा तो यही सब करते हैं हमने भी जमाना देखा है?

देखी भी नहीं मय मुद्दत से तुम कहते हो पी रखी है,

प्यासा कैसे बहकेगा भला पीकर तो बहकना देखा है।

झुलसे हैं कभी, टूटे हैं कभी, बह निकले हैं सैलाब में हम,

जीने की हर टूक ख्वाहिश में बस मौत का सामां देखा है?

राही तो मंजिल पा ही गए सब उनकी खुशियां देखते हैं,

राहों के सीनों का किसने रौंदा हुआ अरमां देखा है।

वैसे तो तजुर्बे की खातिर नाकाफी है यह उम्र मगर,

हमने तो जरा से अर्से में मत पूछिए क्या क्या देखा है।

बोध हो तो जरा से अर्से में सब देख लिया जाता है और बोध न हो तो सत्तर-अस्सी साल, नब्बे साल, सौ साल... मगर वही दौड़, वही मूढ़ता, वही चले दिल्ली! वही आकांक्षाएं पद की, वही तृष्णाएं!

देखी है खिजां की बेरहमी वीरान गुलिस्तां देखा है?

जलते हुए जंगल देखे हैं सूखा हुआ चश्मा देखा है?

ऐसे ही एक दिन हो जाओगे--जलते हुए जंगल, सूखा हुआ चश्मा... । आज नहीं कल पतझड़ आने को है। वसंत में भूले मत रहो, भटके मत रहो।

लुट जाते हैं चौराहे पर गफलत में कभी चौकन्ने में,

दावा तो यही सब करते हैं हमने भी जमाना देखा है।

नहीं, सभी ने जमाना नहीं देखा होता। अधिक लोग तो बाल धूप में पकाते हैं और सोचते हैं कि जमाना देखा है। जिसने जमाना देख लिया, वह परमात्मा की तरफ मुड़े बिना रह नहीं सकता।

पिरथी भूली पीवकूं, पड़या समंदरा खोज।

मेरे हांसे मैं हंसूं, दुनिया जाणै रोज।।

लाल कहते हैंः पृथ्वी उस प्यारे को भूल ही गई है। पिरथी भूली पीवकूं, पड़या समंदरा खोज! इसीलिए हम समुद्र में गिर गए हैं और खोजना पड़ रहा है, तड़फना पड़ रहा है, चिल्लाना पड़ रहा है। उस एक प्यारे को याद करते ही समुंदर विलीन हो जाता है। उस प्यारे को याद करते ही किनारा मिल जाता है। वह प्यारा ही किनारा है। उसकी याद ही किनारा है।

पिरथी भूली पीवकूं, पड़या समंदरा खोज।

मेरे हांसे मैं हंसूं, दुनिया जाणै रोज।।

और लाल कहते हैं एक बड़े मजे की बात कि मैंने तो परमात्मा को पा लिया है और आनंदित हूं, मग्न हूं। मेरी जिंदगी तो हंसी ही हंसी, हंसी का फव्वारा हो गई है। और लोग समझते हैं कि बेचारा उदास हो गया, उदासीन हो गया, त्यागी हो गया, व्रती हो गया! सब छोड़ कर चला गया--बेचारा! मैं तो हंसता हूं; लोग समझते हैं रोता हूं।

यह सूत्र बड़े समझने जैसा है। महावीर ने महल छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, पद छोड़ दिया, प्रतिष्ठा छोड़ दी। शास्त्रों में इसका बड़ा वर्णन होता है, बड़ा लंबा! लेकिन कोई यह नहीं कहता कि इस छोड़ने के पहले कुछ पा लिया, इसलिए छोड़ा। पाए बिना कोई नहीं छोड़ता। ध्यान की संपदा मिल गई महावीर को महल में ही। जब ध्यान की संपदा मिल गई तो और संपदाएं दो कौड़ी की हो गईं। हमें लगता है कि संपदा छोड़ी, महावीर कौड़ियां छोड़ रहे हैं।

एक आदमी रामकृष्ण के पास आया, बहुत सी अशर्फियां उनके पैरों में डाल दीं और कहा कि आप त्यागी, व्रती हैं, आप महा त्यागी हैं, कुछ भेंट करना चाहता हूं।

रामकृष्ण ने कहाः तू बड़ी गलत बात कहता है। तू त्यागी है, हम त्यागी नहीं हैं। हम तो भोगी ठहरे।

उस आदमी ने कहाः परमहंस देव, आप क्या कह रहे हैं, आप और भोगी! और मुझ संसारी को कह रहे हैं त्यागी?

रामकृष्ण ने कहाः समझने की कोशिश कर। तूने कौड़ियां इकट्ठी कर रखी हैं, हमने हीरे! तो कौड़ियां इकट्ठा करने वाला भोगी है या हीरे इकट्ठे करने वाला? कौड़ियां इकट्ठी करने वाला त्यागी है कि हीरे इकट्ठे करने वाला? तूने कूड़ा-करकट इकट्ठा किया है और हमने राम की शरण गह ली। तू मिट्टी में ही उलझा है, हम अमृत के वासी हो गए। भोगी कौन है, तू बता? और त्यागी कौन है, तू बता?

मैं भी तुमसे यही कहना चाहता हूंः महावीर, बुद्ध, रामकृष्ण, रमण, ये महाभोगी हैं। तुम अपने को भोगी मत समझना। इस धोखे में मत रहना कि तुम भोगी हो। रोगी भला होओ, भोगी नहीं हो। त्यागी हो तुम--परमात्मा को छोड़ कर ठीकरों को पकड़ कर बैठे हो! बड़े त्यागी हो, महा त्यागी हो! तुम्हारे सबके दरवाजों पर लिखा होना चाहिएः फलां फलां महा त्यागी, परमहंस, व्रती, महाव्रती! तुमने सब कुछ छोड़ दिया है जो पाने योग्य है और सब पकड़ लिया है जो पाने योग्य नहीं है।

लाल ठीक कहते हैंः मेरे हांसे मैं हंसूं... । मैं हंस रहा हूं और लोग समझते हैं कि रो रहा हूं। मैं उदास नहीं हूं, मैं आनंदित हूं और लोग समझते हैं उदासीन हो गया हूं। मैंने कुछ छोड़ा नहीं है, जो कचरा था वह दिखाई पड़ गया है और जो हीरा था वह मैंने पा लिया है।

भली बुरी दोनूं तजो, माया जाणो खाक।

आदर जाकूं दीजसी, दरगा खुलिया ताक।।

कहते हैंः जिसने भले और बुरे दोनों से मुक्ति पा ली... । दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। दुर्जन, जिनको हम बुरे लोग कहते हैं। सज्जन, जिन्हें हम भले लोग कहते हैं। और साधु। आमतौर से हम साधु को सज्जन का ही विकसित रूप समझते हैं; वहां हमारी भूल हो रही है। साधु न तो दुर्जन है, न सज्जन है। साधु तो अच्छे-बुरे दोनों के पार हो गया। दुर्जन और सज्जन तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दुर्जन और सज्जन में भेद नहीं है, बहुत भेद नहीं है। एक ने बुरे को पकड़ा है, मगर पकड़ा है! एक ने भले को पकड़ा है, मगर पकड़ा है। दोनों की पकड़ है। एक बुरे की आदत से भर गया है, एक भले की आदत से भर गया है।

साधु वह है, जिसकी कोई आदत नहीं है; जिसकी कोई पकड़ नहीं है; जिसकी मुट्ठी खुली है।

साधु वह है जो कहता हैः मैं हूं ही नहीं, पकड़े कौन? पकड़े क्या?

साधु वह है जो कहता है, परमात्मा मुझसे जीए। जो उसको करना हो करे, न करना हो न करे। मैं तो बांस की पोंगरी हूं; उसे जो गीत गाना हो गाए। मेरा कोई आग्रह नहीं है।

दुर्जन का दुराग्रह होता है, सज्जन का सत्याग्रह होता है; साधु का अनाग्रह होता है--कोई आग्रह नहीं!

भली बुरी दोनूं तजो, माया जाणो खाक।

जिसने अच्छे और बुरे दोनों को छोड़ दिया, जिसने शुभ-अशुभ दोनों को छोड़ दिया, पाप-पुण्य दोनों को छोड़ दिया, उसके लिए माया मिट्टी हो गई! जब तक तुमने बुरे को पकड़ा माया है। और अगर तुमने बुरे को छोड़ कर अच्छे को पकड़ा, तो भी माया है। पकड़ने में माया है। और जो दोनों को छोड़ देता है...

आदर जाकूं दीजसी...

अगर आदर ही देना हो तो उसको देना, जो बुरे और भले दोनों के पार है। क्यों?

आदर जाकूं दीजसी, दरगा खुलिया ताक।

क्योंकि जो भले-बुरे दोनों के पार है उसमें ही दरवाजा खुल गया है परमात्मा का। अगर तुम उसे आदर दोगे तोशायद उस दरवाजे से तुम्हें भी परमात्मा की झलक मिलनी शुरू हो जाए।

... दरगा खुलिया ताक।

भले-बुरे के जो पार है। अतिक्रमण कर गया--शुभ का, अशुभ का। मन के जो अतीत हो गया। क्योंकि भला-बुरा सब मन का ही खेल है। जिसका मन ही न रहा, उसकी माया न रही। और जोशून्य हो गया, जिसकी कोई पकड़ न रही, वहां दरवाजा खुल गया। दरगा खुलिया ताक! वहां मंदिर का द्वार खुला है। काश, तुम वहां अपना सिर झुका सको तो तुम्हें परमात्मा की झलक मिलनी सुनिश्चित है!

और परमात्मा की झलक जब तक न मिले तब तक तृप्त मत हो जाना। कहीं रास्ते पर रुक मत जाना। यहां बड़े सुंदर पड़ाव हैं, लेकिन कोई पड़ाव मंजिल नहीं। परमात्मा ही मंजिल है।

स्मरण रखो, परमात्मा ही मंजिल है। क्षण भर को न भूलो, परमात्मा ही मंजिल है। परमात्मा को बिना पाए नहीं जाना है। परमात्मा को पाना ही है, क्योंकि उसी को पाकर जीवन की कृतार्थता है, सार्थकता है। जिसने उसे खोया, उसने सब खोया। जिसने उसे पाया, अगर सब भी खो जाए तो भी उसने सब पाया।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

शून्य होना सूत्र है

पहला प्रश्नः ओशो! बिहारी की एक अन्योक्ति हैः

फूल्यो अनफूल्यो रह्यो गंवई गांव गुलाब।

क्या भारत में आपके साथ भी यही हो रहा है? दूर-दिगंत तक तो आपकी सुवास फैल रही है और भारत अछूता रहा जा रहा है?

कृष्ण वेदांत! यह सहज है, स्वाभाविक है, जीवन का सामान्य क्रम है। इससे अन्यथा नहीं हो सकता। जीसस ने कहा हैः पैगंबरों को उनके ही गांव में समादर नहीं मिलता। मिले भी कैसे! जीसस जिस गांव में पैदा हुए, जिस गांव में बड़े हुए, जिस गांव की धूल में खेले, पढ़े-लिखे, जिस गांव में पिता की लकड़ी की दुकान पर लकड़ियां बेचीं, जंगल से लकड़ियां काटीं, पिता को लकड़ियों के सामान बनाने में साथ-सहयोग दिया--वह गांव अचानक कैसे स्वीकार कर ले कि जीसस में परमात्मा का अवतरण हुआ है! और यह घटना इतनी आकस्मिक है, इतनी अविच्छिन्न है अतीत से कि दोनों के बीच तालमेल बिठाना गांव के लोगों को असंभव है। यह बढ़ई का लड़का अचानक ईश्वर-पुत्र हो गया! इससे गांव के अहंकार को भी चोट लगती है, ईर्ष्या भी जगती है, संदेह भी उठता है, अविश्वास भी पकड़ता है। और मानने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

जीसस को देखने के लिए थोड़ी दूरी चाहिए। हर चीज को देखने के लिए परिप्रेक्ष्य चाहिए। अगर तुम्हें दर्पण में अपनी तस्वीर देखनी है तो थोड़े फासले पर खड़ा होना होगा। अगर तुम बिल्कुल दर्पण से नाक लगा कर खड़े हो जाओ तो अपना चेहरा भी दिखाई न पड़ेगा। थोड़ी दूरी, और चीजें साफ होती हैं।

जब पहली बार यूरी गागरिन अंतरिक्ष में गया और पहली बार उसने दूर से पृथ्वी को देखा तो उसने अपने संस्मरणों में कहा है कि मेरे मन में ऐसा भाव नहीं उठा कि मैं रूसी हूं; ऐसा भाव नहीं उठा कि कम्युनिज्म की विजय हो; ऐसा भाव नहीं उठा कि पृथ्वी देशों में विभक्त है। उतने अंतर से देखने पर सारी पृथ्वी एक मालूम हुई। देशों की सब सीमाएं झूठी हो गईं, सब कल्पित नक्शों पर रह गईं। असली पृथ्वी तो कहीं भी बंटी नहीं है, न असली सागर बंटे हैं, न असली नदियां बंटी हैं। आदमी के नक्शों में सब बंटाव है।

यूरी गागरिन ने कहा है कि जो मेरे मन में भाव उठा वह यह--मेरी पृथ्वी! मेरा देश नहीं, मेरी जाति नहीं, मेरा धर्म नहीं, मेरा विचार नहीं, मेरी विचारधारा नहीं, मेरी राजनैतिक कल्पना-परिकल्पना नहीं--मेरी पृथ्वी, बस मेरी पृथ्वी! हरी-भरी इतनी प्यारी!

पृथ्वी से दूर जाकर यूरी गागरिन को पृथ्वी की वास्तविकता अनुभव में आई। जीसस के गांव के लोग जीसस को न पहचान सके। बुद्ध जब बारह वर्षों के बाद जागरूक होकर घर आए तो खुद बुद्ध के पिता न पहचान सके। बुद्ध के पिता ने कहा कि अभी भी तुझे क्षमा कर सकता हूं। ऐसे तूने मुझे बहुत आघात पहुंचाया है। इस बुढ़ापे में, इकलौता बेटा तू मेरा और छा.ेड कर भाग गया, न शर्म, न संकोच। यह भगोड़ापन है। और यह भिखमंगों का समूह इकट्ठा कर लिया। अभी भी लौट आ। यद्यपि घाव गहरा है, क्षमा करना कठिन है; लेकिन पिता का हृदय है, मैं तुझे क्षमा कर दूंगा। आ और सम्हाल अपने राज्य को। इसे मैं किसे सौंप जाऊं, मेरी मौत करीब आती है!

बुद्ध के पिता की आंखें क्रोध से भरी हैं। बुद्ध ने कहाः मेरी भी सुनेंगे, मेरा निवेदन सुनेंगे? जो घर छोड़ कर गया था मैं वही नहीं हूं।

बुद्ध के पिता उस क्रोध में भी हंसने लगे और कहाः यह भी खूब मजाक रही! मैं तुझे नहीं पहचानता? मेरे खून से तू बना है। मेरी हड्डी-मांस-मज्जा से तू बना है। तू मेरा ही एक अंग है, मेरा ही एक विस्तार। मैं तुझे नहीं पहचानता? तू मुझे समझा रहा है कि तू वही नहीं है जो गया था! तू वही है।

थोड़ा सोचो, बुद्ध के पिता भी ठीक कहते हैं कि तू वही है और बुद्ध भी ठीक कहते हैं कि मैं वही नहीं हूं। एक क्रांति घट गई है बीच में। चेतना में एक रूपांतरण हो गया है। लेकिन वह रूपांतरण तो आंतरिक है। वह रूपांतरण तो उनको दिखाई पड़ेगा जो झुकेंगे; बुद्ध के पिता तो झुक नहीं सकते। पिता-भाव, अहंकार खड़ा है। वे तो क्रोध से भरे हैं, झुकने की बात कहां? वे तो नाराज हैं। वे तो क्षमा करने में भी सोच रहे हैं कि बहुत उपकार कर रहे हैं। और जब उन्होंने यह कहा कि तू मुझसे पैदा हुआ, मैं तुझे नहीं पहचानता! तो बुद्ध ने कहाः फिर मैं निवेदन करता हूं कि मैं आपसे आया हूं लेकिन आपसे पैदा नहीं हुआ। आप रास्ता थे मेरे आने के, लेकिन आप मेरे जन्मदाता नहीं हैं। और मैं यह भी निवेदन कर दूं कि आपके भी पहले मैं था। और-और जन्मों में भी मैं था। और-और मेरे पिता हुए, और-और मेरी माताएं हुईं। न मालूम कितने गर्भों से मैं गुजरा हूं, लेकिन वे सब मार्ग थे। उनसे मैं उत्पन्न नहीं हुआ था, उनसे गुजरा था। आपसे भी गुजरा हूं। आप जरा क्रोध को शमन करें, गौर से मेरी तरफ देखें, मेरी आंखों में झांकें।

बुद्ध की पत्नी भी बहुत नाराज थी। बारह वर्ष बाद ये घर लौटे थे। बारह वर्ष का इकट्ठा क्रोध संग्रहीभूत था। बड़ी मानिनी थी; राजपुत्री थी। किसी से कहा भी न था और कभी आंख से एक आंसू भी न गिराया था। क्षत्राणी थी। ऐसे आंसू गिराना शोभा भी न देता था। शिकायत भी न की थी। किसी ने कभी शिकायत भी न सुनी थी। पी गई थी, सब पी गई थी, जहर पी गई थी; मगर जहर कंठ तक भरा था! बुद्ध आए तो सब टूट पड़ा। एकदम पागल सिंहनी की भांति बुद्ध पर क्रुद्ध हो उठी। लांछना करने लगी, शिकायत करने लगी, निंदा करने लगी, व्यंग्य करने लगी।

बुद्ध अपने बेटे को छोड़ कर गए थे, तब बेटा केवल नया-नया पैदा हुआ था, एक ही दिन का था। अब वह बारह वर्ष का हो गया था। क्रोध में मां ने अपने बेटे से कहा कि ले, ये तेरे पिता हैं, तू बार-बार पूछता था कि मेरे पिता कौन हैं, मेरे पिता कहां हैं, ये रहे सज्जन! ये जो भाग गए थे छोड़ कर--मुझे और तुझे, असहाय! इनसे मांग ले अपनी बपौती! इन्होंने तुझे पैदा किया है! मांग ले इनसे अपना अधिकार!

मजाक कर रही थी वह, व्यंग्य कर रही थी। बुद्ध के पास देने को था भी क्या? बेटा तो समझा नहीं, मां की बात सुन कर उसने अपनी झोली फैला दी। उसने कहा कि अगर आप ही मेरे पिता हैं--तो मुझे संपदा, मेरा अधिकार, मेरी वसीयत! बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने अपना भिक्षापात्र... वही उनके पास था और तो कुछ था नहीं... अपना भिक्षापात्र राहुल को दे दिया और कहाः राहुल, यह तेरी दीक्षा हुई! तू संन्यस्त हुआ, क्योंकि मेरे पास एक संपदा है जो मैं केवल संन्यासियों को दे सकता हूं। वह संपदा बाहर की नहीं है, राहुल। वह संपदा सोना-चांदी, हीरे-जवाहरातों की नहीं है--आत्मा की है। तू अभी छोटा है, मगर शायद इसीलिए कि तू अभी छोटा है समझ पाए। बड़े तो बड़े ज्ञान से भरे हैं। पिता तो सुनने को भी राजी नहीं हैं, शायद बेटा सुन ले!

और बेटे ने पहले सुना। राहुल झुका चरणों में और उसने कहाः मुझे अंगीकार करें! राहुल को झुकते देख कर, राहुल की आंखों से गिरते आनंद के आंसू टपकते देख कर, यशोधरा झुकी--बुद्ध की पत्नी झुकी। उसे भी स्मरण आया कि मैं क्या कर रही हूं, किससे लड़ रही हूं! मैं जरा गौर से तो देखूं, यह वही व्यक्ति तो नहीं है!

इतनी गालियां मैंने दी होतीं, जो बारह वर्ष मुझे पहले छोड़ कर गया था, तो मेरी गर्दन दबा दी होती, कि गर्दन मेरी तलवार से उतार दी होती। लेकिन यह चुपचाप खड़ा है, जैसे फूल बरसते हों, जैसे अंगारे नहीं, जैसे गालियां नहीं, स्वागत का गीत गाया जा रहा हो, मंगल गीत गाए जा रहे हों! अविक्षुब्ध, निस्तरंग, यह जो सामने खड़ी है प्रतिमा, यह वही तो नहीं है जिसे मैंने पति की तरह जाना था। नहीं; यह कोई और है। भीतर कुछ बात बदल गई है। भीतर की व्यवस्था बदल गई है।

राहुल को झुकते देख कर... पर ध्यान रखना, राहुल बारह साल का लड़का, पहले झुका; सरल था, पुरानी कोई धारणा नहीं थी। पिता की कोई पुरानी याद नहीं थी। इसलिए पुरानी कोई बाधा नहीं थी। इसलिए पुरानी कोई अपेक्षा नहीं थी। सीधा देख सका। बीच में कोई धारणाओं का जाल न था, आंख पर कोई पट्टियां न थीं। कोई विचार न थे कि पिता कैसे होने चाहिए। पहली ही बार देखा था और अभिभूत हो गया था, आनंदमग्न हो गया था। अगर यही मेरे पिता हैं... तो अहोभाव उतर आया था। निर्दोष उस चित्त में बुद्ध की प्रतिमा सीधी-सीधी बनी थी। उसकी क्रांति को होते देख कर यशोधरा झुकी। यशोधरा को झुकते देख कर बुद्ध के पिता शुद्धोधन झुके। फिर पूरा परिवार झुका।

कठिन है, जो निकट रहे हैं, जिन्होंने बचपन से देखा है, जो साथ बड़े हुए हैं, साथ खेले हैं, लड़े हैं, झगड़े हैं, उन्हें समझना निश्चित कठिन है। उन पर नाराज न होना।

बिहारी ठीक कहते हैंः

फूल्यो अनफूल्यो रह्यो गंवई गांव गुलाब।

गंवारों के गांव में गुलाब खिला, खिला नहीं खिला बराबर रहा। फूल्यो अनफूल्यो रह्यो! किसी ने देखा ही नहीं। आखिर गुलाब के लिए भी तो पारखी चाहिए! हीरे के लिए भी तो जौहरी चाहिए! और ये हीरे तो बड़े गहराई के हीरे हैं। प्रशांत महासागर की गहराई ऐसी नहीं और गौरीशंकर की ऊंचाई ऐसी नहीं।

एक आदमी को राह पर चलते हीरा मिल गया--बड़ा हीरा! मगर गंवार था। अपने गधे पर सामान लाद कर अपने गांव लौट रहा था बाजार से, सोचा उठा लें इस पत्थर को, बच्चों के खेलने के काम आ जाएगा। फिर जब पत्थर उठाया और चमकदार दिखाई पड़ा, अपने गधे से उसे बहुत प्रेम था तो सोचा कि इसी गधे के गले में बांध दें। और तो गधे को कुछ दे भी नहीं पाया कभी, यह बड़ी सेवा भी करता है, इसके गले में लटकता रहेगा, सूरज की रोशनी में चमकता रहेगा, गांव के सब गधों को मात कर दूंगा। गधे के गले में बांध दिया। लाखों का हीरा गधे के गले में बांध दिया!

थोड़ी ही दूर गया होगा कि एक जौहरी आता था अपने घोड़े पर सवार, उसने इतना बड़ा हीरा अपनी जिंदगी में देखा नहीं था। वह तो एकदम अवाक रह गया। रुका, उसने कहाः भाई, इस पत्थर का क्या लोगे? बहुत हिम्मत की उस गंवार ने, क्योंकि पत्थर के कोई दाम होते हैं! बहुत हिम्मत करके कहा कि ठीक है, आठ आने दे दो। लेकिन जौहरी पक्का कंजूस, उसने सोचाः चार आने में मिल जाए तो आठ आने क्यों खराब करने हैं। लाखों का हीरा! तो उसने कहाः चार आने ले ले, इस पत्थर का तू करेगा क्या? इस पत्थर के कौन तुझे आठ आने देगा?

गंवार ने सोचा कि चार आने में क्या बेचना, इससे तो गधे के गले में ही पहनाए रखेगा तो ठीक है। कहा कि चार आने में नहीं बेचना है। जौहरी चला गया दो-चार कदम कि शायद दो-चार कदम जाने पर इसको अक्ल आए कि पत्थर के चार आने भी कौन देगा। लेकिन तभी संयोग की बात है, एक दूसरा जौहरी आ गया और उसने आठ आने में वह हीरा खरीद लिया।

पहला जौहरी वापस लौटा, देख कर कि नहीं कोई रास्ता बनता तो चलो आठ आने में ही खरीद लो। लेकिन तब तक तो सौदा हो चुका था। तो उस पहले जौहरी ने उस गांव के गंवार को कहा कि तू महामूढ़ है। अरे पागल, यह लाखों का हीरा तूने आठ आने में बेच दिया! उसने कहाः मैं महामूढ़ हूं तो तुम कौन हो? मैं तो मूढ़ हूं, इसलिए इस हीरे को आठ आने में बेच दिया; मगर तुम्हें तो पता था कि यह लाखों का है, तुम आठ आने में न ले सके! मूढ़ फिर कौन है?

हीरों को पारखी चाहिए। और चेतना के हीरों को जानने के लिए तो बहुत मुश्किल से पारखी मिलते हैं। तो बुद्धपुरुष अपने ही जगहों में नहीं पहचाने जाते। तीर्थंकरों को अपने ही स्थानों पर सम्मान नहीं मिलता। यह स्वाभाविक क्रम है। इसमें न तो चिंतित होना, न नाराज होना। इसमें न क्रोधित होना, न लोगों की लांछना करना। जैसा होना चाहिए वैसा ही हो रहा है। जो सदा हुआ है वही मेरे साथ भी हो रहा है। वही होना भी चाहिए।

दूर-दूर से लोग आ रहे हैं। लेकिन भारतीय मन को थोड़ी अड़चन है; उसकी धारणाएं हैं। जब पश्चिम से कोई आता है तो उसके पास कोई धारणा नहीं होती। वह तलाश में आता है। उसके पास एक खोज होती है जरूर, एक प्रश्न होता है जरूर, एक जिज्ञासा होती है जरूर कि जानूं; लेकिन साफ-साफ स्पष्ट धारणा नहीं होती, कि वह क्या जानने आ रहा है। भारतीय जब आता है तो वह पहले से ही मान कर आ रहा है। कोई कृष्ण को मानता है, कोई राम को मानता है, कोई बुद्ध को मानता है, कोई महावीर को मानता है।

पश्चिम में एक सौभाग्य घटित हुआ है कि पश्चिम में कोई कुछ भी नहीं मानता। मान्यताओं के दिन गए। लोग न मो.जे.ज को मानते हैं और न जीसस को मानते हैं। इन तीन सौ वर्षों में पश्चिम में एक महाक्रांति घटी है, लोगों के चित्त निर्भार हो गए हैं। लोग अतीत की तरफ देखते ही नहीं, वह आदत ही छोड़ दी। पीछे देखने की आदत ही समाप्त हो गई। लोग आगे देखते हैं।

भारत पीछे देखता है। अब जो आदमी राम को मानता है, वह एक खास राम की प्रतिमा मुझमें देखना चाहेगा। वह प्रतिमा तो मुझमें मिलेगी नहीं; कहां राम, कहां मैं! वे अगर मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो मैं अमर्यादा पुरुषोत्तम हूं! यहां कोई मर्यादा नहीं है। मैं कोई धनुषबाण लिए भी नहीं खड़ा हूं। एक राम का अपना व्यक्तित्व है, अपना एक जीवन का रंग है। सुंदर है, पर उन्हीं को सोहता है। अगर दूसरा कोई वैसा करने की कोशिश करेगा तो वह रामलीला का राम होगा, वह असली राम नहीं होगा। तो तुम्हें रामलीला के राम भी जंच जाएंगे, रामलीला में भी जो राम बन जाते हैं, गांव का कोई लफंगा ही राम बन जाए, तो भी गांव के लोग उसके पैर छूते हैं। जानते हैं के ये सज्जन कौन हैं, भलीभांति जानते हैं, मगर मुकुट-वुकुट इत्यादि बांधे हुए, धनुषबाण लिए... । सीता जी भी जो बनी बैठी हैं वह भी गांव का ही कोई लड़का बना बैठा है। उसके भी पैर पड़ रहे हैं--जय हो सीता मैया की! और जानते हैं भलीभांति कि कौन हैं। लेकिन उनकी धारणा से मेल खा रहा है। बस धारणा से मेल खा जाए तो उनका सिर झुक जाता है।

मैं राम नहीं हूं। तो जो राम की धारणा से मेरे पास आएगा, वह तो खाली हाथ लौट जाएगा--निराश, हताश। कोई कृष्ण की धारणा से भरा आया है, कोई बुद्ध की, कोई महावीर की। यहां सबकी अपनी धारणाएं हैं। यह देश अतीत की धारणाओं से इतना दबा है कि यहां बहुत थोड़े से व्यक्ति हैं जो खाली आंख से देखने में समर्थ हैं।

निश्चित, जो खाली आंख से देखने में समर्थ हैं वे भारतीय मेरे पास आ रहे हैं, आते रहेंगे। मुझसे तो केवल उन भारतीयों का संबंध जुड़ सकता है जो अब एक अर्थ में भारतीय नहीं हैं--सिर्फ मनुष्य हैं, मानवीय हैं,

जागतिक हैं; जिनके चित्त का आकाश बड़ा है, छोटी-छोटी सीमाओं में संकुचित नहीं है--हिंदू की, मुसलमान की, ईसाई की, जैन की, सिक्ख की। उन भारतीयों से मेरा संबंध जुड़ेगा। वे ही केवल परख पाएंगे इस हीरे को, क्योंकि उनके पास आंख होगी--खाली, अपेक्षा-शून्य, और एक परिप्रेक्ष्य होगा, एक फासला होगा, एक दूरी होगी। वे देख सकेंगे। मेरे और उनके बीच में राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर कोई खड़े नहीं होंगे। अगर मेरे और तुम्हारे बीच में कोई भी खड़ा है तो आड़ बन जाएगी, तुम मुझे नहीं देख पाओगे।

और मैं किसी की भी धारणा को पूरा नहीं कर सकता। मैं अपने ढंग से ही जीऊंगा। मैं किसी भी समझौते को राजी नहीं हूं। लाखों भारतीय आ सकते हैं, अगर मैं जरा समझौता करूं। और समझौता कठिन नहीं है। मैं बुद्ध जैसे कपड़े पहन कर बैठ सकता हूं, तो जो बौद्ध धारणा के लोग हैं वे तत्क्षण मेरे पास आने लगेंगे। मगर वैसा झूठ संभव नहीं है, वैसा समझौता संभव नहीं है। मैं तो जैसा हूं वैसा ही जीऊंगा; कोई आए ठीक, कोई न आए ठीक; कोई बिल्कुल न आए तो भी ठीक। कोई उपाय नहीं है। मैं जैसा हूं उससे रत्ती भर समझौता नहीं किया जा सकता। इसलिए मुझसे उनके ही संबंध जुड़ेंगे जो किसी तरह का समझौता कराने की आकांक्षा लेकर नहीं आए हैं--जो सीधा-सीधा मुझे देखने को राजी हैं।

स्वामी रामतीर्थ अमरीका से वापस लौटे। अमरीका में उन्हें अपूर्व सत्कार और सम्मान मिला। हजारों लोग उनकी सुगंध में नाचे। राम थे भी आदमी बहुत अदभुत! परमात्मा की झलक उनके शब्द-शब्द में थी, उनके उठने-बैठने में थी, उनकी पलक-पलक में थी। लेकिन जब वे भारत आए तो सोचा कि काशी से ही यात्रा शुरू करें भारत की। बस काशी में ही मुश्किल हो गई। मुझसे पूछते तो कहता कि काशी को तो बिल्कुल छोड़ ही दो; काशी से तो यात्रा शुरू हो ही न पाएगी। और वही हुआ। सोचा था कि काशी के लोग तो समझेंगे; जब अमरीका जैसे देश के लोग, जिनको धर्म से कोई संबंध नहीं रहा, वे इतने आह्लादित हुए हैं, इतने आनंदमग्न हुए हैं, नाच उठे हैं, तो काशी में तो लोग अपने हृदय खोल देंगे, पलक-पांवड़े बिछा देंगे; में जो कहता हूं उसे काशी में तो लोग समझेंगे ही। लेकिन काशी में कोई नहीं समझा। उलटे एक पंडित बीच में खड़ा हो गया और उस पंडित ने कहा कि यह क्या बकवास लगा रखी है, यह कोई वेदांत है? संस्कृत आती है?

रामतीर्थ को संस्कृत नहीं आती थी। फारसी से पढ़े थे। पंजाब में पैदा हुए थे। उन दिनों फारसी के दिन थे। उर्दू जानते थे, फारसी जानते थे, अंग्रेजी जानते थे, संस्कृत नहीं आती थी। दुनिया में किसी ने पूछा नहीं था कि संस्कृत आती है या नहीं! अब बुद्ध होने के लिए कोई संस्कृत का आना अनिवार्य है? अगर ऐसा हो तो बुद्ध भी बुद्ध नहीं थे, क्योंकि उनको भी संस्कृत नहीं आती थी और महावीर भी जिन नहीं थे क्योंकि उनको भी संस्कृत नहीं आती थी। और मोहम्मद, बेचारे मोहम्मद का तो क्या हिसाब लगाओ! और जीसस और मूसा और जरथुस्त्र और लाओत्सु, इनको तो हिसाब के बाहर छोड़ दो।

रामतीर्थ ने कहाः संस्कृत तो मुझे नहीं आती। वह पंडित तो खिलखिला कर हंसा ही, और भी लोग खिलखिला कर हंसे। उन्होंने कहाः संस्कृत नहीं आती तो क्या वेदांत बघार रहे हो! पहले संस्कृत सीखो। बिना संस्कृत जाने वेदांत जानोगे कैसे? ब्रह्मसूत्र पढ़ो पहले।

ब्रह्मसूत्र राम ने नहीं पढ़ा था। राम ने ब्रह्म को पढ़ था, ब्रह्मसूत्र क्या खाक पढ़ते! जब ब्रह्म को ही पढ़ लिया था तो अब ब्रह्मसूत्र क्या पढ़ना? जहां से बादरायण ने ब्रह्मसूत्र पाया था, जब उस मूलस्रोत में ही डुबकी खुद राम ने मार ली थी तो उधार बादरायण को क्यों जाना? न उपनिषद पढ़े थे, न वेद पढ़ा था। पंडितों ने सलाह दी कि पहले संस्कृत सीखो, फिर वेदांत; नहीं तो तुम समझोगे ही नहीं। खुद ही नहीं समझोगे, दूसरों को क्या समझाओगे?

उनमें से एक ने भी इस आदमी के भीतर नहीं झांका। राम यह स्थिति देख कर इतने चकित हुए, अवाक हुए कि उन्होंने कहा कि इस तरह के लोगों के बीच श्रम करने से फायदा क्या है! और इन्हीं लोगों के गैरिक वस्त्र पहन कर मैं सारी दुनिया में संदेश देने गया था। उन्होंने उसी दिन गैरिक वस्त्र छोड़ दिए। साधारण वस्त्र पहन लिए और हिमालय चले गए। उनके मित्रों ने कहा भी कि आपने गैरिक वस्त्र क्यों छोड़ दिए? तो उन्होंने कहाः इसलिए छोड़ दिए कि जिनसे गैरिक वस्त्रों को पहचाने जाने की आशा थी वे नहीं पहचान पाए, तो अब इनको रखने का क्या सार है? इनका कोई मूल्य नहीं रहा। असल में गैरिक वस्त्र छोड़ कर उन्होंने यह घोषणा कर दी कि मैं तुम्हारी तथाकथित सड़ी-गली परंपरा से मुक्त होता हूं, अलग होता हूं। अब तुम मुझे अपना संन्यासी मत समझो।

यह ऐसा ही सदा होता रहा है। जो लोग दूर-दूर देशों से यहां आए हैं और करीब-करीब तीस देशों से लोग यहां आए हैं, दुनिया के कोने-कोने से--वे धारणा-शून्य, दर्पण जैसा खाली मन लेकर आते हैं। उनके दर्पण जैसे मन में मेरा वही रूप उभरता है जो है। यहां जो लोग दूसरे देशों से आए हैं, वे मुझमें जीसस को पाना नहीं चाहते। कभी-कभी वैसे लोग आ जाते हैं, वे चूक जाते हैं। कभी-कभी कोई बूढ़ा, कभी कोई वृद्धा आ जाती है, जो कहती है कि मैं तो जीसस को मानती हूं, आपको कैसे मान सकती हूं? तो ठीक है, मेरा संबंध नहीं बन पाता। तो एक अवसर उसे मिला था वह चूक गई।

मगर भारत में तो ऐसे निन्यानबे प्रतिशत लोग हैं, जो पहले से ही धारणाएं बना कर बैठे हैं। उनकी धारणाएं ही अड़चन हैं। थोड़े से सौभाग्यशाली जिनकी कोई धारणा नहीं है या जो इतने साहसी हैं की धारणा को छोड़ सकते हैं, जो मन को एक तरफ सरका कर रख सकते हैं और सीधे-सीधे देख सकते हैं--आंख में आंख डाल कर, हृदय में हृदय डाल कर--वे मुझे जरूर पहचान लेंगे। वे नहीं पहचानेंगे तो कौन पहचानेगा? मैं उन थोड़े से लोगों के लिए ही हूं।

यह देश बहुत पुराणपंथी है। इसलिए अड़चन है। फूल तो खिला है, सुगंध भी उड़ रही है, मगर तुम्हारे नासापुट सड़ गए हैं। तुम्हारे नासापुट विशिष्ट तरह की सुगंध के आदी हो गए हैं। अब तुम किसी और सुगंध को समझ ही नहीं सकते। और जिन सुगंधों को तुम समझ सकते हो उनका उड़ना कभी का बंद हो चुका है। वे अब अतीत की बातें हो गईं।

अब राम काम नहीं आ सकते, न कृष्ण, न बुद्ध, न महावीर। जैसे ही कोई सदगुरु विदा होता है, बस कहानी रह जाती है। फिर पत्थर में बनी मूर्तियां रह जाती हैं। कागजों पर खुदे हुए शब्द रह जाते हैं। फिर पूजते रहो, पूजा हो सकती है, जीवन-रूपांतरण नहीं। फिर पूजो लाख, पटको सिर जितना पटकना हो, मगर तुम जैसे हो वैसे के वैसे रहोगे। शायद इसलिए तुम मजे से सिर पटकते हो क्योंकि तुम्हें डर भी नहीं है, कुछ होगा भी नहीं। गीता पर सिर पटको कि कुरान पर सिर पटको, क्या फर्क पड़ता है? तुम जानते हो कि तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे, न कुरान कुछ बिगाड़ लेगा, न गीता कुछ बिगाड़ लेगी। न राम कुछ कर सकते हैं, न कृष्ण कुछ कर सकते हैं। राम-कृष्ण क्या करेंगे? तुम्हारे ही हाथ के बनाए हुए खिलौने हैं, तुम्हारी ही मूर्तियां हैं। तुम्हारे ही बस में हैं। चाहो तो मुकुट पहना दो, चाहो तो उतार लो। चाहो तो प्रसाद लगाओ, चाहो तो न लगाओ। चाहो तो नहला दो, चाहो तो न नहलाओ। तुम्हारे हाथ में है, तुम्हारे बस में है।

सदगुरु तुम्हारे हाथ में नहीं होता, तुम्हारे बस में नहीं होता। सदगुरु के हाथ में तुम्हें होना पड़ता है। वही जोखम है। इसलिए जीवित गुरु से जो नहीं जुड़ पाता, वह सिर्फ धोखा दे रहा है, आत्मवंचना कर रहा है। वह मुर्दा गुरुओं की पूजा करके अपने को समझा रहा है कि मैं धार्मिक हूं, लेकिन धार्मिक नहीं है।

जो फूल अब नहीं रहे, उनकी सुवास कैसे रहेगी? जो वृक्ष ही अब नहीं रहे, उनकी छाया में बैठे हो तुम! किसको धोखा दे रहे हो? जो नदियां सूख गईं, उनके किनारे बैठे हो कि तुम्हारी प्यास तृप्त हो जाएगी! होश सम्हालो! उन नदियों को तलाशो जहां जलधार अभी बहती है। उन वृक्षों को खोजो जहां अभी शाखाएं हरे पत्तों से लदी हैं और जहां फूल खिलते हैं और फल हैं। उन व्यक्तियों को खोजो जहां अभी परमात्मा बोल रहा है; जहां अभी परमात्मा जाग रहा है; जहां अभी परमात्मा जी रहा है; जहां अभी परमात्मा नाच रहा है। उसी नृत्य के साथ जुड़ सको तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो सकती है।

पर कृष्ण वेदांत चिंतित मत होना। जैसा मेरे साथ हो रहा है वैसा ही अपेक्षित है। वैसा ही होता है। वैसा ही होता रहा है। वैसा ही होता रहेगा। इसमें समय मत गंवाओ। इसलिए मेरी उनमें चिंता ही नहीं है जरा भी। मेरी तो सिर्फ उन्हीं की तरफ सारी जीवन-ऊर्जा लगी है, जो राजी हैं बदलने को। जो मुझे पहचानने को राजी हैं बस उनके साथ ही मेरा संबंध है, बाकी से मेरा कोई संबंध नहीं है।

मेरी अपनी दुनिया है। जो मुझे पहचानने को राजी हैं, बस वही मेरी दुनिया है। बाकी दुनिया को उपेक्षा कर देना है।

सदा ही बुद्धों के पास एक अलग दुनिया बसती है--इस दुनिया से बहुत भिन्न। उसे बुद्ध-क्षेत्र कहो, जिन-क्षेत्र कहो, उसे जो भी नाम देना हो दो। वह बुद्ध-क्षेत्र, वह जिन-क्षेत्र बन रहा है। प्रेमी आते जा रहे हैं, आते जाएंगे। लाखों लोग रूपांतरित होने वाले हैं। और मैं अपनी सारी ऊर्जा और सारी शक्ति उन पौधों पर ही निछावर करना चाहता हूं जो तैयार हैं खिलने को। उन बीजों के साथ सिर मारने की मेरी तैयारी नहीं जो पत्थर होने की जिन्होंने जिद कर रखी है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मैं मोक्ष नहीं चाहता हूं। मैं तो चाहता हूं कि बार-बार जीवन मिले। आप क्या कहते हैं?

रामाधार! मोक्ष तो चाहो भी, तो भी मिलना आसान कहां? नहीं चाहते हो, नहीं मिलेगा, घबड़ाओ मत। नाहक की चिंताएं न लो। कोई मोक्ष ऐसे तुम्हारे पीछे नहीं पड़ा है! मोक्ष के पीछे भी तुम पड़ो तो भी मिलेगा कि नहीं, आसान नहीं। तुम व्यर्थ की दुश्चिंताओं से घिर रहे हो। कोई मोक्ष तुम्हें दे रहा है? कहीं मोक्ष मिल रहा है, जो तुम कहते हो मैं मोक्ष नहीं चाहता हूं? तुम तो ऐसे डरे मालूम पड़ते हो कि जैसे मैं तुम्हारे ऊपर मोक्ष डालने को ही तैयार हूं!

मोक्ष कोई वस्त्र तो नहीं कि मैं बदल दूंगा। और मोक्ष कोई रंग तो नहीं कि मैं तुम्हें रंग दूंगा। मोक्ष कोई वस्तु तो नहीं कि तुम न भी चाहो तो तुम्हें दे दूंगा। मोक्ष कोई जबरदस्ती तो नहीं।

मोक्ष का अर्थ समझते हो? परम स्वातंत्र्य! तुम नहीं चाहते हो, तो नहीं घटेगा। निश्चिंत रहो, जन्मों-जन्मों तक निश्चिंत रहो। अनंत काल तक निश्चिंत रहो। तुम नहीं चाहते तो नहीं घटेगा। मोक्ष तुम्हारी परम स्वतंत्रता में घटेगा। तुम जब परिपूर्णता से चाहोगे तो घटेगा। और तब भी आसान नहीं कि तुमने चाहा और घट गया। बड़ी परीक्षाएं और बड़ी अग्नियों से गुजरना है। बड़ी मुश्किल से घटता है। यह कोई उतार नहीं है, चढ़ाव है। यह पर्वत-शिखरों की ऊंचाइयों पर चढ़ना है; सांस घुटने लगती है, पैर टूटने लगते हैं, हिम्मत छूटने लगती है। यह कोई छोटी-मोटी नदी की जलधार नहीं है कि छलांग लगा गए। यह अपार सागर है, जिसमें दूसरा किनारा तो

दिखाई ही नहीं पड़ता। और नावें हमारी बड़ी छोटी हैं और हाथ हमारे छोटे हैं, पतवार हमारी छोटी है। इनमें तो सिर्फ दुस्साहसी उतर पाते हैं।

तुम चिंतित न होओ रामाधार, तुम मोक्ष नहीं चाहते, तथास्तु! मोक्ष नहीं होगा!

तुम कहते होः "मैं तो चाहता हूं कि बार-बार जीवन मिले।"

जरूर मिलेगा। अब तक मिलता रहा, आगे भी मिलता रहेगा। अब तक अनंत-अनंत जीवन मिले हैं। चौरासी कोटि योनियों में भटके हो, तब मनुष्य हुए हो। कीड़े-मकोड़ों से लेकर अब तक की लंबी यात्रा है। जैसी तुम्हारी मर्जी। फिर चौरासी कोटि योनियों में जाना हो तो जा सकते हो। तुम जो कामना करोगे, परमात्मा उसी को आशीष दे देता है। तुम्हारी ही मौज है। अगर तुम्हें नालियों में ही सरकना है, आकाश में उड़ना नहीं, तो नालियों में सरको। गुबरीले को तो गोबर ही स्वर्ग मालूम होता है। गुबरीले को गोबर से अलग करो तो कहेगाः यह क्या करते हो? मुझे तो बार-बार गुबरीला ही होना है। तुम जानते हो कि बेचारा गोबर में सड़ रहा है। मगर गुबरीले की तो समझ ही उतनी है। गोबर ही उसकी दुनिया है। उस दुनिया के पार तुम उसे गुलाब के फूलों के पास बिठाओ, वह कहेगाः यहां कहां ले आए? तुम उसे कमल के फूलों पर बिठा दो, वह कहेगाः भाई, क्यों मुझे मार रहे हो? क्यों मेरा जीवन लेने को तैयार हो? मुझे तो गऊ माता का गोबर चाहिए।

तुम्हें अगर बार-बार जन्म लेना है तो बार-बार जन्म मिलेगा। परमात्मा तुम्हारे विपरीत कभी कुछ न करेगा। परमात्मा ने तुम्हें परम स्वतंत्रता दी है। यही मनुष्य का गौरव है और यही मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना भी है। गौरव है कि तुम जो चुनो वही हो जाओगे और दुर्घटना, कि तुम गलत चुनते हो, कि तुम्हारे सौ चुनाव में निन्यानबे चुनाव गलत होते हैं, कि तुम भूल-चूक से ही कभी ठीक चुन पाते हो। तुम्हारे सब गणित गलत हैं। तुम्हारे हिसाब-किताब गलत हैं।

क्यों तुम बार-बार जन्म लेना चाहते हो? इस जन्म में क्या पाया है? जरा पूछो, इस जन्म में क्या पाया है? दौड़े-धापे, मिला क्या? और अगर कुछ मिल भी गया, थोड़ा धन भी मिल गया, थोड़ा पद भी मिल गया--कि हो गए देश के प्रधानमंत्री कि राष्टपति--तो भी क्या मिला?

थोड़ा सोचो, जीवन तो तुम्हारे पास है, इस जीवन में तुमने क्या पा लिया है, जो तुम फिर-फिर जीवन पाना चाहते हो? मेरा अनुभव कुछ और। मेरा अवलोकन कुछ और। मेरा अवलोकन यह है कि जिनको जीवन में कुछ नहीं मिला वे ही बार-बार जीवन पाना चाहते हैं। जिनको कुछ मिला है वे तो कहेंगेः अब बहुत हुआ।

क्यों? तुम्हें बात उलटी लगेगी, पर समझने चलोगे तो साफ है, साफ-सुथरी है--दो और दो चार जैसी साफ-सुथरी है। जिन्हें कुछ नहीं मिला, वे ही बार-बार जीवन पाना चाहते हैं। क्योंकि कुछ मिला नहीं, इस जीवन में भी नहीं मिला, शायद अगले में मिल जाए; अब तक नहीं मिला, शायद कल मिल जाए।

कल की आशा उन्हीं को होती है जिनका आज खाली है। और मजा यह है कि जिनका आज खाली है उनका कल और भी खाली होगा, क्योंकि कल आएगा कहां से? आज से ही तो निकलेगा! कल आज का ही तो विकसित रूप होगा! कल कहीं आसमान से नहीं आता; तुम्हारे आज में से ही निकला हुआ अंकुर होता है। जब आज खाली है, कल और भी खाली होगा। खालीपन का और चौबीस घंटे का अभ्यास बढ़ जाएगा। जब आज तुम रिक्त हो तो कल तुम और भी दरिद्र हो जाओगे।

बच्चे समृद्ध होते हैं, बूढ़े दरिद्र हो जाते हैं। बच्चे भरे-पूरे होते हैं, बूढ़े बिल्कुल चुक जाते हैं। रस उनका बह जाता है छिद्रों से। बच्चों में तो थोड़ा उल्लास दिखाई पड़ता है; बूढ़ों में न कोई उमंग, न कोई उल्लास, सब सूख गया होता है। क्या हुआ? जीवन अगर महत्वपूर्ण था तो बूढ़े तो शिखर हो जाते स्वर्ण के; मंदिर की गरिमा हो

जाते, कलश हो जाते। नहीं; चूंकि जीवन में कुछ नहीं मिला है, इसलिए तुम डरते हो कि कहीं जीवन छिन न जाए; अभी कुछ मिला ही नहीं, और कहीं जीवन छिन न जाए! इसलिए कहते हो, और-और जीवन मिले। मगर जिस ढंग से तुम जी रहे हो इसी ढंग से फिर भी जीओगे। इस ढंग से जीने से तुम्हें कुछ नहीं मिला; तुम कितनी ही बार इसी ढंग से जीओ, कुछ भी न मिलेगा।

एक व्यक्ति ने जीवन में आठ बार विवाह किया। अमरीका में तो आसान है। आठवीं बार विवाह करने के बाद उसे यह बोध आया, यह ख्याल आया--बड़ी हैरानी का ख्याल कि मैंने हर बार स्त्रियां बदलीं लेकिन हर बार मैंने फिर उसी तरह की स्त्री खोज ली। आठों बार बार-बार उसने उसी तरह की स्त्री खोजी। आखिर खोजने वाला तो वही है।

तुम थोड़ा सोचो, एक स्त्री के प्रेम में तुम पड़े या एक पुरुष के प्रेम में पड़े, किसने खोजा? तुमने खोजा। तुम्हारी खोजने की एक दृष्टि है। तुम्हें कौन सी चीजें जंचीं, तुम्हें कौन सी चीजें मन भाईं, कौन सी बात तुम्हें मनचीती लगी? तुम्हारे पास एक मन है, उस मन से तुमने एक स्त्री को प्रेम किया। फिर ऊब गए क्योंकि आशाएं पूरी नहीं हुईं। आशाएं कभी पूरी होती ही नहीं। आशाएं सिर्फ आशाएं हैं, सपने सिर्फ सपने हैं। सपनों में ही अच्छे लगते हैं; जब यथार्थ में उतारने चलोगे, सब व्यर्थ हो जाते हैं, सब टूट-फूट जाते हैं। पानी के बबूले हैं। ओस की बूंदें हैं; दूर से लगती हैं कि मोती चमक रहे हैं, हाथ से पकड़ने जाते हो पानी रह जाता है, हाथ में कुछ और लगता नहीं।

एक स्त्री से ऊब गए, एक पुरुष से ऊब गए; तुमने सोचा कि यह स्त्री काम न आई, गलत स्त्री चुन ली। तुम सोचते हो कि गलत स्त्री चुन ली; तुम यह नहीं सोचते कि मेरा चुनना ही गलत है, चुनने वाला ही गलत है। तुम यह नहीं सोचते। कोई अपने पर जिम्मेवारी थोड़े ही लेता है। यही तो अहंकार के अपने को बचाए रखने के गहरे से गहरे उपाय हैं। कोई यह नहीं कहता कि मेरी भूल है। यह गलत स्त्री चुन ली--चूक हो गई। समझा था कुछ और, निकली कुछ और। धोखा दे गई, बेईमान थी। ऊपर-ऊपर रंग बना रखा था, भीतर-भीतर कुछ और थी। मुझ भोले-भाले आदमी को ठग गई। अब फिर चुनूंगा, दूसरी स्त्री चुनूंगा।

मगर चुनेगा कौन? तुम फिर चुनोगे। तुम ही तो चुनोगे! फिर तुम्हें वे ही बातें जंचेगी। वही चाल फिर तुम्हें पसंद आएगी। वही नाक, वही बालों का रंग, वही शरीर की आकृति-अनुपात फिर तुम्हें जंचेगा। तुम्हें फिर वैसी ही स्त्री पसंद पड़ेगी। थोड़े-बहुत हेर-फेर होंगे, मगर उन हेर-फेरो से कुछ फर्क नहीं पड़ता। बुनियादी रूप से तुम्हें फिर वैसी स्त्री पसंद पड़ेगी जैसी पहली स्त्री थी और फिर चार-छह महीने में वही उपद्रव। फिर भ्रांति का टूटना।

उस आदमी ने आठ बार विवाह किया और फिर अपने संस्मरणों में लिखा कि आज मैं यह कह सकता हूं कि हर बार मैंने जैसे फिर-फिर उसी स्त्री से विवाह किया और हर बार वही हुआ। हर बार वही दुख, दुखांत, नाटक एक ही जगह आकर समाप्त हुआ। तुम पूछो उसने नौवीं बार विवाह किया या नहीं? नहीं किया, क्योंकि एक बात उसे समझ में आ गई कि मैं जो भी चुनूंगा वह गलत होगा। मैं गलत हूं; जब तक मैं नहीं बदल जाता तब तक मेरा सारा चुनाव गलत ही रहेगा।

मोक्ष का अर्थ क्या है? आत्म-रूपांतरण। जीवन को चुनने का अर्थ हैः तुम वही के वही, फिर जीवन चुनोगे, करोगे क्या? समझो कि मैं तुमसे कह दूं कि सौ वर्ष तुम्हें और दिए, तुम करोगे क्या? तुमने जो कल किया था, परसों किया था, उससे कुछ अन्यथा करोगे? क्या करोगे भिन्न तुम? तुम वही मूढ़ता फिर-फिर दोहराओगे। तुम पुनरुक्ति करोगे। सौ वर्ष भी तुम गंवा दोगे--ऐसे ही जैसे तुमने इतने वर्ष अभी गंवा दिए।

और जन्मों के साथ तो एक अड़चन और भी है कि हर मृत्यु के बाद ही तुम पुराने जन्म के संबंध में सब भूल जाते हो। इसलिए उनको पुनरुक्त करना भूलों को और आसान हो जाता है। याद ही नहीं रहती कि पहले कभी भूलें की हैं। हर नये जन्म में ऐसा लगता है कि नया-नया कुछ कर रहे हो। हर बार जब प्रेम होता है तो ऐसा लगता है नया-नया कुछ... हर बार पद की आकांक्षा, नया-नया कुछ... । कितनी बार तुम यह कर चुके हो, कितनी बार!

महावीर के पास एक युवक दीक्षित हुआ, राजकुमार था। महावीर की बातें सुनीं, समझ पड़ीं, दीक्षित हो गया। बात समझ पड़ना और दीक्षित हो जाना एक बात है; फिर दीक्षा की अपनी कठिनाइयां हैं, अपनी अड़चनें हैं। महावीर के संघ का नियम था कि जो पहले दीक्षित हुए हैं उनको आदर दिया जाए। जो बाद में दीक्षित हुए हैं--चाहे उनकी उम्र ज्यादा हो, धनी हों, शिक्षा ज्यादा हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। जो पीछे दीक्षित हुए हैं वे अपने से बड़ों को आदर दें।

पहली ही रात एक गांव में विश्राम हुआ। धर्मशाला छोटी थी तो उसके कमरों में तो उनको जगह मिली जो वृद्ध थे, जो पहले... वृद्ध से मेरा मतलब उम्र में वृद्ध नहीं, दीक्षा में जो वृद्ध थे। उनमें कई उम्र में छोटे भी होंगे। उनमें कई भिखमंगे भी होंगे, दीन-दरिद्र भी होंगे अपनी जिंदगी में। लेकिन राजकुमार तो अभी-अभी दीक्षित हुआ था। उसको किसी कमरे में जगह न मिल सकी। उसको गलियारे में सोना पड़ा। रात भर लोग आते-जाते रहे और गलियारे में उसे नींद न आए। मच्छर काटें। कभी सोया नहीं था गलियारे में। राजमहलों में रहा था। रात भर नींद न आई। उसे लगा यह तो एक झंझट मोल ले ली। सुबह होते ही माफी मांग लूंगा कि क्षमा करो, जो गलती हो गई माफ करो, मैं घर चला। लेकिन इसके पहले कि वह महावीर से जाकर कुछ कहता, सुबह होते ही महावीर उसके पास आए और कहाः तो चले घर? वह तो बहुत चौंका। उसने कहाः आपसे किसने कह दिया? महावीर ने कहाः जो तुमसे कह गया वही मुझसे भी कह गया। ... तो चले घर? मगर एक बात जतला दूं, यह पहला मौका नहीं है जब तुम घर जा रहे हो। और यह पहली दीक्षा नहीं है, ऐसी दीक्षाएं तुम पहले जन्मों में भी कई बार ले चुके हो। और ऐसी ही छोटी-छोटी बातों में उलझ कर वापस लौट गए हो। इस बार जरा हिम्मत कर लो। आया अवसर हाथ फिर न चूक जाए।

महावीर का यह कहना कि पहले भी तू ऐसी ही दीक्षा ले चुका है और बार-बार छोटी-छोटी अड़चनों से लौट गया है, लौट गया है, कभी टिक नहीं पाया--किसी अचेतन गर्भ से स्मृति उठी, आंख के सामने दृश्य पर दृश्य खुलने लगे। उसे दिखाई पड़ा कि हां, पहले भी ऐसा हुआ है। वह महावीर के चरणों में झुक गया और उसने कहाः अब ऐसा न होने दूंगा।

महावीर और बुद्ध दोनों ने एक बहुत अदभुत विज्ञान का प्रयोग किया था--जाति-स्मरण। वह प्रत्येक अपने संन्यासी को पिछले जन्मों की याद दिलाते थे। उसके ध्यान के प्रयोग हैं, जिनसे पिछले जन्मों की याद आनी शुरू हो जाती है। क्योंकि याद तो तुम्हारे अचेतन में पड़ी है, सिर्फ उठाने की बात है। और पिछले जन्मों की याद आने लगे तो बड़े हैरान होओगे तुम। रामाधार, फिर ऐसा प्रश्न न पूछ सकोगे। क्योंकि जन्म तो कई बार हुए, जीवन तो कई बार लिए, हाथ तो कभी कुछ न लगा। हाथ तो सदा राख से ही भरे रहे! आगे भी बहुत बार लेकर क्या करोगे? मन को लोग समझा लेते हैं, अच्छी-अच्छी बातें समझा लेते हैं।

कल मैं एक कविता पढ़ रहा था--

मुक्ति मरण, बंधन है जीवन!

श्रमिक विहग देखे हैं प्रतिदिन,
भू से नभ तक दौड़ लगाते!
बंध दो तिनकों के बंधन में,
वे पुनरपि नीड़ों में आते!
बार-बार कह उठता है मन,
मुक्ति मरण, बंधन है जीवन!

सरिता तब तक ही सरिता है,
जब तक तट का मिले सहारा!
बंधन टूटे कौन कहे फिर--
सरिता, कहते जल की धारा,
बंधन सौम्य रूप आकर्षण!
मुक्ति मरण, बंधन है जीवन!

बंधन सरल स्नेह-बंधन पर,
अगणित बार मुक्ति मैं वारूं।
हार अगर यह है जीवन की,
जन्म-जन्म यों ही मैं हारूं!
बंधन जीवन का अवलंबन,
मुक्ति मरण, बंधन है जीवन!

तुम चाहो तो अच्छी-अच्छी कविताएं गढ़ सकते हो। अच्छे-अच्छे विचार के पीछे इस भ्रांत धारणा को छिपा ले सकते हो। तुम कह सकते हो कि सरिता सागर में उतर कर खो जाएगी, फायदा क्या उतरने से?

सरिता तब तक ही सरिता है,
जब तक तट का मिले सहारा!
बंधन टूटे कौन कहे फिर--
सरिता, कहते जल की धारा,
बंधन सौम्य रूप आकर्षण!
मुक्ति मरण, बंधन है जीवन!

तुम कह सकते होः मुक्ति तो मृत्यु मालूम होती है, बंधन में ही जीवन है! सरिता देखो किनारों से बंधी जीवित है और किनारों से छूटी कि मरी! बात सच है। किनारों से छूटी कि मरी, यह आधी बात है लेकिन। और आधे सत्य पूरे झूठों से भी बदतर होते हैं। सरिता किनारों से छूट कर मरती नहीं, मुक्त होती है, सागर होती है।

सरिता को अब सरिता तो कोई न कहेगा, लेकिन अब सागर हो गई, सरिता कोई कहेगा कैसे? छोटा विराट हो गया, सीमित असीम हो गया। परिभाषा में बंधा अपरिभाष्य हो गया।

अहंकार तो चाहता है बंधनों में बंधा रहे, क्योंकि अहंकार जी ही सकता है सीमित में। जितनी सीमित स्थिति हो उतना ही अहंकार मजबूत रहता है और जितने ही बड़े होने लगो उतना ही अहंकार क्षीण होने लगता है। जितने फैलोगे, जितने विस्तीर्ण होओगे, जितने ब्रह्म के करीब आओगे--उतना ही अहंकार विदा होने लगेगा। और अहंकार समझाएगा, अपने को बचाने की सब तरह से चेष्टा करेगा।

बंधन सरल स्नेह-बंधन पर,
अगणित बार मुक्ति मैं वारूं!

अहंकार कहेगा, हजार मोक्ष निछावर कर दूंगा में बंधन पर!

बंधन सरल स्नेह-बंधन पर,
अगणित बार मुक्ति मैं वारूं।
हार अगर है यह जीवन की,
जन्म-जन्म यूं ही मैं हारूं!
बंधन जीवन का अवलंबन
मुक्ति मरण, बंधन है जीवन!

लेकिन जरा सावधान। मीठी-मीठी बातों से कुछ भी न होगा। सुंदर-सुंदर तर्कों से कुछ भी न होगा। सत्य छिपाए जा सकते हैं, झुठलाए नहीं जा सकते। जहर कितना ही मीठा क्यों न हो--जहर है। और अमृत कितना ही कड़वा क्यों न हो--अमृत है। और अमृत अक्सर कड़वा होता है और जहर अक्सर मीठा होता है। जहर को मीठा होना ही पड़ता है, नहीं तो पीएगा कौन? अमृत को क्या पड़ी कि मीठा हो। पीने वाले, पहचानने वाले पी ही लेंगे। और अमृत उन्हीं के लिए है--जो पीने वाले हैं, जो पहचानने वाले हैं। जहर तो अपना विज्ञापन करता है, अपनी मिठास का विज्ञापन करता है। अमृत तो विज्ञापन करता ही नहीं। आ जाएंगे खोजी।

तो रामाधार, तुम्हारा मन तुम्हें समझा दे सकता है कि जीवन बड़ा सुंदर है। और मैं नहीं कहता कि जीवन सुंदर नहीं है, मगर मैं किसी और जीवन की बात कर रहा हूं! मैं उस जीवन की बात कर रहा हूं, जब तुम्हारे भीतर मोक्ष का आकाश खुल गया। और तुम उस जीवन की बात कर रहे हो, जब तुम्हारे भीतर न कोई प्रकाश है, न कोई आत्मा है, न कोई बोध है। तुम्हारे भीतर छोटी सी किरण भी नहीं है जागरण की। मूर्च्छित, तंद्रित, सोए हुए--तुम्हारा यह जीवन कोई जीवन है? यह केवल एक लंबी रात है, अंधेरी रात, जिसमें तुम बड़बड़ा रहे हो, सपने देख रहे हो और सपनों को ही सत्य समझ रहे हो।

मगर जैसी तुम्हारी मर्जी। जबरदस्ती तुम्हारे ऊपर कोई मोक्ष थोपा नहीं जा सकता। कम से कम मैं तो ऐसा न करूंगा। अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि बार-बार जीवन मिले, तथास्तु!

तीसरा प्रश्नः ओशो! संन्यास लेने के बाद बहुत मिला--प्रेम, जीने का ढंग... ! धन्यभागी हूं। परंतु कभी-कभी काफी घृणा से भर जाता हूं आपके प्रति--इतना कि गोली मार दूं। यह क्या है प्रभु, कुछ समझ नहीं आता!

आनंद सत्यार्थी! जहां प्रेम है--साधारण प्रेम--वहां छिपी हुई घृणा भी होती है। उस प्रेम का दूसरा पहलू है, घृणा। जहां आदर है--साधारण आदर--वहां एक छिपा हुआ पहलू है, अनादर का।

जीवन की प्रत्येक सामान्य भाव-दशा अपने से विपरीत भाव-दशा को साथ ही लिए रहती है। तुमने अभी जो प्रेम जाना है, बड़ा साधारण प्रेम है, बड़ा सांसारिक प्रेम है। इसलिए घृणा से मुक्ति नहीं हो पाएगी। अभी तुम्हें प्रेम का एक और नया आकाश देखना है, एक और नई सुबह, एक और नये प्रेम का कमल खिलाना है! वैसा प्रेम ध्यान के बाद ही संभव होगा।

मेरे साथ दो तरह के लोग प्रेम में पड़ते हैं। एक तो वे, जिन्हें मेरी बातें भली लगती हैं, मेरी बातें प्रीतिकर लगती हैं। और कौन जाने मेरी बातें प्रीतिकर गलत कारणों से लगती हों! समझो कोई शराबी यहां आ जाए और मैं कहता हूंः मुझे सब स्वीकार है, मेरे मन में किसी की निंदा नहीं है। अब इस शराबी की सभी ने निंदा की है। जहां गया वहीं गाली खाई हैं। जो मिला उसी ने समझाया है। जो मिला उसी ने इसको सलाह दी है कि बंद करो यह शराब पीना। मेरी बात सुन कर कि मुझे सब स्वीकार है, शराबी को बड़ा अच्छा लगता है; जैसे किसी ने उसकी पीठ थपथपा दी! उसे मेरे प्रति प्रेम पैदा होता है। यह प्रेम बड़े गलत कारण से हो रहा है। यह प्रेम इसलिए पैदा हो रहा है कि उसके अहंकार को जाने-अनजाने पुष्टि का एक वातावरण मिल रहा है। यह प्रेम मेरी बात को समझ कर नहीं हो रहा है। इस बात का वह आदमी अपने ही व्यक्तित्व को मजबूत कर लेने के लिए उपयोग कर रहा है। तो प्रेम हो जाएगा। लेकिन इस प्रेम में पीछे घृणा छिपी रहेगी।

तुम्हारे जीवन में प्रेम की कमी है। न तुम्हें किसी ने प्रेम दिया है, न किसी ने तुमसे प्रेम लिया है। और जब मैं तुम्हें पूरे हृदय से स्वीकार करता हूं तो तुम्हारा दमित प्रेम उभर कर ऊपर आ जाता है। लेकिन यह प्रेम अपने पीछे घृणा को छिपाए हुए है। और ध्यान रखना, जैसे दिन के पीछे रात है और रात के पीछे दिन है, ऐसे ही प्रेम के पीछे घृणा है। तो कई बार प्रेम समाप्त हो जाएगा, तुम एकदम घृणा से भर जाओगे। बेबूझ घृणा से! और तुम्हें समझ में ही नहीं आएगा कि इतना तुम प्रेम करते हो, फिर यह घृणा क्यों! घृणा इसीलिए है कि वह जो तुम प्रेम करते हो अभी ध्यान से पैदा नहीं हुआ है--वैचारिक है, भावनागत है।

एक दूसरा प्रेम है जो ध्यान से पैदा होता है। ध्यान से जब प्रेम गुजरता है तो सोने में जो कूड़ा-कचरा है वह सब जल जाता है--ध्यान की अग्नि में। और ध्यान की अग्नि से गुजरता है जब प्रेम तो कुंदन होकर प्रकट होता है। फिर उसमें कोई घृणा नहीं होती। फिर एक समादर है जिसमें कोई अनादर नहीं होता। नहीं तो समादर करने वालों को अनादर करने में देर नहीं लगती। वे ही लोग फूलमालाएं पहनाते हैं, वे ही लोग गालियां देने लगते हैं। वे ही लोग चरण छूते हैं, वे ही लोग गर्दन काटने को तैयार हो जाते हैं।

ऐसी ही तुम्हारी दशा है, आनंद सत्यार्थी!

तुम कहते होः "कभी घृणा से भर जाता हूं, इतना कि गोली मार दूं।"

स्वभावतः, इसके पीछे एक और कारण है, वह भी समझ लेना चाहिए, वह सबके उपयोग का है। संन्यास से जो भी तुम्हें मिलेगा वह इतना ज्यादा है कि तुम उसका कोई भी मूल्य न चुका सकोगे। संन्यास से तुम्हें जो भी मिलेगा वह इतना ज्यादा है कि तुम्हारे सब धन्यवाद छोटे पड़ जाएंगे। और तब तुम मुझे क्षमा न कर पाओगे। तुम्हें जरा बेबूझ बात मालूम पड़ेगी। जो व्यक्ति हमें कुछ दे, हम उसके सामने छोटे हो जोते हैं। अगर हम

उसे कुछ लौटा सकें प्रत्युत्तर में तो हम फिर समतुल हो जाते हैं। लेकिन अगर ऐसी कोई चीज दी जाए कि उसके उत्तर में हम कुछ भी न लौटा सकें, ऋण को चुकाने का उपाय ही न हो, तो फिर हम ऐसे व्यक्ति को कभी क्षमा नहीं कर पाते, माफ नहीं कर पाते।

मेरे एक परिचित हैं, बड़े धनपति हैं। एक बार मेरे साथ ट्रेन में सफर किया। कभी मुझे कहा नहीं था, लेकिन ट्रेन में अकेले ही थे साथ मेरे। बात होते-होते बात में से बात निकल आई। उन्होंने कहा कि आज पूछने का साहस करता हूं। मेरी जिंदगी में एक दुर्घटना अमावस की तरह छाई हुई है। और दुर्घटना यह है कि मैंने अपने सारे रिश्तेदारों को, मित्रों को, सबको इतना दिया कि आज मेरे सब रिश्तेदार धनी हैं, सब मित्र धनी हैं, सब परिचित धनी हैं। धन उनके पास काफी है। और उन्होंने जरूर दिल खोल कर दिया है। मगर कोई भी मुझसे प्रसन्न नहीं! उलटे वे सब मुझसे नाराज हैं। उलटे वे मुझे बरदाश्त ही नहीं कर सकते। यह मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने इतना किया, सबके लिए किया। ...

और यह सच है। मैं उनके रिश्तेदारों को जानता हूं; जो भिखमंगे थे, आज अमीर हैं। मैं उनके मित्रों को जानता हूं; जिनके पास कुछ नहीं था, आज सब कुछ है। यह बात सच है। इस बात में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कि उन्होंने बहुत दिया है और देने में उन्होंने जरा भी कृपणता नहीं की है। उनके हाथ बड़े मुक्त हैं। मुक्त-भाव से दिया है। तो स्वभावतः उनका प्रश्न सार्थक है कि मुझसे लोग नाराज क्यों हैं?

मैंने कहा कि आपको समझ में नहीं आता, लेकिन मैं एक बात पूछता हूं, उससे बात स्पष्ट हो जाएगी। आपने इन मित्रों को, परिजनों को, परिवार वालों को उत्तर में कुछ आपके लिए करने दिया है कभी? उन्होंने कहा कि नहीं, कोई जरूरत ही नहीं है। मेरे पास सब है। और अगर कभी कोई कुछ करना भी चाहा है तो मैंने इनकार किया है कि क्या फायदा! मेरे पास बहुत है। तो मैंने किसी से कोई प्रत्युत्तर में तो लिया नहीं।

बस मैंने कहाः बात साफ हो गई, क्यों वे नाराज हैं। वे आपको क्षमा नहीं कर पा रहे। वे आपको कभी क्षमा नहीं कर पाएंगे। आपने उनको नीचा दिखाया है। उनके भीतर ग्लानि है। वे जानते हैं कि आप ऊपर हैं, दानी हैं, दाता हैं और हम भिखमंगे हैं। भिखमंगे कभी दाताओं को क्षमा नहीं कर सकते।

आप एक काम करो। उनसे मैंने कहाः छोटे-छोटे काम उनको भी आपके लिए करने दो। मुझे पता है आपको कोई जरूरत नहीं, मगर छोटे-छोटे काम... । आप बीमार हो, अगर कोई एक गुलाब का फूल ले आए, तो ले आने दो और गुलाब का फूल लेकर अनुग्रह मानो। कभी किसी मित्र को कह दिया कि भाई यह काम तुमसे ही हो सकेगा, यह मुझसे नहीं हो पा रहा, तुम्हीं निपटाओ। जरा मौका दो उन्हें कुछ करने का। छोटे-छोटे मौके। जरूरत मुझे पता है कि आपको कुछ भी नहीं, आप सारे अपने काम खुद ही कर ले सकते हैं। लेकिन अगर उनको थोड़ा कुछ करने का आप मौका दे सको तो वे आपको धीरे-धीरे क्षमा करने में समर्थ हो पाएंगे। उनको लगेगाः हमने लिया ही नहीं, दिया भी! उनको लगेगाः हम नीचे ही नहीं हैं, समतुल हो गए।

मगर यह उनके अहंकार के विपरीत है। यह वे नहीं कर पाए। दो वर्ष बाद जब मैंने उनसे पूछा, उन्होंने कहाः मुझे क्षमा करें! मैं किसी से ले नहीं सकता। गुलाब का फूल भी नहीं ले सकता! यह मेरी जीवन-प्रक्रिया के विपरीत है। मैं यह बात मान ही नहीं सकता कि मैं और किसी से लूं। मैंने देना ही जाना है, लेना नहीं।

फिर मैंने कहा कि जिनको आपने दिया है वे आपके दुश्मन रहेंगे।

आनंद सत्यार्थी, यही कठिनाई यहां हैः इसलिए नहीं कि मैं तुमसे कुछ लेने में संकोच करूं। इसलिए नहीं कि मेरा कोई अहंकार है। मगर यह जो देना है यह ऐसा है कि इसका लौटाना हो ही नहीं सकता। मैं तो सब उपाय करता हूं, छोटे-छोटे उपाय करता हूं, जो भी मुझसे बन सकता है वह उपाय करता हूं। छोटे-छोटे काम

लोगों को दे देता हूं। कोई जा रहा है अमेरिका, उसको कह देता हूंः एक कलम मेरे लिए खरीद लाना, कि एक पौधा मेरे बगीचे के लिए ले आना। ऐसे मेरे बगीचे में जगह नहीं है। और कलमें इतनी इकट्ठी हो गई हैं कि विवेक मुझसे बार-बार पूछती है, इनका करिएगा क्या? उसको सम्हालना पड़ता है, साफ-सुथरा रखना पड़ता है। और जब फिर कोई जाने लगता है और मैं कहता हूं कि मेरे लिए एक कलम ले आना, तो उसकी समझ के बाहर है कि यह जरूरत क्या है?

जरूरत केवल इतनी है कि मैं तुम्हें एक मौका देना चाहता हूं कि कुछ तुमने मेरे लिए किया।

अभी मैं जल्दी नहीं चाहता कि कोई मुझे गोली मार दे। बाद में मार देना। जरा ठहरो, थोड़ा काम हो जाने दो। वह तो आखिरी पुरस्कार है। लेकिन अभी तो काम शुरू ही शुरू हुआ। अभी जरा सम्हालना। आनंद सत्यार्थी, गोली वगैरह रखना तैयार, मगर सम्हालना। थोड़ा काम व्यवस्थित हो जाने दो। थोड़े संन्यास का यह रंग छितर जाने दो पृथ्वी पर!

हां, कोई न कोई गोली मारेगा। और संभावना यही है कि कोई संन्यासी ही गोली मारेगा--जिसके बिल्कुल बरदाश्त के बाहर हो जाएगा, जो सह न सकेगा; जिसको इतना मिलेगा कि उत्तर देने का उसके पास कोई उपाय न रह जाएगा। आखिर जीसस को जुदास ने बेचा--तीस रुपये में! और जुदास जीसस का सबसे बड़ा शिष्य था, सबसे प्रमुख शिष्य था। उसने ही जीसस को मरवाया। उसने ही सूली लगवाई। और देवदत्त ने बुद्ध को मारने की बहुत चेष्टाएं कीं--और देवदत्त बुद्ध का भाई था, चचेरा भाई था और प्रमुख शिष्य था। अग्रणी शिष्य था।

यह सब स्वाभाविक है। इसके पीछे एक जीवन का गणित है। गणित यह है कि तुम इतने दब जाते हो ऋण से कि तुम करो क्या, गोली न मारो तो करो क्या?

मगर अभी नहीं, जरा रुको। ठीक समय पर मैं खुद ही तुमसे कह दूंगाः सत्यार्थी! कहां है गोली?

साधारण प्रेम का यही रूपांतरण होने वाला है। हर साधारण प्रेम घृणा में बदल जाएगा। इसलिए अगर सच में ही तुम चाहते हो कि मेरे प्रति तुम्हारे मन में कोई घृणा न रह जाए तो तुम्हें ध्यान से गुजरना होगा। ध्यान शुद्धि की प्रक्रिया है--प्रेम को शुद्ध करने का आयोजन है, रसायन है।

यहां कुछ लोग हैं जो मुझे प्रेम करते हैं मगर ध्यान नहीं करते। वे कहते हैंः हमें तो आपसे प्रेम है, अब ध्यान की क्या जरूरत? उनका प्रेम खतरनाक है। उनका प्रेम कभी भी महंगा पड़ सकता है। क्योंकि घृणा इकट्ठी होती जाएगी। ध्यान से घृणा को धोते चलो ताकि प्रेम निखरता चले। तो एक दिन जरूर ऐसे प्रेम का जन्म होता है, जिसके विपरीत तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं होता। उस प्रेम को अनुभव कर लेना अमृत को अनुभव करना है।

चौथा प्रश्नः ओशो!

सुलभ तेरी चाह है,

पर तू कठिन।

पर कर न पाया,

चाह का तेरी शमन।

चाह में बीती उमर,

पर तुम न आए।

मृत्यु जीवन में झलकने लग गई,

पर तुम न आए।

संतोष सरस्वती! परमात्मा को पाने के लिए पहले तो बड़ी तीव्र चाह चाहिए--प्रथम चरण में--अदम्य, अडिग, अचल! ऐसी चाह कि सब दांव पर लगा देने की हिम्मत हो, साहस हो। जैसे पतंगा दौड़ पड़ता शमा की तरफ, ऐसी चाह! मिट जाने की चाह। सब जोखिम उठाने की चाह। ऐसी त्वरा, ऐसी सघनता कि एक ही चाह रह जाए, सारी चाहें उसी एक चाह में समाविष्ट हो जाएं। एक तीर बन जाए तुम्हारा हृदय, परमात्मा की गति को पकड़ ले, परमात्मा के गंतव्य की तरफ चल पड़े।

पहले तो चाहिए ऐसी चाह। और फिर बड़ा विरोधाभासी नियम है, फिर चाहिए चाह का विसर्जन। चाह से ही कोई नहीं पहुंचता; बिना चाह के भी कोई नहीं पहुंचता। चाह तो चाहिए ही चाहिए। लेकिन अंतिम घड़ी में चाह ही बाधा बन जाती है। अंतिम घड़ी में चाह भी छूट जानी चाहिए। उसी क्षण।

पहले चाह तुम्हें निखारती है, संवारती है, अखंडित करती है; फिर चाह भी चली जाती है। जैसे एक कांटे से हम दूसरा कांटा निकालते हैं, फिर दोनों कांटों को फेंक देते हैं। संसार की चाहें हैं--याद रखना, चाहें, चाह नहीं; क्योंकि संसार में बहुवचन का उपयोग करना होगा, बहुत चाहें हैं--धन की, पद की, प्रतिष्ठा की, इसकी, उसकी, न मालूम कितनी चाहें हैं! चाहें ही चाहें हैं! सब दिशाओं में खींचती हैं। इन सारे कांटों को निकालने के लिए परमात्मा की चाह चाहिए; ताकि एक ही कांटा रह जाए, सारे कांटे समाप्त हो जाएं। और जब एक ही कांटा बचे तो उसको भी सम्हाल कर रखने की जरूरत नहीं, उसको भी नमस्कार कर लेना। उसको भी जाकर नदी में अर्पित कर आना। धन्यवाद के साथ, क्योंकि उसने और सारी चाहों से छुटकारा दिलवा दिया।

पहले तो कठिनाई है सारी चाहों को एक चाह पर समर्पित करना, मगर उससे भी बड़ी कठिनाई आखिर में आती है, अंतिम चरण में आती है--जब परमात्मा की चाह भी छोड़ देनी होती है। क्योंकि उस चाह के छोड़ने में ही तुम्हारा अहंकार विसर्जित हो जाता है। आखिर चाह भी तो अहंकार का प्रक्षेपण है। मैं चाहता हूं! हर चाह के पीछे "मैं" खड़ा है। सब चाहों के पीछे "मैं" खड़ा है। परमात्मा की चाह के पीछे भी "मैं" खड़ा है।

जिस दिन तुम परमात्मा की चाह को भी छोड़ दोगे, और सब चाहें तो पहले छोड़ चुके, अब परमात्मा की चाह भी गई, अब "मैं" के लिए कोई सहारा न बचा--"मैं" एकदम गिर जाएगा, बिखर जाएगा, भस्मीभूत हो जाएगा। और जहां मैं नहीं है वहां परमात्मा है।

तुम पूछते होः "सुलभ तेरी चाह है, पर तू कठिन।"

चाह तो सुलभ है, परमात्मा भी सुलभ है, लेकिन चाह को छोड़ना कठिन है। और जिस चाह के लिए सब छोड़ दिया उस चाह को छोड़ना बहुत कठिन हो जाता है।

और संतोष सरस्वती, तुम तो नये-नये साधक हो अभी, बड़े प्रौढ़ साधकों के लिए भी, करीब-करीब जो सिद्धि की अवस्था में पहुंच गए उनके लिए भी कठिन होता है। रामकृष्ण जैसे व्यक्ति के लिए कठिन होता है।

जब रामकृष्ण को उनके अंतिम गुरु तोतापुरी का मिलना हुआ, तो रामकृष्ण करीब-करीब सिद्ध-अवस्था में थे। करीब-करीब में कहता हूं, ख्याल रखना। जरा सी कमी बची थी। लेकिन जगत में तो ख्याति हो गई थी कि रामकृष्ण पहुंच गए। रामकृष्ण को पता था कि अभी थोड़ी सी कमी है, बस एक सीढ़ी और; मगर दूसरों को क्या पता! दूसरे तो देखते थे कि इतनी ऊंचाई, इतनी ऊंचाई, आकाश में पहुंच गए हैं! उनको क्या पता कि एक सीढ़ी और कम रह गई!

तोतापुरी से जब रामकृष्ण का मिलना हुआ तो रामकृष्ण ने निवेदन किया कि बस एक सीढ़ी और रह गई है, इसे मैं कैसे पार करूं? तोतापुरी ने कहाः कठिन नहीं, ऐसे कठिन भी है। कठिन नहीं, क्योंकि इतनी सीढ़ियां पार कर आए तो अब एक पार करने में क्या अड़चन होगी? जैसे और सीढ़ियां पार की हैं ऐसे यह भी सीढ़ी पार करो। सूत्र वही है। जैसे और सब चाहें छोड़ दीं, अब यह परमात्मा की चाह भी छोड़ दो।

और ऐसे कठिन भी है, क्योंकि और सब चाहें तो क्षुद्र थीं। धन की चाह छोड़ने में, पद की चाह छोड़ने में, प्रतिष्ठा की चाह छोड़ने में एक तरह का आनंद ही आया था, आह्लाद हुआ था--कि हलके हुए, कि व्यर्थ का बोझ कटा, कूड़ा-करकट फेंका! मगर परमात्मा की चाह छोड़ना! जिसने सब इसी चाह पर दांव लगाया, उससे कहना इसको भी छोड़ दो! जिसने इसे बचाने के लिए सब छोड़ा, अब उससे कहना इसे भी छोड़ दो! तो कठिन भी है। मगर चेष्टा करो तो हो सकता है।

रामकृष्ण ने कहाः मेरी सहायता करें। मुझ अकेले से न हो सकेगा। मैं तो आंख बंद करता हूं कि काली सामने खड़ी हो जाती है। मैं तो भूल ही जाता हूं। मैं तो रसलीन हो जाता हूं। मुझे तो द्वैत बना ही रहता है--भक्त का और भगवान का। अद्वैत घटता ही नहीं।

तोतापुरी ने कहाः मैं एक काम करूंगा। तू आंख बंद करके बैठ और जैसे ही मैं देखूंगा कि खड़ी हो गई है प्रतिमा और द्वैत उठने लगा और काली की प्रतिमा, तेरी आराध्य की प्रतिमा सामने आ गई, मैं आवाज दूंगा--रामकृष्ण उठा तलवार, कर दे दो टुकड़े! तो फिर देर मर करना, उठा लेना तलवार और कर देना दो टुकड़े।

रामकृष्ण जैसे अदभुत व्यक्ति ने भी पूछाः लेकिन तलवार कहां से लाऊंगा? तोतापुरी ने कहाः यह भी खूब रही! और यह काली मैया कहां से लाया? यह भी कल्पना है तेरी। सतत कल्पना करने से यह प्रतिमा खड़ी हो गई है। जहां से यह लाया वहीं से एक तलवार भी ले आ।

मगर रामकृष्ण ने कहाः मां को और तलवार से काट दूं! इससे तो खुद ही मर जाना पसंद करूंगा।

तोतापुरी ने कहाः फिर जैसी तेरी मर्जी। मगर यह करना ही होगा। अगर तू एक सीढ़ी और पार करना चाहता है तो यह काली को छोड़ ही देना होगा। अब यही बाधा है। यही तेरी आराध्य, यही तेरी पूजा और प्रार्थना, यही तेरी भक्ति-अर्चना, यही बाधा है। तू कोशिश कर।

बार-बार रामकृष्ण आंख बंद करें, कोशिश करें, मगर कोशिश न हो पूरी। आंख बंद करें कि आंसुओं की धार, कि आनंदमग्न हो डोलने लगें। और तोतापुरी कहेंः फिर वही! अब तू यह किसलिए डोल रहा है? क्योंकि अद्वैत-भाव में डोलना वगैरह नहीं होता। और आंसू वगैरह की क्या जरूरत है? अद्वैत-भाव में तो सब थिर हो जाता है।

रामकृष्ण कहेः मगर मैं भूल ही जाता हूं, आपकी याद ही नहीं रहती। आपने जो कहा वह भी भूल जाता है। जैसे ही आंख बंद करता हूं और मां के दर्शन होते हैं--अहा, बस फिर मुझे न आपकी याद रहती है, न आपके उपदेश की याद रहती है।

तो तोतापुरी ने कहा कि मैं अब आखिरी उपाय करूंगा, क्योंकि कल सुबह मुझे जाना है। वे गए और रास्ते से एक कांच का टुकड़ा उठा लाए। पड़ा होगा किसी बोतल का टूटा हुआ। और उन्होंने रामकृष्ण को कहा कि तू आंख बंद कर और जैसे ही मैं देखूंगा कि डोलने लगा, आंख में आंसू आने लगे, जैसे ही मुझे लगेगा कि अब प्रतिमा खड़ी हुई, मैं तेरे माथे को इस कांच के टुकड़े से काट दूंगा। और जब मैं तेरे माथे को काटूं, उस वक्त तू भी एक बार हिम्मत करके उठा कर तलवार दो टुकड़े कर देना। इधर मैं तेरा माथा काटूं उधर तू मैया को काट देना।

बात तो बड़ी कठिन थी। बड़ी मुश्किल थी। अपनी मां को साधारणतः मारना बहुत मुश्किल है। और फिर काली मां को मारना तो और भी बहुत मुश्किल है। और यही तो जिंदगी भर की साधना थी रामकृष्ण की। और इस साधना में खूब फूल खिले थे और खूब रस बहा था, खूब आनंद उमगा था, खूब गीत जन्मे थे। इस सबको पोंछ देना एकबारगी! मगर तोतापुरी कल सुबह चला जाए... और तोतापुरी जैसा आदमी मिलना फिर मुश्किल है।

तो हिम्मत की, तोतापुरी ने काट दिया माथा। लहूलुहान, खून की धार बह गई रामकृष्ण के माथे से। और जब तोतापुरी ने माथा काटा तब उन्हें भी याद आई भीतर। उठाई उन्होंने एक तलवार कल्पना की और दो टुकड़े कर दिए काली के। छह घंटे के लिए थिर हो गए। रोआं भी न हिला। छह घंटे के लिए पत्थर हो गए! और जब आंख खोली तो आज एक अपूर्व दशा थी--जो आनंद के भी पार है, जो सारी अभिव्यक्तियों के पार है! रामकृष्ण ने जो वचन, पहला वचन बोला छह घंटे के बाद वह यही थाः आज अंतिम बाधा गिर गई। बहुत-बहुत धन्यवाद दिया तोतापुरी को कि तुम्हारी करुणा अपार है। आज अंतिम बाधा गिर कई! आज आखिरी सीढ़ी पार हो गई।

चाह भी छोड़नी होती है। वही कठिनाई है।

पूछते तुम संतोष--

"सुलभ तेरी चाह है,

पर तू कठिन।

पर कर न पाया,

चाह का तेरी शमन।

चाह में बीती उमर,

पर तुम न आए।

मृत्यु जीवन में झलकने लग गई,

पर तुम न आए।"

अगर चाहते हो कि परमात्मा आए तो चाह को भी जाने दो। यह मांग भी मत उठाओ। यह शर्त भी मत लगाओ।

ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

--ऐसा जीवन का गणित है। यह चाह तो "मैं" कह ही भाव है। यह चाह तो ममता ही है--परमात्मा मेरा हो जाए, मेरी मुट्ठी में हो जाए। यह अहंकार की अंतिम सूक्ष्म प्रक्रिया है। सावधान! सावचेत!

ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

मानव की सामर्थ्य नहीं है

मानव की अवहेला कर दे!

ओ अभिमानी इसीलिए क्या,

तुम निर्मम पाषाण बन गए!

ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

युग-युग तुम्हें सजीव बना कर,
अक्षत, रोली, फूल चढ़ाए!
किंतु दान देने की बेला,
तुम तो फिर निष्प्राण बन गए!
ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

चाहा कब था पलकों से,
बाहर नयनों का आए पानी!
पर उर के उदगार अधर पर,
आते-आते गान बन गए!
ज्यों-ज्यों तुम्हें बनाया अपना, त्यों-त्यों तुम अनजान बन गए!

परमात्मा को अपना बनाना हो तो "मैं" को मिटाना पड़ता है। नहीं तो परमात्मा और-और अनजान बनता जाता हैं। जब तक "मैं" है तब तक दूरी है। "मैं" ही दूरी है। "मैं" के अतिरिक्त और कोई दूरी नहीं है।

तुम हृदय के पास हो
है पास जितनी सांस ये,
दूर हो तुम दूर जितनी
चिर मिलन की आस है!

तुम मधुर हो मधुर जितनी
प्रीति की मृदु भावना,
किंतु कटु इतने कि जितनी
स्वार्थों की साधना!

तुम सरल हो सरल जितनी
शिशु-हृदय की भावना,
तुम कुटिल हो कुटिल जितनी
है कपट की कामना!

तुम विकल हो विकल जितनी
मृदु-मिलन की कामना,
शांत हो तुम शांत जितनी
है विरागी भावना!

तुम करुण हो करुण जितनी
विफल आंसू-धार है,
तुम निठुर हो निठुर जितना
मृत्यु का प्रहार है!

तुम हृदय के पास हो
है पास जितनी सांस ये,
दूर हो तुम दूर जितनी
चिर मिलन की आस है!

सब तुम पर निर्भर है। तुम्हारा परमात्मा तुम्हारा ही प्रतिबिंब है। जब तक तुम हो तब तक तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी ही छाया होगा। तुम्हारे मंदिरों में तुम्हारी ही मूर्तियां विराजमान हैं, क्योंकि तुमने उन मूर्तियों को अपनी ही कल्पना में गढ़ा है। तुम्हारी मस्जिदों में तुम्हारी ही प्रार्थनाएं की जा रही हैं--तुम्हारे ही द्वारा। और तुम्हारे चर्चों में तुम अपने ही सामने, अपने ही प्रतिबिंबों के सामने घुटने टेके खड़े हो।

जब तक "मैं" शेष है तब तक तुम जो भी करोगे उसमें भ्रांति कायम रहेगी। एक ही सूत्र है--परम सूत्रः "मैं" को विदा कर दो! शून्य हो जाओ, रिक्त हो जाओ।

घबड़ाहट होगी रिक्तता में बहुत, बेचैनी होगी बहुत, डर लगेगा बहुत। लगेगा कि मृत्यु हो गई। मृत्यु है भी वह। अहंकार की मृत्यु--महामृत्यु है! लेकिन उसी मृत्यु में महा जीवन का अवतरण होता है।

धन्य हैं वे जो अहंकार की दृष्टि से मर जाते हैं, क्योंकि उनके जीवन में परमात्मा उतरता है।

तुम जब तक हो, परमात्मा नहीं है। तुम जहां नहीं वहां परमात्मा है। तुम खो जाओ तो परमात्मा मिल जाए। तुम बने रहो तो परमात्मा खोया रहेगा।

परमात्मा का पाना सहज है। पहले पाने की गहन आकांक्षा करो, फिर पाने की आकांक्षा को छोड़ दो!

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। मेरी बात को सुन कर एक तो वे हैं, जो कहेंगेः जब छोड़ना ही है तो फिर आकांक्षा करना ही क्यों? उनको परमात्मा कभी नहीं मिलेगा। और दूसरे वे हैं, जो कहते हैंः जब आकांक्षा को ही करना है पूरा-पूरा, तो फिर छोड़ना क्या, छोड़ना क्यों? उनको भी परमात्मा नहीं मिलेगा।

परमात्मा का गणित जरा दुरूह है। पहले जकड़ो पूरा-पूरा। और पकड़ो इसलिए कि छोड़ सको। पकड़ो इतना पूरा-पूरा कि कुछ कंजूसी न रह जाए। और तब छोड़ दो और हाथ खाली हो जाने दो। और तुम चकित हो जाओगे, विस्मयविमुग्ध--रस का सागर तुम में उतर आएगा!

बूंद ही सागर में नहीं गिरती, सागर भी बूंद में गिरता है--लेकिन उस बूंद में सागर गिरता है जो शून्य है। तभी तो सागर को समा पाएगी; नहीं तो छोटी सी बूंद सागर को कैसे समाएगी?

संतोष! अभी तुम बूंद हो--भरी-भरी! खाली हो जाओ। सागर फिर तुम्हारा है। फिर कोई रुकावट नहीं है।

खाली होना सूत्र है। शून्य होना सूत्र है। शून्य होना साधना है। और जो शून्य है वह पूर्ण होकर सिद्ध हो जाता है। शून्य होना साधना है--पूर्णता सिद्धि है।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

जागरण मुक्ति है

पहला प्रश्नः ओशो! युनिवर्सिटी की अनेक डिग्रियां प्राप्त करने, राजनीति में सक्रिय रहने, जेल जाने, दिल्ली दौड़ने में तथा अनेक गुरुओं के भटकाव में मैंने अपनी सारी जिंदगी बरबाद कर दी। आपने करुणावश मुझे, टालमटोल करने पर भी, उन्नीस सौ इकहत्तर में संन्यास दिया। अब सत्तर वर्ष की उम्र देख कर आंसू बहाता हूं। बराबर आता हूं और सोचता हूं कि इस बार भगवान से बहुत कुछ पूछूंगा। लेकिन आपके पास आते ही प्रश्न खो जाते हैं। बुढ़ापे के कारण अंग शिथिल होता जा रहा है। ओशो, मेरे अंतर को समझ कर आप ही मार्गदर्शन करें!

धर्मरक्षित! विश्वविद्यालय शिक्षा नहीं देते, संस्कार देते हैं। संस्कार, जो कि कारागृह बन जाते हैं। शिक्षा तो मुक्तिदायी है। ज्ञान तो वही है जो विमुक्त करे। और जिसे हम आज शिक्षा कह रहे हैं उसका विमुक्ति से क्या संबंध? बंधन तो बनाती है बहुत, मुक्ति को जरा भी पास नहीं लाती।

विश्वविद्यालय विचार देते हैं और मुक्ति आती है निर्विचार से। विश्वविद्यालयों से कितनी ही उपाधियां प्राप्त कर ली जाएं, वे उपाधि के दूसरे अर्थ में ही उपाधि हैं--बीमारी के अर्थ में। उनसे स्वास्थ्य लाभ नहीं होता। उनसे अहंकार तो अर्जित होता है। अहंकार पर सजावट चढ़ जाती है, अहंकार पर फूलमालाएं लग जाती हैं; लेकिन भीतर का खोखापन, भीतर का थोथापन न मिटता है, न मिट सकता है। उसे मिटाने की तो एक ही कला है। उस कला को बाहर से सिखाने का कोई उपाय नहीं है। वह कला तो सत्संग में सहज स्फुरित होती है।

शिक्षा, जिसे तुम कहते हो विश्वविद्यालय की, वहां सत्संग नहीं है। वहां बंधे हुए सिद्धांत, धारणाएं, शब्द, शास्त्र, कोरे मनों के ऊपर थोपे जा रहे हैं। विद्यार्थी आता है एक कोरे कागज की तरह और जब विश्वविद्यालय से लौटता है तो गुदा कागज होता है। कोरे कागज का तो कुछ मूल्य भी है, गुदे कागज का तो कोई मूल्य नहीं--बस रद्दी में बेच दो, जो मिल जाए सो बहुत है।

सत्संग में कागज फिर कोरा होता है। सदगुरु कुछ सिखाता नहीं, मिटाता है। सदगुरु कुछ देता नहीं, छीन लेता है। सदगुरु सिद्धांत नहीं देता; तुम्हारी जो पकड़ है सिद्धांतों पर, शब्दों पर, शास्त्रों पर, उसे शिथिल करता है। और यह सब होता है, किसी सिखावन के द्वारा नहीं--सिर्फ सदगुरु के पास बैठते-बैठते, उसके रंग में रंगते-रंगते, उसके रस में डूबते-डूबते, उसके गीत को सुनते-सुनते, किसी दिन, किसी सौभाग्य के क्षण में बस झरोखा खुल जाता है।

तुम कहते होः "युनिवर्सिटी की अनेक डिग्रीयां प्राप्त करने, राजनीति में सक्रिय रहने... ।"

विश्वविद्यालय सिखाता ही राजनीति है। राजनीति का मौलिक आधार है महत्वाकांक्षा--कुछ हो जाऊं, किसी बड़े पद पर, अग्रणी!

जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो अंतिम हैं, क्योंकि वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे और अभागे हैं वे जो प्रथम हैं, क्योंकि मेरे प्रभु के राज्य में वे अंतिम होंगे।

एक और गणित है--एक महा गणित है परमात्मा का, जहां मापदंड अलग हैं, जहां तराजू और हैं तौलने के। वहां जो अंतिम होने में समर्थ है वही प्रथम समझा जाता है। इस जगत का गणित और है। यहां जो प्रथम होने में समर्थ है वही प्रथम समझा जता है, वही सार्थक, उसी का जीवन सफल।

लेकिन तुम चारों तरफ सफल लोगों की जिंदगियां तो देखो, इनसे ज्यादा असफल जीवन और कहां मिलेंगे! धन तो इकट्ठा हो जाता है, भीतर निर्धनता है। बाहर तो पद हैं और भीतर भिखमंगा बैठा है। हाथ तो हीरों से भरे हैं, आत्मा कूड़े-करकट से।

सारी शिक्षा राजनीति में ले जाती है, क्योंकि सारी शिक्षा का मौलिक आधार है--महत्वाकांक्षा, दूसरे से आगे होने की दौड़। पीछे रह जाओ तो दो कौड़ी के हो; आगे हो जाओ तो हीरे-जवाहरातों में तौले जाओगे। फिर तुम आगे कैसे हुए, यह भी कोई पूछता नहीं। नियम से हुए गैर-नियम से हुए, ईमान से हुए बेईमानी से हुए, इसकी कोई चिंता नहीं; अगर सफल हो गए, तो तुम कैसे सफल हुए उस सब पर फूलमालाएं चढ़ जाती हैं। यहां असफल ही पकड़ा जाता है कि उसने कुछ गड़बड़ की है, सफल नहीं पकड़ा जाता। इसलिए तुम देखते हो, जब तक कोई एक व्यक्ति पद पर होता है तब तक वह जो करे सब ठीक; और जैसे ही पद से उतरा कि उसने जो किया सब गलत। और अंधापन ऐसा है कि उसके बाद पद पर जो बैठता है वह भी पद पर बैठ कर यही सोचता है कि अब जो मैं कर रहा हूं सब ठीक।

तुमने इंदिरा को देखा, शाह-कमीशन के सामने! किसी दिन मौका आया और मोरारजी देसाई किसी बादशाह-कमीशन के सामने खड़े हुए, तब पता चलेगा! अभी पता नहीं चलेगा। अभी तो पता कैसे चले? अभी तो सब ठीक है। सत्ता है तो सब ठीक है। जिसकी लाठी उसकी भैंस, ऐसा राजनीति का शास्त्र है।

विश्वविद्यालय की शिक्षा तुम्हें राजनीति में ले गई, यह स्वाभाविक था। राजनीति की दौड़ ही कहां है--दिल्ली की तरफ है! फिर दिल्ली हो कि लंदन हो कि पेकिंग हो कि वाशिंगटन हो कि मास्को, ये सब दिल्ली के ही नाम हैं। वहां थके होओगे, हारे होओगे, व्यर्थता देखी होगी, विफलता देखी होगी, सब बेस्वाद लगा होगा। आदमी समझदार थे तुम, नहीं तो जन्मों-जन्मों पता नहीं चलता। आदमी होशियार थे तुम। तुम्हारे भीतर कुछ ज्योति थी, कुछ अंगारा जलता था, बिल्कुल राख में दब नहीं गया था। इसलिए तुम गुरुओं की तलाश में निकले। गुरुओं की तलाश में निकलता वही है जिसके भीतर परमात्मा की प्यास पैदा होती है। और प्यास तुम्हारी सच में ही सच्ची थी, अन्यथा किसी भी गुरु में उलझ जाते।

जिसके पास सच्ची प्यास है, वह हर किसी में नहीं उलझ सकता। उसकी प्यास ही उसे मार्ग-दिशा देती रहेगी। उसकी प्यास कसौटी है। वह हर चीज को कस कर देख लेगा अपनी प्यास पर कि प्यास बुझती है या नहीं; नहीं बुझती तो और चलो, और आगे हटो, कहीं और खोजो।

ऐसे तुम बहुत गुरुओं के पास भटके, स्वाभाविक है। जहां असली सिक्के होंगे वहां नकली सिक्के भी होंगे। और असली सिक्का तो एक होगा, नकली सिक्के हजार होंगे। और चूंकि नकली प्यास वाले लोग भी हैं, इसलिए नकली सिक्कों की जरूरत भी है। ऐसे ही व्यर्थ नहीं हैं वे। वे भी कोई काम पूरा करते हैं। यहां अधिक लोग मिथ्या गुरु को ही चाहते हैं, क्योंकि मिथ्या गुरु सुविधापूर्ण है। मिथ्या गुरु तुम्हें बदलता नहीं, तुम्हें काटता नहीं, छांटता नहीं। मिथ्या गुरु तुम्हारी धारणाओं को ही सबल करता है, तुम्हारे अहंकार को ही सबल करता है। मिथ्या गुरु तुम्हारे अहंकार को ही नये पंख देता है। मिथ्या गुरु आचरण सिखाता है। और आचरण अहंकार को और सुशोभित कर देता है। मिथ्या गुरु तुमसे कहता हैः स्वर्ग तुम्हारा है, अगर इतने नियम पूरे करो। वह तुम्हें नई राजनीति सिखाता है--स्वर्ग की राजनीति। मगर वही दौड़! दिल्ली न रही, स्वर्ग हुआ, मगर दौड़ तो वही

रही। वह तुम्हें सिखाता हैः अगर इतना आचरण पूरा किया तो स्वर्ग में प्रथम होओगे। मगर प्रथम होने की वह जो रुग्ण आकांक्षा है, उसमें और आग में घी डालता है। तुम्हें डराता है कि अगर आचरण से चूके तो नरक में पड़ोगे। तुम्हें भयभीत करता है।

मिथ्या गुरु वही है जो तुम्हें भयभीत करे, जो तुम्हें लोभ से भरे; क्योंकि लोभ और भय दोनों ही मनुष्य को उसकी शुद्धतम चैतन्य ऊर्जा को अनुभव करने से रोकते हैं। भय भी अटका लेता है, लोभ भी अटका लेता है। भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सदगुरु तो वह है जो भय और लोभ की बात ही नहीं करता। जो यह कहता ही नहीं कि तुम कोई नई महत्वाकांक्षा धर्म के नाम पर जगाओ। जो तुमसे कल की बात ही नहीं करता। जो तुमसे कहता हैः आज काफी है, यही क्षण बहुत है। और जो तुमसे यह भी नहीं कहता कि परमात्मा कल मिलेगा। जो तुमसे कहता हैः परमात्मा अभी उपलब्ध है। आंख खोलो और पा लो! जागो और पा लो! चूक रहे हो तो अपने कारण।

परमात्मा दूर नहीं है; निकट से भी निकट है; श्वास से भी पास है; हृदय की धड़कन से भी पास है। और एक क्षण को भी परमात्मा तुमसे दूर नहीं हुआ है, क्योंकि परमात्मा अर्थात जीवन। परमात्मा अर्थात तुम्हारे हृदय की धड़कन, तुम्हारी श्वास! परमात्मा अर्थात तुम्हारा चैतन्य, तुम्हारा साक्षीभाव।

झूठा गुरु सिखाता है कि परमात्मा तुम्हें देख रहा है। इसे जरा गौर से सुन लेना और खूब सम्हाल कर रख लेना इस सूत्र को। झूठा गुरु तुम्हें सिखाता हैः परमात्मा तुम्हें देख रहा है, डरो। चौबीस घंटे देख रहा है! सोच-समझ कर करना कुछ। जरा कुछ गलता किया तो सड़ोगे नरक में! जरा कुछ गलत किया कि बहुत भुगतोगे, बहुत पछताओगे। क्षमा भी न किए जाओगे। जरा भूल हुई, जरा चूक हुई, नजर में आ जाएगी। कयामत के दिन हिसाब होगा। और अगर ठीक करते रहे और उसका गुणगान करते रहे, उसकी स्तुति करते रहे, उसके गीत गाते रहे, उसकी खुशामद करते रहे, तो स्वर्ग में खूब-खूब पुरस्कार मिलेंगे।

झूठा गुरु सिखाता हैः परमात्मा तुम्हें देख रहा है। सच्चा गुरु सिखाता हैः तुम्हारे भीतर जो देखते वाला है वह परमात्मा है। परमात्मा तुम्हें नहीं देख रहा है। परमात्मा क्या तुम्हें देखेगा? तुम परमात्मा हो! तुम्हारे भीतर देखने वाले का नाम परमात्मा है। तुम परमात्मा के दृश्य नहीं हो, तुम द्रष्टा हो। इस बात को बहुत गहरे में अपने भीतर उतर जाने दो। यह कसौटी का काम करेगी। इस पर कस लेना।

सदगुरु सदा सिखाएगाः साक्षी बनो। कर्ता नहीं; न अच्छे, न बुरे। कर्ता के ऊपर उठो। मिथ्या गुरु सिखाएगाः कर्ता बनो। आचरण, चरित्र, यह-वह। शुभ कार्य करो, सेवा करो, पुण्य करो, दान करो, धर्मशाला बनाओ, मंदिर बनाओ, सत्यनारायण की कथा करवाओ। कुछ करो! धर्म उसके लिए कृत्य है। अधर्म भी कृत्य है। और धर्म भी कृत्य।

सदगुरु कहता हैः धर्म साक्षीभाव है। चैतन्य है, कृत्य नहीं। कृत्य तो सब माया है--अच्छा भी, बुरा भी; पुण्य भी, पाप भी। हां, पाप की जंजीरें लोहे की हैं और पुण्य की जंजीरें सोने की हैं; मगर ध्यान रखना, जंजीरें तो जंजीरें हैं। लोहे की भी बांध लेती हैं, सोने की भी बांध लेती हैं। और यह भी ध्यान रखना कि सोने की जंजीरें ज्यादा मजबूत होती हैं लोहे की जंजीरों से। क्योंकि लोहे की जंजीरें तो किसी को भी दिखाई पड़ जाती हैं कि जंजीरें हैं और लोहे कि जंजीरों को तो तोड़ने की किसी के भी भीतर गहन आकांक्षा पैदा होती है। क्योंकि अपमान होता है, ग्लानि होती है। लेकिन सोने की जंजीरें तो आभूषण मालूम होती हैं। कौन छोड़ना चाहता है! और उलटे आदमी पकड़ता है। कौन तोड़ना चाहता है! और सम्हालता है। कोई अगर तोड़ने आ जाए तोझगड़ेगा, लड़ेगा, बचाएगा, रक्षा करेगा।

पाप तो बांधता ही है, पुण्य भी बांधता है। मुक्ति तो चैतन्य में है। मुक्ति तो जागरूकता में है। मुक्ति तो पाप और पुण्य दोनों को देखने में है।

दोनों को तटस्थ भाव से देखने में समर्थ हो जाओ, धर्मरक्षित! और चिंता न करो कि उम्र हो गई, क्योंकि यह बात तो एक क्षण में घट सकती है। यह तो बोध की बात है। इसके लिए कोई योगासन नहीं साधने हैं।

शरीर शिथिल हो रहा है, चिंता न करो। शरीर शिथिल होना ही है। मौत करीब आ रही है, अच्छा ही है। क्योंकि मौत की पृष्ठभूमि शायद, मौत की चोट-टंकार शायद साक्षी को जगा दे। जिंदगी में जो न हो पाया, शायद मौत में हो जाए। होगा! तुम्हारी आंखों में देखता हूं तो मुझे लगता है कि होगा। होना है।

निश्चित ही, जब तुम्हें संन्यास दिया था तो तुम थोड़े झिझके-झिझके थे। बहुत मित्रों को संन्यास लेते वक्त झिझक होती है, क्योंकि संन्यास की मेरी जो धारणा है वह तुम्हारी किसी धारणा से मेल नहीं खाती। तुम्हारी सारी धारणाओं से भिन्न है। इसलिए झिझक भी होती है, संकोच भी होता है।

फिर मैं जो तुमसे कह रहा हूं वह अतीत की बात नहीं है, भविष्य की बात है; अभी होने वाली बात है। अतीत की होती तो तालमेल बैठ जाता; तुम जल्दी राजी हो जाते। भविष्य की है। जिनके पास देखने की दूरदृष्टि है, केवल वे ही राजी होंगे। लेकिन तुम सौभाग्यशाली हो कि डांवाडोल हुए फिर भी भागे नहीं। सोच-विचार में पड़े, लेकिन डूबे नहीं उस सोच-विचार में; सम्हाल लिया अपने को, उबार लिया अपने को। राजी हो गए इस जोखिम को उठाने के लिए।

मेरे साथ होना जोखिम से भरा है। समाज में अप्रतिष्ठा होगी। शासन दुश्मन होगा। धर्म के ठेकेदार तुम्हारी जान के पीछे पड़ जाएंगे, तुम्हारा जीना मुश्किल कर देंगे। यह सब होगा। लेकिन यही सब तो चुनौती है। यही सब तो आग है जिसके बीच संन्यास का स्वर्ण निखरता है, कुंदन बनता है।

और यह भी मैं जानता हूं कि अब तुम्हें पीड़ा भी हो रही है, पछतावा भी हो रहा है कि सत्तर वर्ष यूं ही गुजर गए। लेकिन इसमें समय गंवाओ न। बीता सो बीता। अभी जितने क्षण हाथ में हैं, ये भी काफी हैं; इतने में ही बात हो जाएगी। यह जो बात है, इसका समय से कोई संबंध नहीं है कि सत्तर साल में हो कि सात सौ साल में हो कि सात क्षण में हो कि पल के अंश में हो जाए, कि पलक झपते हो जाए। इस बात का कोई संबंध समय से नहीं है, क्योंकि यह बात ही समय के अतीत है, कालातीत है। इसलिए समय मत गंवाओ। अब ये आंसू जो सत्तर साल बीत गए उनके लिए मत गंवाओ, अन्यथा ये क्षण भी जो तुम आंसू गंवाने में बिता रहे हो, ये भी गए। अब इन आंसुओं को नया ढंग दो, नया रंग दो, नया संगीत दो। इन आंसुओं को अब उत्सव बनाओ। जो बीता सो बीता, उसे भूलो, उसे बिसारो। अब इन आंसुओं को प्रार्थना बनाओ। अब इन आंसुओं को नृत्य करने दो, नाचने दो।

ऐसा देखो कि सत्तर साल में भी होश आ गया, इतना भी क्या कम है! जरा उनकी तरफ तो देखो जिनको सत्तर साल में भी होश नहीं। सत्तर तो दूर, कोई अस्सी के हो गए हैं, कोई चौरासी के हो गए हैं, वे भी अभी दिल्ली में ही जमे हुए हैं। चौरासी के हो गए हैं, फिर भी अभी ज्योतिषियों से पूछताछ करवाते हैं कि सौ साल जी सकूंगा कि नहीं? किसी ज्योतिषियों ने अभी कह दिया मोरारजी देसाई को कि एक सौ बीस साल जीओगे। जैसे इस देश का पिंड कभी छोड़ेंगे ही नहीं! एक सौ बीस साल! खुद के मरने के पहले सभी को मार डालना है? मगर प्रसन्न हुए होंगे ज्योतिषी से, जिसने कहा एक सौ बीस साल। उसके पहले किसी ज्योतिषी ने बताया था सौ साल। इस नये ज्योतिषी ने सिद्ध किया है कि नहीं, एक सौ बीस साल; सौ साल का हिसाब गलत है।

आदमी कितनी ही उम्र हो जाए, उम्र से ही समझदार नहीं हो जाता। अधिकतर लोग तो धूप में ही बाल पकाते हैं।

धर्मरक्षित, तुम सत्तर साल में चौकन्ने हो गए, यह भी बहुत है! यह भी बहुत है। रोओ मत, प्रसन्न होओ, आनंदित होओ। जरा देखने का विधायक ढंग पकड़ो।

कल मैं पढ़ रहा था कि ढब्बू जी का बेटा पप्पू फेल हो गया। क्लास में सबसे आखिरी आया। और दूसरे दिन जब स्कूल पहुंचा तो बड़ा प्रसन्न है। बच्चे इकट्ठे हो गए, उन्होंने पूछा कि पप्पू, रिपोर्ट ढब्बू जी को दिखाई कि नहीं? फिर क्या हुआ? पिटाई हुई होगी।

पप्पू ने कहाः नहीं, मेरे पिताजी ने रिपोर्ट देखी और कहा कि ऐसी रिपोर्ट दिखाने की हिम्मत किसी बहादुर में ही हो सकती है। मुझे शाबाशी दी। मेरी पीठ ठोंकी और कहाः बेटा तू बड़ा हिम्मतवर है। ऐसी रिपोर्ट अपने बाप को दिखाने की हिम्मत!

देखने के ढंग हैं। तुम सत्तर साल पर रो रहे हो, सत्तर साल के लिए प्रसन्न होओ कि चलो सत्तर साल में ही बात कट गई; सात सौ साल में भी नहीं कटती, सात हजार साल में भी नहीं कटती। लाखों-लाखों साल से लोग भटक रहे हैं। सत्तर साल में कट गई बात। आंसू प्रसन्नता के गिराओ, आनंद के गिराओ, अहोभाव के गिराओ। आंसू यही होंगे, लेकिन इनका स्वाद बदल जाएगा, इनका सौरभ बदल जाएगा।

और धर्मरक्षित, तुम कहते हो "कि आता हूं बार-बार तो सोचता हूं कुछ पूछूंगा, फिर आपके पास आते ही प्रश्न खो जाते हैं।"

ऐसा ही होना चाहिए। यही शुभ है। यही सद्भ है। यही शिष्य का लक्षण है। विद्यार्थी पूछता है। शिष्य पूछने की सोच कर आता है, लेकिन पूछ नहीं पाता। शिष्य गुरु के पास आते ही ऐसा भावविभोर हो जाता है कि क्या पूछना, क्या शब्दों में समय खराब करना? क्या शब्दों में गुरु और शिष्य के बीच बन रहे संगीत को खंडित करना? क्या प्रश्न उठा कर वह जो श्रद्धा का तार जुड़ रहा है उसे डगमगाना?

तो शिष्य रो सकता है, कि हंस सकता है, कि नाच सकता है, कि गीत गा सकता है; लेकिन प्रश्न नहीं पूछ सकता, मुश्किल हो जाती है। जैसे ही गुरु के पास होता है शिष्य, वैसे ही सन्नाटा छा जाता है, एक शून्य प्राणों में व्याप्त हो जाता है। ऐसा होना ही चाहिए। यही गुरु के पास होने का अर्थ है। यही नैकट्य है। यही समीपता है। ऐसी ही समीपता में उपनिषद पैदा हुए।

उपनिषद का अर्थ हैः गुरु के समीप होना। उपासना का भी यही अर्थ है, गुरु के पास बैठना, उप धन आसन। और उपवास का भी यही अर्थ है। उप धन वास=पास होना। गुरु के पास ऐसे बैठे कि भोजन की बात भूल गई, तो उपवास। गुरु के पास ऐसे बैठे कि सारी दुनिया विस्मृत हो गई, तो उपासना। गुरु के पास ऐसे बैठे कि दूरी न रही, तो उपनिषद का जन्म हो जाता है। उत्तर जो तुमने कभी चाहे नहीं, प्रश्न जो तुमने कभी पूछे नहीं, वे प्रश्न पूछ लिए जाते हैं उस सन्नाटे में। वे उत्तर मिल जाते हैं उस सन्नाटे में। न कोई बोलता है, न कोई चालता है और बात हो जाती है। बिन कहे बात हो जाती है।

धर्मरक्षित, वैसी बात होने लगी है। जब भी तुम मेरे पास आए हो मैंने अनुभव किया है कि वैसी बात होने लगी है--जो कही नहीं जाती, बोली नहीं जाती। तुम पूछते नहीं, मैं उत्तर नहीं देता; मगर जो होना है वह हो रहा है। तुम्हारी बुद्धि थोड़ी अड़चन में पड़ती होगी लौट कर कि गए थे पूछने, फिर बिना पूछे आ गए! क्योंकि पास जब आते हो तो हृदय धड़कता है और बुद्धि चुप हो जाती है और जब दूर जाते हो तो हृदय से फिर दूर हो

जाते हो, बुद्धि फिर बोलने लगती है। धीरे-धीरे इस रहस्य को समझो। तो दूर रह कर भी हृदय ही धड़केगा। बुद्धि फिर ये प्रश्न भी नहीं उठाएगी कि पूछ क्यों न पाया।

बुद्धि तो बीमारी है। बुद्धि तो खाज की बीमारी है; कितना ही खुजलाओ, कुछ हल नहीं होता, हानि होती है। बीमारी और बढ़ती है, मिटती नहीं। हां, खुजलाओ तो थोड़ी सी मिठास मालूम होती है खुजलाते वक्त, लेकिन फिर लहूलुहान हो जाते हैं। जानते हैं कि खाज को खुजलाने से कोई लाभ नहीं होगा, लेकिन जब खाज होती है तो मजबूरी में खुजलाना होता है। बुद्धि खाज है और बुद्धि का जोशास्त्र है--दर्शनशास्त्र--वह सिर्फ खुजलाहट है। उससे मनुष्य रुग्ण होता है, स्वस्थ नहीं होता।

धर्मरक्षित, अच्छा हो रहा है। तुम आते हो चुप और चुप ही चले जाते हो। दो बूंद आंसू गिरा कर, सिर झुका कर, मौन भिक्षापात्र फैला कर; लेकिन तुम भिक्षापात्र खाली लेकर नहीं जाते, यह मैं तुमसे कहता हूं। जो भी इतने मौन से मेरे पास आता है, मुझसे भर कर लौटता है।

तुमने पूछा हैः "अब आप मेरे अंतर को समझ कर खुद ही मार्गदर्शन करें।"

मार्ग मिलना शुरू हो गया है। राह तुमने पकड़ ली है।

तीन बातें ख्याल रखो। एक--विचार से नाता तोड़ो। मस्तिष्क जैसे तुम्हारा है ही नहीं, ऐसा समझो। भाव में उतरो। विचार क्षीण करो, भाव गहरा करो। दूसरी बात--जब विचार क्षीण हो जाए, भाव गहरा होने लगे तो भाव से भी मुक्त होने लगो। सिर्फ अस्तित्व! सिर्फ शून्य सन्नाटा! न जहां विचार है, न भाव है, जहां कोई तरंग नहीं--उस शून्य सन्नाटे में डूबो। और तीसरी बात--इस शून्य सन्नाटे में डूबते समय बहुत भय लगेगा, बहुत घबड़ाहट होगी। मौत जैसा लगेगा। घबड़ाना मत! यह मौत नहीं है; यह बीज का मरना है, यह वृक्ष होने की शुरुआत है। यह सरिता का सागर में उतरना है। यह सागर होने का प्रारंभ है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! इस प्रश्न को पूछने से डरता हूं, लेकिन पूछे बगैर रहा नहीं जाता। आज आपने स्त्री-स्पर्श के संबंध में चर्चा की तो सारी बातें तीर की तरह चुभ गईं। कल प्रवचन के बाद मैं स्वागत-कक्ष में गया तो "दर्शन" मुझसे बोलीः मैं आपका आलिंगन करना चाहती हूं। मैं थोड़ा सकुचाया, लेकिन जिस भाव से उसने कहा उसे मैं पी गया और हम दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में डूब गए, जैसे कि समय ठहर गया। लेकिन इस गहरे निष्पाप आलिंगन में भी मेरा पुरुष-भाव बना रहा। तब मुझे याद आया कि पचास साल कि इस जिंदगी में मैंने, एक पत्नी को छोड़ कर, किसी भी व्यक्ति को--मेरी मां, बेटी और बहन तक किसी को भी मैंने भाव से गले नहीं लगाया। परंपरा तो इसे भूषण मानेगी। लेकिन अब मुझे लगता है कि यही मेरी रुकावट रही है। मैं गहरे स्पर्श से वंचित रहा हूं लेकिन कल "दर्शन" ने और आज आपने जैसे एक झरोखा खोल दिया! अब इन स्व-निर्मित दीवालों को गिराना आसान तो नहीं, लेकिन संभव जरूर लगता है।

ओशो, इस पर आप कुछ बोलें तो उसे सुनने का, सहने का बल और साहस मांगता हूं, क्योंकि वह मौत जैसा लगता है।

अजित सरस्वती! "दर्शन" भैरवी है, पुरानी तांत्रिक है। शरतचंद्र ने अपने उपन्यासों में जिस वैष्णवी की चर्चा की है, दर्शन की वैसी ही आत्म-दशा है। या रामकृष्ण ने जिस वैष्णवी का हृदयपूर्वक सम्मान किया है। एक घूमती हुई खानाबदोश स्त्री! आह्लाद से भरी नाचती हुई! सारे अस्तित्व के प्रति प्रेम से पगी! जिस वैष्णवी को रामकृष्ण ने भी सम्मान दिया है, दर्शन के वैसे ही लक्षण हैं।

दर्शन की कुछ खूबियां हैं। सरल है, निर्दोष है। प्रेम उसके लिए वासना जैसा नहीं है, प्रार्थना जैसा है। तुम्हारी मुसीबत समझी होगी। तुम्हारी अड़चन समझी होगी। इसलिए तुम्हें निमंत्रण दिया होगा कि आलिंगनबद्ध हो जाओ। और ठीक समझी। और तुम भी ठीक पहचाने कि वही तुम्हारी अड़चन रही है। तुम बड़ी धारणाओं में बंधे-बंधे जीए हो। निश्चित ही समाज उस तरह के बंधे जीवन को बहुत भूषण मानता है। मानेगा ही, क्योंकि उसी बंधे हुए जीवन के कारण व्यक्ति गुलाम की तरह व्यवहार करता है और समाज गुलाम चाहता है--मुक्त स्वच्छंद व्यक्ति नहीं चाहता। समाज स्वतंत्रता को बरदाश्त नहीं करता। समाज स्वतंत्रता विरोधी है। समाज व्यक्ति को मिटा देना चाहता है। मिटा ही दिया है उसने। भेड़े हैं दुनिया में, व्यक्ति कहां! और सब तरफ से तुम्हारे जीवन में ध्यान गहरा हो रहा है, लेकिन तुम्हारे ऊपर पड़े हुए बचपन से अब तक के हिंदू-संस्कार एकमात्र बाधा हैं। दर्शन ने अनुकंपा की, जो उन संस्कारों को तोड़ने का तुम्हें एक अवसर दिया। डर तो तुम गए होओगे। डर तो तुम इतने गए हो कि जिस दिन से तुमने प्रश्न पूछा है, तुम मुझे दिखाई नहीं पड़े। मैं तीन-चार दिन से प्रश्न का उत्तर देने को रोज सोच कर आता हूं, लेकिन तुम दिखाई नहीं पड़ते, तो सोचता हूं तुम हो ही नहीं तो उत्तर किसको दूं? शायद तुमने अपनी पत्नी को जाकर भी यह कहा होगा और झंझट खड़ी हुई होगी, उपद्रव खड़ा हुआ होगा। तुम सीधे-सादे व्यक्ति हो, सरलचित्त हो, निष्कपट हो। तुमने निश्चित ही बात कही होगी। तुम छिपा न सकोगे। और मुसीबत आई होगी। क्योंकि प्रेम को हमने बपौती बना ली है और प्रेम को हमने अधिकार बना लिया है।

प्रेम किसी का अधिकार नहीं है। प्रेम किसी की बपौती नहीं है। प्रेम बंधना नहीं जानता। और जो प्रेम बंध जाता है, मर जाता है। जैसे नदी की धार बांध दो तो बस नदी न रह गई, ताल-तलैया हो जाएगा। जल्दी ही कीचड़ मच जाएगी। जल्दी ही गंदगी उठेगी। जहां स्वच्छ जलधार थी वहां अब केवल एक गंदी तलैया होगी।

ऐसा ही प्रेम है। बहे तो स्वच्छ रहता है; बंध जाए, गंदी तलैया हो जाता है, सूखने लगता है। और सदियों-सदियों से आदमी ने यही किया है, प्रेम को बांधा है। और हम बंधे हुए प्रेम को बड़ा सम्मान देते हैं।

प्रेम जितना मुक्त हो, जितना विस्तीर्ण हो, जितने अधिक लोगों को मिल सके, उतनी ही तुम्हारी आत्मा बड़ी होती है--उतनी ही तुम्हारी आत्मा फैलती है। तुम्हारे प्रेम का विस्तार तुम्हारी आत्मा का विस्तार है और तुम्हारे प्रेम का सिकुड़ जाना तुम्हारी आत्मा का सिकुड़ जाना है। क्योंकि प्रेम और आत्मा पर्यायवाची हैं।

शुभ हुआ। भयभीत न होओ। अच्छी दुनिया में, थोड़ी ज्यादा प्राकृतिक दुनिया में, थोड़ी ज्यादा जागरूक और ध्यानपूर्ण दुनिया में, थोड़ी प्रार्थना की हवा और सुगंध जहां हो ऐसी दुनिया में, लोग सहज ही एक-दूसरे का आलिंगन करेंगे--सहज ही जैसे नमस्कार करते हैं। इसमें कोई अड़चन होने की बात नहीं होनी चाहिए। आत्माएं मिलना चाहती हैं। शरीर उस मिलन की अभिव्यक्ति बनते हैं। लेकिन हमने तो इन सहज भावों पर बड़े प्रतिबंध बिठा दिए हैं, बड़ी संगीनें अड़ा दी हैं, बड़ी जंजीरें पहना दी हैं। और उसका परिणाम यह हुआ है कि प्रेम सूख गया है।

और सबको यह भय है कि अगर प्रेम फैलेगा तो मुझे जो प्रेम मिल रहा है वह घट जाएगा। पत्नी डरती है कि अगर मेरे पति का प्रेम और लोगों तक भी फैला तो फिर मेरा क्या होगा! उसे पता ही नहीं है कि जीवन का एक और अर्थशास्त्र है जिसके नियम बिल्कुल भिन्न हैं। उसे जीवन का एक अर्थशास्त्र तो पता है कि जहां बांटने से चीजें कम हो जाती हैं। अगर मेरे पास दस रुपये हैं और मैं दस लोगों को बांट दूं तो एक-एक रुपया एक-एक के हिस्से पड़ेगा और अगर एक को ही दूं तो उसके हिस्से दस रुपये पड़ेंगे। यह जीवन का साधारण अर्थशास्त्र है।

लेकिन एक और अर्थशास्त्र है परमात्मा का, कि अगर मैं दस लोगों को बांटूं तो तुम्हारे पास दस गुना पड़ेगा। और अगर मैं किसी को भी न बांटूं तो तुम्हारे पास शायद ही कुछ पड़े।

ऐसा समझो कि पति सुबह घर से निकला और पत्नी उससे कह दे कि देखो, कहीं और श्वास मत लेना, श्वास तो तुम मेरे ही पास लेना। क्योंकि हम प्रणय-बंधन में बंधे हैं; हमने कसम खाई है--यज्ञ की धूम्रशिखा के समक्ष, यज्ञ की लपट के समक्ष, पंडितों-पुरोहितों के समक्ष, मंत्रोच्चारण के बीच--हमने यह कसम खाई है कि हम एक-दूसरे के लिए जीएंगे और एक-दूसरे के लिए मरेंगे। तो तुम श्वास कहीं और मत लेना दफ्तर इत्यादि में, बाजार में, हर कहीं। जब लौट आओ तो घर हम दोनों पास बैठेंगे, फिर दिल खोल कर श्वास लेना। यह आदमी कभी घर लौटेगा ही नहीं फिर। यह घर से बाहर ही निकलेगा और गिर कर ढेर हो जाएगा। सच तो इससे उलटा है। अगर यह बाहर खूब श्वास लेगा, फेफड़े इसके प्राणवायु से भरेंगे, यह सूरज के नीचे खुली हवाओं में, वृक्षों के नीचे अगर दिन भर खूब गहरी श्वास लेगा, तो सांझ लौटेगा जीवंत, नाचता हुआ, प्रफुल्लित, रोआं-रोआं उमंग से भरा! और वह सारी उमंग, वह सारा उत्साह और सारा जीवन पत्नी पर उंड़ेल देगा।

ठीक ऐसा ही प्रेम का नियम है। लेकिन प्रेम को हमने एक क्षुद्रता में बांध लिया है--कामुकता। हमने प्रेम को बहुत ही निम्न अर्थ दे दिया है--कामवासना का।

प्रेम के बहुत आयाम हैं। प्रेम एक पूरी सीढ़ी है, जिसके कई सोपान हैं। कोई व्यक्ति संगीत को भी प्रेम करता है; उसमें कौन सी कामवासना है? और कोई व्यक्ति संगीत को इतना प्रेम कर सकता है कि पत्नी को छोड़ दे और संगीत को न छोड़े। कोई व्यक्ति चित्रकला को इतना प्रेम कर सकता है कि परिवार को छोड़ दे और चित्रकला को न छोड़े। कोई व्यक्ति साहित्य को इतना प्रेम कर सकता है कि इसीलिए विवाह न करे कि साहित्य में और पत्नी में कहीं ईर्ष्या न खड़ी हो जाए।

एक बड़े संगीतज्ञ से जब पूछा गया कि तुमने विवाह क्यों नहीं किया, तो उसने कहाः घर में दो स्त्रियों का रखना उपद्रव होता। पूछने वाला समझा नहीं। उसने कहाः दो स्त्रियां, तो पहले एक स्त्री है? उस संगीतज्ञ ने कहाः यह संगीत। यह मेरा एक विवाह और यह इतना बड़ा है कि अब किसी दूसरी स्त्री को लाना उसे कष्ट देना होगा। क्योंकि ऐसे बहुत से दिन आएंगे, जब मैं अपने संगीत में डूबा होऊंगा और मेरी स्त्री की मुझे याद भी न रह जाएगी। तब उसे कष्टपूर्ण होगा। साधारण स्त्री--दुखी होगी, परेशान होगी, नाराज होगी। संगीत से उसकी दुश्मनी हो जाएगी।

सुकरात जैसे महापुरुष की पत्नी भी सुकरात से नाखुश थी, बहुत नाखुश थी। क्यों? क्योंकि वह दार्शनिक ऊहापोह में ऐसा लीन हो जाता था कि भूल ही जाता था कि पत्नी भी है। एक दिन तो दार्शनिक चर्चा में ऐसा लीन था कि चाय ही पीना भूल गया सुबह की। पत्नी को तो ऐसा क्रोध आया, चाय बना कर बैठी है और वह बाहर बैठा चर्चा कर रहा है अपने शिष्यों के साथ, उसके क्रोध की सीमा न रही, वह भरी हुई केतली को लाकर उसके उसने सिर पर उंडेल दिया। उसका आधा मुंह जल गया। जीवन भर उसका मुंह जला रहा। वह आधा हिस्सा काला हो गया।

लेकिन सुकरात सिर्फ हंसा। उसके शिष्यों ने पूछाः आप हंसते हैं इस पीड़ा में! उसने कहाः नहीं, मैं इसलिए हंसता हूं कि स्त्री का मन हमने कितना छोटा कर दिया है! उसके लिए दर्शन भी, यह दर्शन का ऊहापोह भी ऐसा लगता है जैसे कोई सौतेली पत्नी। उसने मेरे ऊपर नहीं डाली यह चाय, मैं तो सिर्फ निमित्त हूं। अगर दर्शनशास्त्र उसे मिल जाए कहीं तो वह गर्दन काट ले। दर्शनशास्त्र कहीं मिल नहीं सकता, इसलिए मैं तो सिर्फ बहाना हूं।

किसी ने सुकरात से पूछा--एक युवक ने--कि मैं विवाह करने का सोचता हूं। सोचा आपसे ज्यादा अनुभवी और कौन होगा! विचार में भी आप अंतिम शिखर हैं और जीवन के भी सब मीठे-कड़वे अनुभव आपके हैं। क्या सलाह देते हैं?

तुम चकित होओगे सुकरात की सलाह सुन कर। सुकरात ने कहाः विवाह करो। वह युवक बोलाः आप और कहते हैं विवाह करूं! और मुझे सारी कथाएं पता हैं। आपकी पत्नी .जेनथिप्पे और आपके बीच जो घटता है रोज-रोज, वह सब मुझे पता है। वे अफवाहें मुझ तक भी पहुंची हैं। उनमें से अगर एक प्रतिशत भी सच है तो भी पर्याप्त है विवाह न करने के लिए।

सुकरात ने कहाः उसमें से सौ प्रतिशत सत्य है, लेकिन फिर भी तुमसे कहता हूं, विवाह करो, विवाह के लाभ ही लाभ हैं!

उस युवक ने कहाः जरा मैं सुनूं, कौन से लाभ? सुकरात ने कहाः अगर अच्छी पत्नी मिली, समझदार पत्नी मिली, तो प्रेम का विस्तार होगा। और प्रेम का विस्तार इस जगत में सबसे बड़ा लाभ है। और अगर मेरी जैसी पत्नी मिल गई तो वैराग्य का उदय होगा। और वैराग्य तो राग से भी ऊपर है। वह तो प्रेम की पराकाष्ठा है। वह तो परमात्मा से प्रेम है। दोनों हालत में तुम लाभ ही लाभ में रहोगे।

हमने बहुत संकीर्ण कर दिया है प्रेम को और बहुत क्षुद्र कर दिया है।

"दर्शन" ने अगर "अजित" को कहा कि आओ, आलिंगन में बंध जाएं, तो अजित झिझके, झिझके होंगे, क्योंकि आलिंगन शब्द में ही कामवासना प्रविष्ट हो गई है। हम यह सोच ही नहीं सकते कि दो व्यक्ति आलिंगनबद्ध हो सकते हैं बिना किसी कामवासना के। और निश्चित ही आलिंगन की एक ऊंचाई है जहां कामवासना की कोई रूप-रेखा भी नहीं, छाया भी नहीं बनती। दो आत्माओं का मिलन है। दो आत्माएं एक-दूसरे में डूब जाने के लिए क्षण भर को आतुर हुई हैं। और यह मिलन अत्यंत पवित्र है, निर्दोष है, कुंआरा है। यह मिलन पूजा के थाल जैसा है, अर्चना के गीत जैसा है। लेकिन चूंकि हमें इसका कोई अनुभव नहीं है--हमारे अनुभव तो सब क्षुद्र हैं; मिट्टी के अनुभव हैं, कमल की हमारी कोई पहचान नहीं है--इसलिए मन झिझकता है। तुम झिझके, क्योंकि तुम कहते होः मैंने कभी अपनी मां, बेटी और बहन तक को भी आलिंगन नहीं किया है। और मेरा पुरुष-भाव बना रहा।

उस पुरुष-भाव के बने रहने के कारण "दर्शन" ने जोझरोखा खोला था उससे तुम ठीक-ठीक झांक नहीं पाए। झरोखा खुला, ऐसा तुम्हें पता चला। कुछ हुआ, ऐसा तुम्हें पता चला। लेकिन स्पष्ट नहीं हो सका होगा। जैसे सुबह के धुंधलके में खुला होझरोखा, अभी सूरज न निकला हो, ऐसा हुआ होगा, अंधियारा रहा होगा। काश पुरुष-भाव भी मिट गया होता तो तुम सूरज को उगते देखते! दुबारा अब कभी ऐसा हो, कोई ऐसा आमंत्रण दे, तो उस आमंत्रण को सिर आंखों लेना। और क्या पुरुष, क्या स्त्री? इन क्षुद्रताओं से अब ऊपर उठो! समय आ गया, इन क्षुद्रताओं को जाने दो! सब उसी मिट्टी से बने हैं और सभी उसी परमात्मा से भी बने हैं--कौन पुरुष, कौन स्त्री? भेद क्या है? जरा सा अंगों का भेद है।

मिट्टी के तुम पुतले बनाओ तो कुछ पुरुष के बना दो, कुछ पुतले मिट्टी के स्त्रियों के बना दो; कुछ बड़ा भेद होगा? फिर परमात्मा उनमें आत्मा डाल दे तो बड़ा भेद हो जाएगा, एकदम बड़ा भेद हो जाएगा! तुमने कभी भीतर झांक कर देखा, चेतना न तो पुरुष है और न स्त्री! कोई भी अपनी आंख बंद करके देखे और पूछे भीतर, यह जो चैतन्य है, यह कौन है, स्त्री या पुरुष? चैतन्य तो कोई भी नहीं है। न वहां कोई स्त्री है, न वहां कोई पुरुष है।

आलिंगन में जब कभी ऐसे बंध जाओ कि दो चेतनाएं एक-दूसरे में डूबें, न कोई पुरुष, न कोई स्त्री, तोझरोखा खुलेगा, भरी दुपहरी में सूरज का दर्शन होगा, खुले आकाश का। और उससे जीवन में क्रांति घटनी शुरू होगी।

लेकिन धुंधलके में खुले इस झरोखे से भी तुम्हारे भीतर कुछ महत्वपूर्ण घटा है।

तुम कहते होः मैं इस गहरे स्पर्श से वंचित रहा हूं, लेकिन कल दर्शन ने और आज आपने जैसे एक झरोखा खोल दिया। अब इन स्व-निर्मित दीवालों को गिराना आसान तो नहीं लेकिन संभव जरूर लगता है। बस जो संभव है वह आसान है। एक बार यह दिखाई पड़ने लगे कि संभव है तो आसान होने में कितनी देर लगती है? असल में हमको समझाया जाता है कि असंभव है; स्त्री स्त्री रहेगी, पुरुष पुरुष रहेगा; कैसे स्त्री-पुरुष भाव गिरेगा, यह असंभव है। और जब तुम आलिंगन करोगे तो कामवासना तो रहेगी ही; बिना कामवासना के कैसे आलिंगन हो सकता है, यह असंभव है। और तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे साधु-संत, तुम्हारे तथाकथित महात्मा, सदियों-सदियों से यही बकवास दोहरा रहे हैं। यह इतनी बार दोहराई गई है कि तुम्हारे भीतर बहुत गहरी बैठ गई है।

लेकिन अब तुम कहते होः संभव मालूम होता है। आसान तो नहीं! लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः जो संभव है, बस संभव के होने में ही आसान हो गया। फिर से दरवाजा बंद मत कर लेना। अड़चनें आएंगी, कठिनाइयां आएंगी; यह मैं नहीं कह रहा हूं, कि तुम्हारी कोई शोभायात्रा निकाली जाएगी, कि सब पूनावासी इकट्ठे होकर और फूलमालाएं पहनाएंगे, कि तुम्हारी पत्नी घर में दीवाली मनाएगी कि पति देवता आ रहे हैं! नहीं; झंझटें होंगी, अड़चनें होंगी। लेकिन वे अड़चनें, वे झंझटें उठाने जैसी हैं।

और अगर सच में ही तुम ऊपर उठते चलो देह से, देह-भाव से, तो आज नहीं कल पत्नी भी पहचानेगी। आज नहीं कल, उसको भी उठने का अवसर तुम्हारे द्वारा मिलेगा। आज नहीं कल, तुम्हारे मित्र-परिचित भी पहचानेंगे। मगर पहचानें या न पहचानें, तुमने कुछ उनकी मुक्ति का ठेका नहीं लिया है। तुम स्वयं मुक्त हो सको, इतना तुम्हारा दायित्व है। इतना तो कर ही लेना है और किसी भी कीमत पर हो।

और अंततः तुमने कहा, अजित, "ओशो, इस पर आप कुछ बोलें तो उसे सुनने का, सहने का बल और साहस मांगता हूं।"

मगर तुम चार दिन से एकदम नदारद हो! क्योंकि वह मौत जैसा लगता है। मैं अजित को जानता हूं। जरूर यह मौत जैसा है। एक मर्यादा में जीने की आदत, एक खास ढंग के ढांचे में सदा से जीने की व्यवस्था, एकदम टूटेगी तो मौत जैसा तो लगेगा ही; जैसे किसी का घर छीन लो और खुले आकाश के नीचे छोड़ दो; कि अचानक भरे बाजार में किसी के वस्त्र छीन लो और उसे नग्न कर दो! इससे भी ज्यादा कठिनः जैसे किसी की खाल उखाड़ लो, उसकी चमड़ी छील लो, तो पीड़ा हो। मौत जैसा ही लगेगा, क्योंकि तुम्हारा जो पवित्र अहंकार है कि मैं चरित्रवान, कि मैं एक पत्नीव्रती, कि मैं ऐसा कि मैं वैसा--वह सब धारणा गिरेगी।

मैं तुम्हें चरित्र की अंतिम पराकाष्ठा सिखा रहा हूं--जहां चरित्र और दुश्चरित्रता दोनों ही विदा हो जाती हैं; जहां शुभ-अशुभ दोनों विदा हो जाते हैं; जहां सिर्फ एक साक्षी रह जाता है।

कभी "दर्शन" को फिर ऐसा आभास उठे और तुम्हें आलिंगन के लिए आमंत्रित करे तो साक्षीभाव से आलिंगन में डूब जाना। जागे रहना, होश में! लेकिन न पुरुष-भाव, न स्त्री-भाव। कुंजी हाथ लगेगी कोई। यही तो तंत्र का मौलिक आधार है, सारे तंत्र-शास्त्र का मूल-सूत्र है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! जीवन रीता-रीता क्यों लगता है? न कोई उमंग, न कोई उत्साह, न कोई उत्सव। और मैं अभी पच्चीस वर्ष का ही हूं। विवाह और घर-द्वार की झंझट में पड़ना नहीं चाहता हूं। ब्रह्मचर्य ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। आपके आशीष चाहिए।

रोहित! आशीष तो मैं दूं, आशीष देने में क्या कंजूसी करनी! मगर तुम गलत आशीष मांग रहे हो।

ब्रह्मचर्य जीवन का लक्ष्य है, ऐसा मान कर चलोगे तो ब्रह्मचर्य कभी उपलब्ध न होगा। ब्रह्मचर्य लक्ष्य नहीं है। ब्रह्मचर्य तो जीवन के सारे सुख-दुख, सफलता-विफलता, काम-प्रेम, इन सारे अनुभवों का निचोड़ है, निष्पत्ति है। लक्ष्य नहीं है, परिणाम है।

लक्ष्य का तो अर्थ होता है कि हम चले, हमने तय ही कर लिया कि ब्रह्मचर्य पाकर रहेंगे; अब हम न देखेंगे बाएं, न देखेंगे दाएं। अब हम बस गैंडे की तरह चले सीधे। लक्ष्य का तो अर्थ होता है कि तय ही कर लिया। अभी अनुभव तो जीवन का कुछ हुआ नहीं। अभी कामवासना का न सुख देखा, न दुख देखा। अभी कामवासना का कोई स्वाद ही नहीं, न मीठा, न कड़वा, और निर्णय ले लिया ब्रह्मचर्य का, क्योंकि हाथ में आ गई कोई किताब--ब्रह्मचर्य ही जीवन है! बस पढ़ ली किताब या मिल गए कोई महात्मा, सुन ली कोई बकवास। तय कर लिया। या घर में देखा। और सभी तो घर में पैदा होते हैं, और कहीं तो पैदा होने का उपाय नहीं। घर में देखा कि मां-बाप सुबह से सांझ कलह करते हैं--झगड़ा, झंझट, उपद्रव!

यह बहुत आश्चर्यजनक है कि मां-बाप को देख-देख कर भी बेटे एक न एक दिन विवाह कर लेते हैं, यह बड़ा चमत्कार है! अगर जरा भी अक्ल हो तो मां-बाप को देख कर एकदम भाग खड़े होंगे, कि बस हो गया बहुत! देख लिया जो देखना था।

मगर एक प्राकृतिक भ्रमणा है। एक प्राकृतिक भ्रम-जाल है, जो भीतर से यह कहता है कि यह मां-बाप की गलती है। मैं ऐसी स्त्री खोजूंगा कि ऐसी भूल नहीं होगी। ऐसा ही तुम्हारे मां-बाप ने सोचा था। ऐसा ही उनके मां-बाप ने भी सोचा था। बाबा आदम के जमाने से लेकर ऐसा ही लोग सोचते रहे। ऐसा ही तुम्हारे बच्चे भी सोचेंगे। मैं अपवाद हो जाऊंगा! हम ऐसा काम ही न करेंगे!

लेकिन किसी भी घर में देख लो, मां-बाप कलह ही कलह से भरे हैं। बच्चे देखते हैं, उनका मन तभी से दूषित होना शुरू हो जाता है। उनके मन में एक दुर्भाव पैदा होने लगता है विवाह के प्रति, अगर लड़का है तो स्त्रियों के प्रति, अगर स्त्रियां हैं तो पुरुषों के प्रति--एक दुर्भाव पैदा होने लगता है। चित्त दूषित होने लगता है। इसी दूषित चित्त से महात्माओं की बात ठीक लगती है कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। और फिर ब्रह्मचर्य की ऐसी-ऐसी चमत्कारी बातें सुनाई जाती हैं कि स्वभावतः कच्चे मनों में उनकी छाप पड़ जाती है। लोगों को समझाया जाता है कि आदमी मरता ही इसीलिए है क्योंकि वह ब्रह्मचर्य खो देता है। तो फिर तुम्हारे सारे ब्रह्मचारी कहां हैं, वे क्यों मर गए? ब्रह्मचारियों का क्या हुआ? उनको तो मरना ही नहीं था।

ये सब व्यर्थ की बातें हैं। इनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। मरना तो सभी को है। ब्रह्मचर्य से रहो कि अब्रह्मचर्य से रहो, मारना सभी को है। और कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि व्यभिचारी ज्यादा जीते हैं, क्योंकि व्यभिचारी तनावमुक्त होते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया; तो उसके घर पत्रकार आए। सौ साल का हो जाना! उससे पूछा कि तुम्हारे सौ साल के हो जाने का राज क्या है? उसने कहाः राज! न मैंने कभी शराब पी, न कभी विवाह किया, न

किसी स्त्री के पीछे भागा, दौड़ा। शराब तो दूर कभी सिगरेट भी नहीं पी। समय पर सोना, समय पर उठना। योगासन, घूमने जाना, श्रम करना। रूखा-सूखा खाना और ऊंचे विचार करना। इसलिए इतना जीया हूं।

जब यह बात ही चल रही थी और पत्रकार प्रभावित हो रहे थे, तभी पास के कमरे में जोर की खड़बड़ाहट हुई और एक अलमारी गिरी और कोई भागता हुआ मालूम हुआ, तो उन्होंने पूछाः क्या मामला है? पत्रकार चौंके। तो मुल्ला ने कहाः कुछ नहीं, मेरे पिताजी हैं। वे फिर पी कर आ गए और उन्होंने फिर नौकरानी को पकड़ने की कोशिश की। तब तो पत्रकार और चौंके कि आपके पिताजी अभी जिंदा हैं! उसने कहाः हां। उनकी उम्र एक सौ बीस साल है। मगर वे आदतें अपनी छोड़ते ही नहीं। समझा-समझा कर मैं हार गया, अभी भी पीना और अभी भी उपद्रव करना... ।

तुम्हें समझाया जाता रहा है कि ब्रह्मचर्य के ऐसे लाभ, वैसे लाभ, कि तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी और तुम्हारी बुद्धि बड़ी प्रखर हो जाएगी। लेकिन तुम्हारे ब्रह्मचारियों का क्या हिसाब है? अगर यह सच होता तो दुनिया की सारी नोबल प्राइज भारत आती। लेकिन भारतीयों को तो नोबल प्राइज कुछ पता ही नहीं चलती। सर्वाधिक नोबल प्राइज मिलती है यहूदियों को और यहूदियों में ब्रह्मचर्य पर बिल्कुल भरोसा नहीं है। यहूदी ब्रह्मचर्य को मानते ही नहीं। यहूदी रबाई भी विवाहित होता है, ब्रह्मचारी नहीं होता। वे ब्रह्मचर्य-विरोधी हैं।

जीसस के खिलाफत में एक खिलाफत यह भी है उनकी कि जीसस ने विवाह नहीं किया था। क्योंकि विवाह नैसर्गिक है उनके हिसाब से। यहूदियों को सर्वाधिक नोबल प्राइज मिलते हैं, उनकी संख्या बड़ी छोटी है। यह साठ करोड़ का मुल्क, कितनी नोबल प्राइज तुम्हें मिलती! अगर गिनने बैठो तो अंगुलियों पर एक दो तीन लोगों को मिली। और जिनको मिली, उनमें एक भी ब्रह्मचारी नहीं था। न तो रवींद्रनाथ, न डाक्टर रमण, न जगदीशचंद्र बसु, एक भी ब्रह्मचारी नहीं था। नोबल प्राइज तो मिलनी चाहिए पुरी के शंकराचार्य इत्यादि को, मगर इनको तो कुछ मिलती नहीं। नोबल प्राइज तो मिलनी चाहिए हिमालय में बैठे हुए तुम्हारे ब्रह्मचारियों को, जो अपनी गुफाओं में बैठे हुए हैं। मगर इनकी बुद्धि में तो कुछ दिखाई पड़ता नहीं।

मैं निरीक्षण से कह रहा हूं, ऐसे ही नहीं कह रहा हूं। मैं तुम्हारे सब तरह के साधु-संन्यासियों को जान कर कह रहा हूं--हिंदुओं के, जैनों के, बौद्धों के। जितने जड़बुद्धि मुझे तुम्हारे साधु दिखाई पड़े उतने मुझे गृहस्थ भी नहीं दिखाई पड़ते। बाजार में भी कभी-कभी किसी आंख में रौनक दिखाई पड़ जाती है, मगर तुम्हारे आश्रमों में तो बिल्कुल बेरौनकी छाई हुई है। तुम्हारे आश्रम तो बिल्कुल मुर्दा हैं।

ब्रह्मचर्य के संबंध में व्यर्थ की बकवासें सुन-सुन कर रोहित, तुम्हारे मन में उठता होगाः ब्रह्मचर्य ही लक्ष्य है! ब्रह्मचर्य को तो लक्ष्य बना लिया, अब उसका परिणाम भोगो। अब कह रहे हो कि न कोई उमंग, न कोई उत्साह, न कोई उत्सव! अब मैं क्या करूं? यह आपका ही इंतजाम है। कहते होः जीवन रीता-रीता क्यों लगता है? रीता-रीता नहीं लगेगा तो क्या भरा-भरा लगेगा?

पहले जिंदगी को सहज ढंग से जीओ। ब्रह्मचर्य तो अंतिम पराकाष्ठा है। वह तो सार-निचोड़ है, बहुत-बहुत फूलों का इत्र है! ऐसे नहीं मिलता कि ले ली कसम कि ब्रह्मचर्य से रहेंगे, कि बांध लिया लंगोट खूब कस कर, हो गए ब्रह्मचर्य को उपलब्ध। इतनी मूढ़ता की बातों में न पड़ो। थोड़ी अक्ल से काम लो। नहीं तो जितना लंगोट कस कर बांधोगे उतना ही जीवन रीता-रीता! न कोई उमंग, न कोई उत्साह, न कोई उत्सव। और प्रश्न मुझसे पूछोगे! पूछो ये प्रश्न अपने महात्माओं से। पूछो करपात्री महाराज से। जो तुम्हें यह बकवास सिखा रहे हैं उनसे पूछो।

मैं तो तुमसे जीवन को सहज जीने के लिए कह रहा हूं। मैं तो कह रहा हूं कि जो तुम्हारे भीतर स्वाभाविक है, उसे उसकी अभिव्यक्ति दो, उसे पूरी अभिव्यक्ति दो। उसकी अभिव्यक्ति से ही धीरे-धीरे-धीरे तुम पकोगे। वह परिपक्वता एक दिन जरूर ब्रह्मचर्य लाती है। ब्रह्मचर्य जरूर एक दिन खिलता है। और अपूर्व फूल है ब्रह्मचर्य का! लेकिन ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल कामवासना का निरोध नहीं होता। ब्रह्मचर्य का अर्थ उस शब्द में ही छिपा है--ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वरीय आचरण। उसका कोई इतना छोटा अर्थ नहीं है कि कामवासना का निरोध। उसका अर्थ बहुत बड़ा है। उसका अर्थ नकारात्मक नहीं है, विधायक है।

तुम जरा ब्रह्मचर्य शब्द पर देखो, ख्याल दो। अंग्रेजी में कोई शब्द नहीं है ब्रह्मचर्य को अनुवाद करने के लिए। जोशब्द है अंग्रेजी में, सेलिबेसी, वह अनुवाद नहीं करता उसका। क्योंकि सेलिबेसी नकारात्मक है। उसका कुल इतना ही अर्थ होता है--अविवाहित रहना। मगर अविवाहित रहना तो नकारात्मक बात है--कुछ न करना, विवाह न करना। लेकिन ब्रह्मचर्य विधायक बात हैः ब्रह्म को पा लेना। विवाह न करना तो एक छोटी-मोटी बात है। विवाह न करने से तुम ब्रह्म को पा लोगे, काश इतना सस्ता होता हिसाब, तो ब्रह्म की कीमत पत्नी से ज्यादा न होती! स्वभावतः जब विवाह न करने से ब्रह्म मिलता हो तो ब्रह्म कोरख दो एक पलवे पर और पत्नी को रख दो एक पलवे पर, तराजू बराबर बताएगा कि या चुन लो पत्नी या चुन लो ब्रह्म, जो भी चुनना हो।

ब्रह्म को इतना छोटा न करो। ब्रह्म को इतना ओछा न करो। ब्रह्म विराट अनुभव है। उसके पार फिर कोई अनुभव नहीं। और ब्रह्मचर्य का अर्थ होता हैः ब्रह्म को अनुभव करके जो चर्या होती है, जो जीवन होता है; ब्रह्म के अनुभव करने से जो चारों तरफ आभा होती है; ब्रह्म को अनुभव करने से जो प्रतिभा का निखार होता है; ब्रह्म को अनुभव करने से जो आनंद-उत्सव, जो मंगल-गीत छिड़ते हैंः जो भीतर होली-दीवाली दिन-रात चलने लगती है--होली भी और दीवाली भी! दीये भी जलते हैं और रंग भी उड़ते हैं और गुलाल भी! वसंत ही छा जाता है। और सब ऋतुएं खो जाती हैं, बसंत ही बसंत रह जाता है।

लेकिन उस विराट अनुभव को, तुम सोचते हो इतने सस्ते में पा लोगे? विवाह न करोगे? एक गरीब स्त्री से विवाह न करोगे और तुम्हें ब्रह्म मिल जाएगा? काश इतना आसान होता तो मैं भी तुमसे कहता कि ब्रह्मचर्य को लक्ष्य बना लो!

ब्रह्मचर्य को तो भूलो। अभी तो जीवन को जीओ! परमात्मा ने जो जीवन दिया है उसे उसकी समग्रता में जीओ, परिपूर्णता में जीओ। जरा भी इनकार मत करो। जरा भी भयभीत नहीं, जरा भी सिकुड़ो मत। अभी तो डुबकी मारो इस जीवन में। इसी डुबकी को मार कर तुम जो मोती ले आओगे, वे ब्रह्मचर्य के होंगे।

ब्रह्मचर्य जीवन-विपरीत नहीं है, जीवन का सार-निचोड़ है।

जैसा कुछ चाहा था,
वैसा तो हुआ नहीं!
शब्दों की भीड़ और हम,
जलते संबंध और भ्रम।
चिटका है शीशा क्यों?
हमने तो छुआ नहीं।
जीने को खींचतान।
कहने को स्वाभिमानी।

आंच बहुत है लेकिन,
आस-पास धुआं नहीं।
रीतापन अपना है,
बाकी सब सपना है,
डूबे हैं जिसमें हम,
शायद वह कुआं नहीं

जीवन को रीता-रीता अनुभव न करोगे तो क्या करोगे? अगर अस्वाभाविक ढंग से जीने की कोशिश की तो यही होगा--

रीतापन अपना है,
बाकी सब सपना है।
डूबे हैं जिसमें हम,
शायद वह कुआं नहीं।

जीवन में डूबो, जीवन के कुएं में डूबो। डरो मत! डर-डर कर कोई परमात्मा तक नहीं पहुंचता। केवल साहसी, दुस्साहसी उस तक पहुंचते हैं। और देर न करो।

तुम कहते होः "मैं पच्चीस वर्ष का ही हूं अभी। विवाह और घर-द्वार की झंझट में पड़ना नहीं चाहता।"

फिर क्या सत्तर साल में पड़ोगे विवाह और घर-द्वार की झंझट में? अभी पड़ो तो सत्तर तक निकल आओगे। सत्तर में पड़े तो फिर निकलोगे कब? सीधी सी बात है।

हमने इस देश में पूरा विज्ञान तय किया था। पच्चीस वर्ष तक विद्यार्थी के काल को हमने "ब्रह्मचर्य" कहा था। क्योंकि सब तरह से डूब जाना अध्ययन में, मनन में, संगीत में, शास्त्र में, कला में, तो ब्रह्मचर्य अपने आप फलित होगा। फिर पच्चीस साल के बाद विवाह, परिवार, गृहस्थ; क्योंकि वह जो सीख कर आए हो गुरुकुल से, उसका उपयोग करना। वे जो कलाएं सीखीं, उनको जीओगे कहां? वह जो मूर्ति गढ़ना सीखा, उनको गढ़ोगे कहां? वह जो ध्यान सीखा गुरुकुल में, उसको परखोगे कहां? वह जो कामवासना में उतर कर भी साक्षी रहने की कला सीखी, उसकी जांच-पड़ताल कहां करोगे?

तो पच्चीस वर्ष तक शिक्षण और पच्चीस वर्ष के बाद पच्चीस वर्ष तक जीवन में उसका परीक्षण, प्रयोग। और जब तुम पचास के होने लगोगे तब मुड़ना जंगल की तरफ। सिर्फ मुड़ना, अभी चले मत जाना। जल्दबाजी में कुछ भी मत करना। इसलिए तीसरी अवस्था को हम कहते हैंः वानप्रस्थ। वानप्रस्थ का अर्थ होता हैः जंगल की तरफ मुड़ना। प्रस्थान की तैयारी। बोरिया-बिस्तर बांधना। अभी एकदम चले ही मत जाना। पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ रहना। घर में ही रहना, लेकिन मुंह जंगल की तरफ रखना। और पचहत्तर वर्ष की उम्र में चले जाना सब छोड़-छाड़ कर। छोड़-छा.ेड कर चले जाना, फिर कहना ठीक नहीं है--सब छूट ही जाएगा। इतनी सरलता से जो जीएगा--पच्चीस वर्ष तक जीवन की कलाओं का अध्ययन किया उनके साथ, जिन्होंने जीवन जाना है; फिर पच्चीस वर्ष तक प्रयोग किया और पाया कि वे ठीक कहते थे; फिर पच्चीस वर्ष तक सिर्फ घर में ही रह कर, घर के बाहर होने की कला का अभ्यास किया। पानी में रहे और पानी को छूने न दिया। पानी में चले और पानी को देह से लगने न दिया। कमलवत! जब यह भी हो गया तो फिर पचहत्तर वर्ष की उम्र में चुपचाप सरक गएः फिर कुछ छोड़ना नहीं पड़ता, छूट जाता है।

ये तो केवल सांकेतिक हैं। अब तुम कहीं पच्चीस का हिसाब बांध कर मत बैठ जाना। नहीं तो बहुत लोगों को तो संन्यास का क्षण ही न आएगा, क्योंकि पचहत्तर साल कितने कम लोग जीते हैं, बहुत कम लोग जीते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन गया अपने बीमा एजेंट के पास और कहा कि मेरा बीमा करवा दो, लाखों का बीमा करवा दो! उसने कहा कि नसरुद्दीन, तुम्हारी उम्र सौ साल हो गई और अब तुम्हारा कौन कंपनी बीमा करेगी? नसरुद्दीन ने कहाः अगर कंपनियों में थोड़ी भी अक्ल हो तो मेरा बीमा करना ही चाहिए, क्योंकि आंकड़े बताते हैं कि सौ साल के बाद बहुत कम लोग मरते हैं।

यह बात तो सच है। सौ साल तक जीते ही नहीं तो मरेंगे कैसे? सौ साल के बाद बहुत कम लोग मरते हैं, मुश्किल से। तो मेरा बीमा करने में तो कंपनी को कोई डर होना ही नहीं चाहिए। मरने वाले तो पहले ही निपट जाते हैं। जिनको नहीं मरना है वे ही इतना लंबा बचते हैं।

पचहत्तर साल के बाद तो तुम बचोगे कहां? औसत उम्र ही भारत की कोई छत्तीस साल, चौंतीस साल। यहां तो घर-गृहस्थी भी नहीं बन पाएगी। इसलिए इसको तो सिर्फ औपचारिक, प्रतीकात्मक समझना। अर्थ इतना है कि जीवन को चार खंडों में बांट लेना चाहिए--एक खंड अध्ययन-मनन; दूसरा खंड प्रयोग, परीक्षण; तीसरा खंड तैयारी; चौथा खंड डूब जाना परमात्मा में। नहीं तो अभी तो किसी तरह दबा लोगे... ।

यह एक बहुत महत्व की बात है समझ लेनी कि जवान आदमी अगर ब्रह्मचर्य रखना चाहे तो आसान है क्योंकि दबाने की भी ताकत होती है। और जैसे-जैसे उम्र कम होगी, दबाने की ताकत कम होगी और मुश्किल बढ़ती जाएगी। तथाकथित ब्रह्मचारियों को असली कठिनाई चालीस साल के बाद शुरू होती है, क्योंकि दबाने की ताकत तो कम हो जाती है और जिसको दबाया है वह ताजा का ताजा, वासनादग्ध, भीतर अंगारों की तरह मौजूद! और तुम्हारी दबाने की ताकत रोज कम होने लगी। फिर वासना बदला लेगी। फिर दुनिया हंसेगी। अभी अच्छा है, जीवन में उतरो।

एक धार मार कर
चली गई
बयार।
सिहर रहा
मन अब तक,
घाव
आर-पार।
हंसती है
घास
आस-पास
हंसते हैं
रक्त-रंगे
ढीठ कचनार!

फिर घास भी हंसेगी, ढीठ कचनार भी हंसेंगे! बुढ़ापे में दूल्हा बनोगे, घास भी हंसेगी, कचनार भी हंसेंगे। बुढ़ापे में दूल्हा बनोगे, जिस घोड़े पर सवार होओगे वह भी हीनहीनाएगा।

अभी समय है, यही समय है जब जीवन को जीओ! उत्फुल्लता आ जाएगी, उत्साह आएगा, उमंग आएगा, उत्सव आएगा। यद्यपि ये उत्सव, ये उत्साह, उमंग सब क्षणभंगुर हैं। जल्दी ही आएगी भी और चली भी जाएगी, टिकने वाली नहीं है। लेकिन इस अनुभव से गुजरना जरूरी है।

क्षणभंगुर के अनुभव से जो गुजरता है वही शाश्वत का प्यासा होता है। अभी तुम्हारी शाश्वत की प्यास भी झूठी है। अभी तुमने बूंद ही नहीं पी और तुम सागर पीने की बातें करने लगे। अभी चम्मच भर भी जीवन को नहीं चखा और ब्रह्मचर्य की बातें करने लगे।

नहीं-नहीं, रोहित, अभी तो प्रेम के द्वार खोलो।

आज मानव का सुनहला प्रात है;
आप विस्मृत का मृदुल आघात है;
आज अलसित और मादकता भरे
सुखद सपनों से शिथिल यह गात है;

मानिनी हंस कर हृदय को खोल दो!
आज तो तुम प्यार से कुछ बोल दो!

आज सौरभ में भरा उच्छ्वास है;
आप कंपित-भ्रमित सा वातास है;
आजशतदल पर मुदित-सा झूलता
कर रहा अठखेलियां हिमहास है;

लाज की सीमा प्रिये, तुम तोड़ दो!
आज मिल लो, मान करना छोड़ दो!

आज मधुकर कर रहा मधुपान है;
आज कलिका दे रही रसदान है;
आज बौरों पर विकल बौरी हुई
कोकिला करती प्रणय का गान है;

यह हृदय की भेंट है, स्वीकार हो!
आज यौवन का सुमुखि, अभिसार हो!

आज नयनों में भरा उत्साह है;

आज उर में एक पुलकित चाह है;
आजश्वासों में उमड़ कर बह रहा
प्रेम का स्वच्छंद मुक्त प्रवाह है;

डूब जाएं देवि, हम-तुम एक हो!
आज मनसिज का प्रथम अभिषेक हो!

अभी तो प्रेम का निवेदन करो। अभी तो कोई द्वार खटखटाओ। अभी तो प्रेमी खोजो, प्रेयसी खोजो। अभी तो इस जगत को जीओ। और त्वरा से जीओ! जितनी त्वरा से जीओगे उतने ही जल्दी इससे मुक्त होने की घड़ी आ जाएगी। जितनी अखंडता और समग्रता से जीओगे उतने ही शीघ्र ब्रह्मचर्य का फूल खिलेगा। तुम्हारे खिलाने से नहीं, अपने आप खिलेगा। तुम एक दिन पाओगे खिल गया। लक्ष्य नहीं है ब्रह्मचर्य--परिणाम है।

चौथा प्रश्नः ओशो! कहो कुछ और लोग समझते कुछ और ही हैं। ऐसा क्यों?

नरोत्तम! ऐसा न होता तो आश्चर्य होता। कहते तुम हो; समझने वाला अपना अतीत लिए है, अपनी स्मृति लिए है, अपने न्यस्त स्वार्थ लिए है। शब्द तुम्हारे हैं, अर्थ तो उसके होंगे! तुम उसके अर्थ की मालकियत नहीं कर सकते। तुम्हें जो कहना हो कहो, मगर उसे जो सुनना है वही सुनेगा। और फिर सुनने में से भी अर्थ वही निकालेगा जो उसे निकालना है।

इसलिए नाराज न होना। तुम निवेदन कर देना अपनी बात, फिर वह जो समझे समझे। तुम क्या करोगे? तुम कर भी क्या सकते हो? तुम फिर कुछ कहोगे, उस कुछ से भी वह कुछ और समझेगा। इसका कोई अंत नहीं है।

लेकिन ऐसा बहुत बार होता है, तुम कुछ कहना चाहते हो--सदभाव से, प्रेम से, करुणा से--और जब तुम देखते हो दूसरा कुछ का कुछ समझ गया तो बड़ी चोट लगती है। ऐसा लगता है कि जान कर वह बेईमानी कर रहा है, कि जान कर धोखा कर रहा है।

नहीं, कोई जान कर धोखा नहीं कर रहा है, कोई जान कर बेईमानी नहीं कर रहा है। लोग इतने मूर्च्छित हैं कि जान कर बेईमानी करने लायक होश कहां! हां, बेईमानियां हो रही हैं, धोखे भी हो रहे हैं; लेकिन सब बेहोशी में चल रहा है।

पत्नी ने शिकायत भरे स्वरों में पति से कहाः तुम्हें मेरे रिश्तेदार फूटी आंख नहीं सुहाते।

यह लो, तुम भी कैसी बातें करती हो! पति ने कहा। मुझे अपने रिश्तेदारों की अपेक्षा तुम्हारे रिश्तेदार ज्यादा पसंद हैं। अब यही देख लो न, मैं अपने सास-सुसर की अपेक्षा तुम्हारे सास-सुसर को ज्यादा चाहता हूं।

अर्थ तो अपने ही होंगे।

शादी के बाद दामाद पहली बार ससुराल गया। वह और उसकी पत्नी एक ही कमरे में बैठे थे। दूसरे कमरे में लगी हुई दीवाल-घड़ी से पहले नौ बजने की आवाज आई, फिर दस बजने की, और इसी तरह बारह भी बज गए। पति अभी तक अपनी पत्नी को एकटक देखता ही रहा था। बारह की घंटी बजते ही वह बोल उठाः ओह प्रिये, तुम्हारे साथ होता हूं तो समय कितनी जल्दी बीत जाता है!

पागल मत बनो, पिताजी घड़ी ठीक कर रहे हैं--पत्नी ने संयत स्वर में कहा।

अलग-अलग मन हैं, अलग-अलग अनुभव हैं, अलग-अलग बोध हैं।

एक नेताजी चुनाव-भाषण दे रहे थे और कह रहे थेः मैं इसी क्षेत्र में पैदा हुआ और इसी क्षेत्र की सेवा करते हुए मरूंगा।

एक आदमी ने खड़े होकर पूछाः लेकिन कब?

नरोत्तम, तुम्हें जो कहना हो कहोः लेकिन दूसरा वही समझे, इसके जितने उपाय तुम कर सको करना, जितनी सुस्पष्टता से कह सको कहना; मगर दुखी मत होना अगर वह कुछ और समझे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यहां हम एक ही भाषा बोलते हैं फिर भी एक ही भाषा नहीं बोलते।

दो मित्र बैठे बातें कर रहे थे। उनमें से एक कहने लगाः यार, यह जम्हाई क्या चीज है? दूसरे मित्र ने कहाः एक खामोश चीख! या वह एकमात्र क्षण जब विवाहित पुरुषों को मुंह खोलने का अवसर मिलता है।

मगर यह तो कोई विवाहित ही कह सकता है। यह तो अनुभवियों की बात है। और सबके अनुभव अलग हैं, सबकी जीवन-प्रतीतियां अलग हैं।

एक बात ख्याल रखो, शब्द तुम्हारा होता है, अर्थ तो उसका होगा जो सुनेगा।

कला-समीक्षक अपनी पत्नी से एक कलाकार की प्रशंसा करते हुए कह रहे थेः उसने अपने कमरे की छत पर मकड़ी के जाले का एक ऐसा यथार्थवादी चित्र बनाया कि उसकी नौकरानी झाड़ू से उस जाले को हटाने के लिए तीन दिन तक कोशिश करती रही।

पत्नी बोलीः वैसे कलाकार तो दूसरे भी मिल जाएंगे जी, मगर आजकल वैसी नौकरानी मिलनी बहुत मुश्किल है।

कला-समीक्षक का एक जगत है। वह प्रशंसा कर रहा है कि इतना यथार्थवादी मकड़ी का जाला बना दिया उसने कि नौकरानी तीन दिन तक उसको साफ करने की कोशिश में लगी रही। मगर पत्नी का और अनुभव है। पत्नी जानती है नौकरानियों को। असली मकड़ी के जालों को नहीं छूतीं... । तीन दिन तक! बिल्कुल असंभव है!

तुम्हें बहुत बार ऐसी अड़चन आएगी और ऐसी अड़चन ज्यादा आएगी जब तुम जीवन के गहरे अनुभवों की बातें करोगे। अगर तुम अपने ध्यान की बात करोगे तो बहुत मुश्किल होगा। धन की बात करोगे तो इतनी मुश्किल नहीं होगी बात, क्योंकि धन सभी का अनुभव है। ध्यान सभी का अनुभव नहीं। लोग चौकन्ने होकर सुनेंगे। लोग समझेंगे दिमाग खराब हो गया। तुम अगर कहोगे कि विचार शांत हो जाते हैं बिल्कुल, तो वे तुम्हारी तरफ ऐसे देखेंगे कि होश में हो कि ज्यादा पी गए? क्योंकि उनके तो कभी शांत नहीं हुए, तुम्हारे कैसे हो गए! और जो उनको नहीं हुआ वह किसी और को कैसे हो सकता है! तुम अगर कहोगे कि भीतर बड़ा आनंद ही आनंद होता है, वे तो थोड़े विस्मय-विमुग्ध होंगे कि कुछ कल्पना कर ली होगी, कुछ भांग वगैरह तो नहीं पी ली थी? कोई नशा वगैरह तो नहीं करने लगे? क्योंकि नशे वगैरह में कभी-कभी ऐसा आनंद अनुभव होता है भीतर ही भीतर; कोई कारण नहीं होता, और भी भंगेड़ी को हंसी आती है। और जितना ही उसको ऐसा लगता है कि कोई कारण नहीं है और हंसी आ रही है, तो हंसी पर हंसी आती है। वह और मुश्किल में पड़ जाता है। ये भीतर की बातें तो ऐसे नशे इत्यादि में होती हैं। बाहर की बातें तो होश में होती हैं।

तुम अगर किसी को ध्यान की बात करोगे, प्रार्थना की बात करोगे, तो जरा सोच-समझ कर करना। जान कर ही चलना कि दूसरा तुम्हें पागल समझेगा, नशेलची समझेगा, अफीमची समझेगा। समझेगा कि पीनक में

तान रहे हो। कहां की लंबी हांक रहे हो! बुरा मत मानना, वह कहे कि लंबी हांक रहे हो, क्योंकि उसके हिसाब से लंबी ही बात है। दया करना।

नरोत्तम, तुम्हारे प्रश्न का अर्थ मैं समझता हूं। तुम्हें जो हो रहा है, तुम चाहते हो कि कहो और कहते हो तो लोग कुछ का कुछ समझ लेते हैं। दूसरों की तो बात छोड़ दो, अपने नहीं सुनते। पत्नी के ही पास बैठ कर अगर तुम ध्यान की बात शुरू करोगे तो वह कहेगी, बस, बंद करो; कोई और बात नहीं करनी, तुम्हें बस ध्यान ही ध्यान सूझता है? कुछ काम-धाम की बात करो!

जिससे भी तुम बात करो, सोच लेना कि समझने की संभावना बहुत कम है। इसलिए थोड़े चुन कर बात करो। जिनमें लगे कि हां, कुछ रस है, जिज्ञासा है, उनसे ही बात करो। जिनमें लगे कि खोज है, उनसे बात करो। तोशायद थोड़ी-बहुत भनक उन तक पहुंच जाए।

और यह मैं जानता हूं कि जब तुम्हारे भीतर कुछ घटता है तो कहने की एक अनिवार्यता पैदा होती है, कहना ही पड़ता है। इसीलिए तो संन्यासियों का यह संघ निर्मित कर रहा हूं। तुम दूसरों से न कह सकोगे, लेकिन संन्यासियों से तुम दिल खोल कर कह सकोगे, वे समझेंगे। तुम्हारे आंसू भी समझेंगे, तुम्हारा नाच भी समझेंगे, तुम्हारी चुप्पी भी समझेंगे। कोई भी तुम्हारी कही हुई बात पर अविश्वास नहीं करेगा, तर्क नहीं करेगा। व्यर्थ की बकवास और विवाद को खड़ा नहीं करेगा।

ऐसे संघ की जरूरत है, ताकि तुम्हें सहारा मिले, ताकि तुम भरोसा कर सको कि तुम्हें जो हो रहा है वह कोई व्यक्तिगत कल्पना नहीं है, कोई सपना नहीं है; और लोगों को भी हो रहा है।

इसलिए सदी-सदी में संघ खड़े हुए--बुद्ध का, महावीर का, कबीर का, नानक का। सदी-सदी में सदगुरुओं के पास एक जमात प्रेमियों की इकट्ठी हुई, एक सत्संग जमा। वहां पीने वाले एक-दूसरे से बात करेंगे तो समझ में आती है कि सभी पियक्कड़ हैं। मगर तुम जब बाहर जाओ तो सोच-समझ कर बात करना। इस हीरे को हर किसी को मत दिखाने बैठ जाना। पारखी कोई मिल जाए तो जरूर दिखाना, लेकिन हर किसी को दिखाओगे तो वह कहेगाः इस पत्थर को किसलिए लिए फिर रहे हो? फेंको-फांको! किसी दूसरे काम में लगो!

अगर तुम चुपचाप घर में बैठोगे, शांत बैठोगे तो घर के ही लोग कहने लगेंगे कि क्या कर रहे बैठे-बैठे? शांत क्यों बैठे हो? उठो, कुछ करते हुए चलते-फिरते नजर आओ!

यह दुनिया बिल्कुल ध्यान के विपरीत है। यहां कोई नहीं समझेगा तुम्हारा शांत बैठना। लोग हंसेंगे। और तुम अगर कहोगे कि भीतर आनंद के झरने फूट रहे हैं तो लोग अगर सामने न भी हंसे तो पीठ पीछे हंसेंगे, कि ये सज्जन गए काम से!

आखिरी सवालः ओशो! पंडित-पुरोहित मनुष्य को जगाने के क्यों सदा से विरोधी हैं? और जन-सामान्य क्यों उनके जालों में बार-बार उलझ जाता है?

रामस्वरूप! पंडित-पुरोहित का अर्थ होता हैः वह जो स्वयं तो जागा हुआ नहीं है, लेकिन जागे हुए लोगों के वचनों का व्यापार कर रहा है। जो स्वयं तो अनुभव नहीं किया है, लेकिन अनुभवी जो संपदा छोड़ गए हैं उस पर फन मार कर बैठ गया है, उस पर कब्जा कर लिया है। जो खुद भी कुछ नहीं समझता कि जिस संपदा पर उसने कब्जा किया है वह क्या है, लेकिन फिर भी लोगों में यह भ्रांति बनाए रखता है कि वह समझता है। शब्द

समझता है, सार नहीं समझता। शास्त्र समझता है, सत्य नहीं समझता। और ये सत्य का जो जगत है, अनुभव का जगत है, विचार का जगत नहीं है।

पंडित-पुरोहित बड़े विचारपूर्ण हैं; मगर सत्य का अनुभव ही विचार से नहीं है, ध्यान से है। बुद्ध पैदा होंगे तो उनके पास आस-पास प्रेमियों की, पियक्कड़ों की जमात बनेगी। लेकिन बुद्ध के जाने पर अड़चन आएगी। बुद्ध के जाते ही पंडित इकट्ठे हो जाएंगे। स्वभावतः उस भीड़-भाड़ में जो सर्वाधिक मुखर होंगे, बोलने में समर्थ होंगे, समझाने में समर्थ होंगे--वे नेता हो जाएंगे। चाहे वे अनुभवी हों या न हों, लेकिन चूंकि वे बोल सकते हैं, वे नेता... और नेतृत्व ग्रहण कर लेंगे। धीरे-धीरे अनुभवियों को तो वे बाहर कर देंगे, क्योंकि अनुभवियों के कारण उनको अड़चन होगी। उनका गिरोह इकट्ठा हो जाएगा। और अनुभवी को चिंता भी नहीं है नेतृत्व करने की। और अनुभवी को कोई जनता के ऊपर कब्जा भी नहीं करना है। और अनुभवी को कोई जनता का शोषण भी नहीं करना है। लेकिन ये पंडित मौका न छोड़ेंगे। इन पंडितों की जमात फिर सदियों तक लोगों का शोषण करेगी। नाम चलेगा बुद्ध का, बुद्ध के नाम की आड़ में पंडित की दुकान चलेगी। यह पंडित कैसे राजी होगा कि कोई दूसरा बुद्‌ध लोगों को जगाए? क्योंकि अगर लोग जाग जाएं तो इसके ग्राहक कम हो जाएंगे, इसकी दुकान टूटती है।

एक होटल में दो बैरे बात कर रहे हैं।

पहला बैराः यह आदमी शराब पीकर टेबल पर ही सो गया है। उसे दो बार जगा चुका हूं, अब तीसरी बार जगाने जा रहा हूं।

दूसरा बैराः उसे बाहर क्यों नहीं निकाल देते?

पहला बैराः वह मैं नहीं कर सकता, क्योंकि हर बार जगाने पर वह बिल अदा करता है और फिर सो जाता है।

ऐसे आदमी को बाहर कैसे करो! सोए लोगों की जमात है, इसमें पंडित खूब शोषण कर रहा है। अगर कोई जगाने वाला आएगा तो पंडित को दुश्मन मालूम होगा। अगर बुद्ध स्वयं लौटें तो बुद्ध के ही भिक्षु और पंडित बुद्ध का विरोध करेंगे। अगर जीसस वापस लौटें तो पोप-पादरी ही उनका विरोध करेंगे। स्वाभाविक, क्योंकि कोई भी जो जगा देगा, फिर लोग पंडित के जाल में नहीं पड़ेंगे।

पंडित तो चाहता हैः और लाओ अफीम। और दो अफीम! और पिलाओ अफीम!

कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा है कि धर्म अफीम का नशा है। निन्यानबे प्रतिशत यह बात सच है, सिर्फ एक प्रतिशत गलत है। बुद्ध-महावीर, कृष्ण-क्राइस्ट के संबंध में गलत है, बाकी निन्यानबे प्रतिशत--शंकराचार्य और वेटिकन के पोप और जामा मस्जिद के इमाम, इन सबके संबंध में तो बिल्कुल सही है।

पंडित की इतनी पकड़ क्यों है जन-मानस पर? तुम पूछते होः जन-मानस क्यों उसके जालों में फंस जाता है?

क्योंकि उसके पास सुंदर-सुंदर शब्द हैं, भाषा है, तर्कजाल है।

जज ने चोर से पूछाः तुम उस घर में क्यों घुसे थे? चोर कोई साधारण चोर नहीं था, संस्कृत भाषा का जानकार था। असफल हो गया था परीक्षाओं में, इसलिए पंडित न हो पाया, सो चोर हो गया था। सो उस चोर ने बड़े सरल भाव से जवाब दियाः मैं क्या करता, दरवाजे पर स्वागतम लिखा था, इसलिए।

शब्द ही समझ में आते हैं कुछ लोगों को। शब्द ही उनकी नौका, शब्द ही उनका सार-सर्वस्व। और जनता को भी शब्द ही समझ में आते हैं। और शब्द अगर बहुत दिन तक दोहराए जाएं तो उनमें ऐसी प्रतीति होने लगती है कि सत्य हैं। जैसे अगर सदियों-सदियों तक कोई बात कही गई है तो तुम मान ही लेते हो कि ठीक होगी, अन्यथा इतने दिन इतने लोग कैसे मानते!

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ को किसी आदमी ने कहा... । जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने बहुत व्यंग्य किए हैं और बड़े महत्वपूर्ण व्यंग्य किए हैं। इस सदी के कुछ समझदार लोगों में एक आदमी था। किसी आदमी ने कहा कि आप बहुत सी ऐसी बातें कहते हैं जिनको दुनिया में कोई भी नहीं मानता। इतने लोग गलत कैसे हो सकते हैं?

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने पता है क्या उत्तर दिया! जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहाः इतने लोग सही कैसे हो सकते हैं? सही तो कभी कोई एकाध होता है। जागा तो कोई कभी एकाध होता है। बर्नार्ड शॉ की बात में बल है, जो उसने पूछा कि इतने लोग सही कैसे हो सकते हैं।

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ अमरीका में बोल रहा था, एक भाषण-माला दे रहा था। जैसी उसकी आदत थी, लोगों को चौंका देने की, कभी उलटी-सीधी बातें कह देने की, तो उसने शुरू ही व्याख्यान इस तरह किया... चारों तरफ देखा खड़े होकर मंच पर और कहा कि मैं देखता हूं कि यहां कम से कम पचास प्रतिशत महामूढ़ बैठे हुए हैं। अमरीका जैसा देश, लोग एकदम नाराज हो गए! हो-हल्ला मच गया। लोगों ने कहाः यह क्या मजाक है? अपने शब्द वापस लो!

थोड़ी देर तो बर्नार्ड शॉ खड़ा रहा, शोरगुल सुनता रहा। जब लोग खूब चिल्लाने लगे और कुर्सियों फेंकने की नौबत करीब आने लगी तो उसने कहाः अच्छा भाई, मैं अपने शब्द वापस लेता हूं। यहां पचास प्रतिशत बड़े बुद्धिमान लोग आए हुए हैं।

और लोग प्रसन्न हो गए, और अपनी-अपनी जगह बैठ गए। लोगों की समझ इतनी है। इससे ज्यादा समझ हो भी नहीं सकती। लोग परंपरा से जीते हैं।

बच्चा पैदा हुआ, या तो हिंदू उसकी गर्दन पकड़ लेंगे या मुसलमान या ईसाई या जैन, कोई न कोई उसकी गर्दन पकड़ लेगा जिसके भी हाथ में गर्दन आ जाए उसकी। जिनके भी करीब पड़ गया, वे ही उसकी गर्दन पकड़ लेंगे। उसको पिलाने लगेंगे। घुटी के दूध के साथ, चलो रामायण, गीता, कुरान। उसे होश ही नहीं है, तुम उसे पिलाए जा रहे हो। जब तक उसे होश आएगा तब तक उसकी हड्डी-मांस-मज्जा में समा गई तुम्हारी बकवास। बस तुम हनुमान जी को पूजते हो, वह भी पूजने लगा। तुम हनुमान-चालीसा पढ़ते हो, वह भी पढ़ने लगा। तुम मानते हो कि हनुमान-चालीसा में बड़ी शक्ति है, वह भी मानने लगा कि हनुमान-चालीसा में बड़ी शक्ति है।

हनुमान-चालीसा में क्या शक्ति हो सकती है? हनुमान की पूजा कैसे चल पड़ी? अगर तुम इसके भीतर जाओ तो तुम्हें बड़ी हैरानी होगी। यह वैसा ही जैसे अगर तुम्हें दिल्ली में मोरारजी भाई तक पहुंचना हो तो पहले किसी चमचे को पकड़ो। चमचा-चालीसा! हनुमान जी सेवक हैं रामचंद्र जी के, रामचंद्र जी तक सीधी पहुंच होना तो जरा मुश्किल है, हनुमान जी को पकड़ो! और ये रहे बंदर, सो जरा इनको फुसलाया, पीठ थपथपाई, जरा पूंछ पर तेल-मालिश की, ये खुश हो गए। इन्होंने कंधे पर बिठाया और ले चले कि चलो रामचंद्र जी से मिलवा दें! और इनके लिए तो सब द्वार खुले हैं, रामचंद्र जी के हों कि सीता मैया के हों, ये तो कहीं भी घुस जाएं। ये तो अशोक वाटिका में घुस गए थे। तो इनको तो कौन रोकेगा, कहां रोकेगा!

हनुमान-चालीसा पढ़ो! तो तुम भी पढ़ने लगे। हनुमान जी की मूर्ति मिल जाती है रास्ते में, तुम्हें पता ही नहीं रहता कि तुमने कब सिर झुका लिया।

एक सज्जन मेरे साथ घूमने जाते थे रोज सुबह। जो भी मंदिर इत्यादि मिलता जल्दी से वे सिर झुका लेते। दो-चार दिन मैंने देखा। मैंने उनसे कहा कि यह तुम होश से करते हो कि यह एक यंत्रवत आदत हो गई है? उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, होश से करता हूं। मैंने कहाः तो फिर एक काम करो, कल होश रखना कि नहीं करना है। अगर होश से करते हो तो कल एक दिन सबूत दो इस बात का कि नहीं करना है।

कल मैं उनको लेकर फिर निकला। बस पहले ही हनुमान जी का मंदिर आया कि मैंने कहा, कहो। ... कि मैं भूल ही गया। फिर वे कहने लगेः डर भी लगता है, रात में मैं सोचता भी रहा कि एक दिन के प्रयोग के लिए और अपनी जिंदगी भर की तपश्चर्या छोड़ना! और कहीं हनुमान जी नाराज हो जाएं, फिर? तो भय भी है!

जनता भयभीत है और लोभी है और मूढ़ है और सोई हुई है। इसका शोषण बिल्कुल आसान है। किसी भी तरह का इसका शोषण कर सकते हो।

मैं सूरत गया। एक मित्र ने आकर कहा कि आपकी बातें सुन कर प्रीतिकर लगीं। मैं एक ऐसे संप्रदाय में पैदा हुआ हूं जहां एक अजीब सिलसिला है। वह सिलसिला यह है कि तुम लाख रुपया अभी दान कर दो मौलवी को, जो प्रधान है संप्रदाय का उसको लाख रुपया अभी दान कर दो, तो वह चिट्ठी लिख कर दे देता है कि लिख दी भगवान के नाम कि सनद रहे, कि इसने लाख रुपया दिया है, सो इसको ठीक-ठीक इंतजाम कर देना इत्यादि... । जो-जो लाख रुपये में हो सकता है इंतजाम स्वर्ग में, वह सब चिट्ठी पर लिख कर दे देता है। और जब तुम मरोगे तो वह चिट्ठी तुम्हारी छाती पर रख कर कब्र में रख दी जाती है और लोग यह कर रहे हैं। पैसा भगवान तक पहुंचता नहीं। और चिट्ठी भी नहीं पहुंचती, क्योंकि चिट्ठी वहां कब्र में पड़ी रहती है, वह चिट्ठी कहां जाने वाली! कौन चिट्ठी ले जाएगा?

मैंने उनसे कहाः तुम जरा दो-चार कब्रें तो खोद कर देखो, चिट्ठी वहीं की वहीं पड़ी होगी। उन्होंने कहा कि वह तो पड़ी ही है, वह जानी कहां है चिट्ठी!

मगर लोग दे रहे हैं। लोभ! आदमी इतना कमजोर है कि उसका शोषण करना बहुत आसान है। उसे डरा देना बहुत आसान है। उसे घबड़ा देना बहुत आसान है। और पंडितों की सारी कला यह है कि घबड़ाओ, डराओ, भयभीत करो और यह दावा करो कि हम मध्यस्थ हैं। अगर तुमने हमारी सुनी तो हम तुम्हारी सुरक्षा का इंतजाम करवा देंगे। मौत के बाद, अगर तुमने अभी हमारी सुनी तो हम तुम्हारा साथ देंगे।

और मौत का सबसे बड़ा भय है। और जब तक मौत का भय है तब तक पंडित तुम्हारी छाती पर हावी रहेगा।

सदगुरु मौत के भय को मिटा देते हैं, क्योंकि वे तुम्हें उसका अनुभव करवा देते हैं जिसकी कोई मृत्यु नहीं है--उस अमृत का स्वाद तुम्हें दिला देते हैं। अमी झरत, बिगसत कंवल! वे तुम्हारे भीतर उस लोक में प्रवेश करा देते हैं जहां अमृत की वर्षा हो रही है और कमल विकसित हो रहे हैं। ऐसे कमल जो कभी मुरझाते नहीं! वे तुम्हें शाश्वत और सनातन से जोड़ देते हैं।

जो तुम्हें शाश्वत से जोड़ देगा, जो तुम्हें मृत्यु के पार का दर्शन करा देगा, वही तुम्हें पंडित और पुरोहित के जाल के बाहर ले जा सकता है। इसलिए स्वभावतः पंडित और पुरोहित, जो भी तुम्हें जगाएगा उसके दुश्मन हैं। ईसा को सूली दी उन्होंने, सुकरात को जहर पिलाया, मंसूर की गर्दन काटी। यही उनका काम रहा है! यही उनका काम आगे भी रहेगा। उनसे सावधान!

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

अवल गरीबी अंग बसै

अवल गरीबी अंग बसै, सीतल सदा सुभाव।
पावस बूटा परेम रा, जल सूं सींचो जाव।।

लागू है बोला जणा, घर घर माहीं दोखी।
गुज कुणा सो कीजिए, कुण है थारो सोखी।।

जोबन हा जद जतन हा, काया पड़ी बुढ़ांण।
सूकी लकड़ी न लुलै, किस बिध निकसे काण।।

लाय लगी घर आपणे, घट भीतर होली।
शील समंद में न्हाइए, जहं हंसा टोली।।

स्वामी शिव साधक गुरु, अब इक बात कहूं।
कूंकर हो हम आवणू, बिच में लागी दूं।।

करमां सूं काला भया, दीसो दूं दाध्या।
इक सुमरण सामूं करो, जद पड़सी लाधा।।

अलख पूरी अलगी रही, ओखी घाटी बीच।
आगैं कूंकर जाइए, पग पग मांगैं रीच।।

प्रेम कटारी तन बहै, ज्ञान सेल का घाव।
सनमुख जूझैं सूरवां, से लोपैं दरियाव।।

यह महलों, यह तख्तों, यह ताजों की दुनिया
यह इन्सां के दुश्मन समाजों की दुनिया
यह दौलत के भूखे रिवाजों की दुनिया
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

हर एक जिस्म घायल, हर इक रूह प्यासी
निगाहों में उलझन, दिलों में उदासी

यह दुनिया है या आलमे-बदहवासी
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

यहां इक खिलौना है इन्सां की हस्ती
यह बस्ती है मुर्दा-परस्तों की बस्ती
यहां पर तो जीवन से है मौत सस्ती
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

जवानी भटकती है बदकार बन कर
जवां जिस्म सजते हैं बाजार बन कर
यहां प्यार होता है व्यापार बन कर
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

यह दुनिया जहां आदमी कुछ नहीं है
वफा कुछ नहीं, दोस्ती कुछ नहीं है
जहां प्यार की कद्र ही कुछ नहीं है
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

जला दो इसे फूंक डालो यह दुनिया
मेरे सामने से हटा लो यह दुनिया
तुम्हारी है तुम ही सम्हालो यह दुनिया
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

मनुष्य के समक्ष जो शाश्वत प्रश्न है वह एक है। वह प्रश्न है कि मैं क्या पाऊं कि तृप्त हो जाऊं? धन मिल जाता है, तृप्ति नहीं मिलती। पद मिल जाता है, तृप्ति नहीं मिलती। यश मिल जाता है, तृप्ति नहीं मिलती। तृप्ति मिलनी तो दूर, जैसे धन, पद और यश बढ़ता है वैसे ही वैसे अतृप्ति बढ़ती है। जैसे-जैसे ढेर लगते हैं धन के वैसे-वैसे भीतर की निर्धनता प्रकट होती है। बाहर तो अंबार लग जाते हैं स्वर्णों के--और भीतर? भीतर की राख और भी प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ने लगती है।

धन के बढ़ने के साथ दुनिया में निर्धनता बढ़ती है। इस अनूठे गणित को ठीक से समझ लेना। जितना धनी व्यक्ति होता है उतना ही उसका निर्धनता का बोध गहरा होता है। जितना सम्मानित व्यक्ति होता है, उतना ही उसे अपने भीतर की दीनता प्रतीत होती है। सिर पर ताज होता है तो आत्मा की दरिद्रता पता चलती है। गरीब को, भूखे को तो फुरसत कहां? भूख और गरीबी में ही उलझा रहता है। भूख और गरीबी को देखने के लिए भी समय कहां, सुविधा कहां? लेकिन जिसकी भूख मिट गई, गरीबी मिट गई, उसके पास समय होता है, सुविधा होती है कि जरा झांक कर देखे, कि जरा लौट कर देखे, कि जिंदगी पर एक सरसरी नजर डाले। कहां पहुंचा हूं?

क्या पाया है? और दिन चुके जाते हैं और मौत करीब आई जाती है। और मौत कब दस्तक देगी द्वार पर, कहा नहीं जा सकता। और हाथ से जीवन की संपदा लुट गई। और जो इकट्ठा किया है वह कौड़ियां हैं!

यह महलों, यह तख्तों, यह ताजों की दुनिया

यह इन्सां के दुश्मन समाजों की दुनिया

यह दौलत के भूखे रिवाजों की दुनिया

यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

लेकिन मिल जाने पर ही पता चलता है। जब तक यह मिल न जाए, तब तक पता भी चले तो कैसे चले? हीरे हाथ में आते हैं तो ही पता चलता है कि न इनसे प्यास बुझती है, न भूख मिटती है। हीरे हाथ में आते हैं तो ही पता चलता है कि ये भी कंकड़ ही हैं; हमने प्यारे नाम दे दिए हैं। हमने अपने को धोखा देने के लिए बड़े सुंदर जाल रच लिए हैं।

हर एक जिस्म घायल, हर इक रूह प्यासी

निगाहों में उलझन, दिलों में उदासी

यह दुनिया है या आलमे-बदहवासी

यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

यहां लोग सोए हुए हैं, मूर्च्छित हैं। चले जा रहे हैं नींद में। क्यों जा रहे हैं, कहां जा रहे हैं, किसलिए जा रहे हैं, कौन हैं--कुछ भी पता नहीं। और सब जा रहे हैं इसलिए वे भी जा रहे हैं। भीड़ जहां जा रही है वहां लोग चले जा रहे हैं--इस आशा में कि भीड़ ठीक ही तरफ जा रही होगी; इतने लोग जाते हैं तो ठीक ही तरफ जाते होंगे। मां-बाप जाते हैं, पीढ़ियां दर पीढ़ियां इसी राह पर गई हैं, सदियों-सदियों से लोग इसी पर चलते रहे हैं--तो यह राज-पथ ठीक ही होगा। और कोई भी नहीं देखता कि यह राज-पथ सिवाय कब्र के और कहीं नहीं ले जाता। ये सब राज-पथ मरघट की तरफ जाते हैं।

इब्राहिम सूफी फकीर हुआ, सम्राट था। एक रात सोया था। नींद आती नहीं थी। सम्राट होकर नींद आनी मुश्किल ही हो जाती है--इतनी चिंताएं, इतने उलझाव, जिनका कोई सुलझाव नहीं सूझता; इतनी समस्याएं, जिनका कोई समाधान दिखाई नहीं पड़ता! सोए तो कैसे सोए? और तभी उसे आवाज सुनाई पड़ी कि ऊपर छप्पर पर कोई चल रहा है। चोर होगा कि लुटेरा होगा कि हत्यारा होगा? जिनके पास बहुत कुछ है तो भय भी बहुत हो जाता है। आवाज दी जोर से कि कौन है ऊपर? ऊपर से उत्तर जो आया, उसने जिंदगी बदल दी इब्राहिम की। ऊपर से उत्तर आया, एक बहुत बुलंद और मस्त आवाज ने कहाः कोई नहीं, निश्चिंत सोए रहो! मेरा ऊंट खो गया है। उसे खोज रहा हूं।

छप्परों पर ऊंट नहीं खोते--मकानों के छप्परों पर! महलों के छप्परों पर ऊंट नहीं खोते। इब्राहिम उठा, सैनिक दौड़ाए कि पकड़ो कौन आदमी है, क्योंकि आवाज में एक मस्ती थी। आवाज में एक गीत था, एक मादकता थी। आवाज जैसे किसी और लोक की थी! जैसे आवाज में एक गहराई थी--जैसी गहराई इब्राहिम ने कभी किसी आवाज में नहीं देखी थी! आवाज इब्राहिम के भीतर कोई तार छेड़ गई। बेबूझ भी थी। उलटबांसी थी। महलों के छप्परों पर ऊंटों की तलाश आधी रात... या तो कोई पागल है या कोई परमहंस है। पागल हो नहीं सकता, क्योंकि आवाज का जादू कुछ और कहता है। पागल हो नहीं सकता, क्योंकि आवाज का गणित कुछ और कहता है। पागल हो नहीं सकता।

पागल तो इब्राहिम ने बहुत देखे थे। पागलों से ही घिरा था। सारा दरबार पागलों से भरा था। सारी दुनिया पागलों से भरी है। यह आदमी कुछ और ही ढंग का आदमी होगा। लेकिन नहीं पकड़ा जा सका। सिपाही भागे-दौड़े, लेकिन वह आदमी हाथ आया नहीं आया। सुबह इब्राहिम उदास है, चिंतित है कि उस आदमी से मिलना न हो सका। जिसकी आवाज में जादू था, उसकी आंख में भी झांकने के इरादे थे। उसके पास दो क्षण बैठ लेने की आकांक्षा जगी थी।

और तभी द्वारपाल से कोई आदमी झगड़ा करने लगा, द्वारपाल से कोई आदमी उलझने लगा। आवाज पहचानी हुई लगी। हां, वही आवाज है और वह जो कह रहा था फिर उलटबांसी थी। द्वारपाल से वह कह रहा था कि मुझे इस सराय में कुछ दिन ठहर जाने दो। और द्वारपालकह रहा थाः तुम पागल तो नहीं हो! यह सराय नहीं, सम्राट का निवास-स्थान है। और वह आदमी कह रहा था कि मेरी मानो, यह सराय है। यहां कौन सम्राट है और किसके निवास-स्थान हैं? यह सारी दुनिया सराय है। ठहर जाने दो चार दिन, देखो, कहता हूं ठहर जाने दो चार दिन। चार दिन के लिए सराय से इनकार न करो।

आवाज पहचानी सी लगी और फिर बात में भी वही उलझाव था, बात में वही राज और रहस्य था। इब्राहिम भागा, बाहर आया। था आदमी अदभुत, उसे भीतर ले गया और पूछाः शर्म नहीं आती, राजमहल को सराय कहते हो! यह सिर्फ उकसाने को पूछा, यह भड़काने को पूछा। वह आदमी खिलखिला कर हंसने लगा। उसने कहाः राजमहल, तुम्हारा निवास-स्थान? तो तुम्हारा ही यह निवास-स्थान है? लेकिन कुछ वर्षों पहले मैं आया था तब एक दूसरा आदमी यही दावा करता था।

इब्राहिम ने कहाः वे मेरे पिता थे, स्वर्गीय हो गए। और उस फकीर ने कहाः उसके पहले भी मैं आया था, तब एक तीसरा आदमी यही दावा करता था। इब्राहिम ने कहाः वे मेरे पिता के पिता थे, मेरे पितामह थे; वे भी स्वर्गीय हो गए। वह फकीर कहने लगाः तो फिर जो मैं कहता हूं, ठीक ही कहता हूं कि यह निवास नहीं है, सराय है। तुम कब तक स्वर्गीय होने का इरादा रखते हो? फिर भी मैं आऊंगा, फिर कोई चौथा आदमी कहेगा कि यह मेरा निवास-स्थान है। यहां लोग आते हैं और जाते हैं। मानो मेरी, चार दिन ठहर जाने दो। यह कोई महल नहीं है, न कोई निवास-स्थान है।

बात चोट कर गई। किन्हीं क्षणों में बात चोट कर जाती है। कोई अपूर्व क्षण होते हैं तब छोटी सी बात भी चोट कर जाती है। बात दिखाई पड़ गई। जैसे किसी ने झकझोर कर जगा दिया। जैसे किसी ने जबरदस्ती आंख खोल दी। इब्राहिम थोड़ी देर तो ठिठका रह गया, जवाब दे तो क्या दे! जवाब देने को कुछ था भी नहीं। और इस आदमी की मौजूदगी, और इस आदमी का आह्लाद, और इस आदमी की सचाई, और इस आदमी की वाणी की गहराई प्राणों के आर-पार हो गई। उसने कहा कि आप सिंहासन पर विराजें और इस सराय में जब तक ठहरना हो ठहरें। मैं चला।

इब्राहिम बाहर हो गया। महल छोड़ दिया। सराय में क्या रुकना! फिर वह गांव के बाहर रहता था। और अक्सर ऐसा हो जाता था, कि राहगीर आते... वह एक चौराहे पर रहने लगा था, एक झाड़ के नीचे... राहगीर उससे पूछते कि बाबा, बस्ती का रास्ता किस तरफ है? तो कह देता कि बाएं चले जाओ। देखो बाएं ही जाना, तो बस्ती पहुंच जाओगे। दाएं भूल कर मत जाना, नहीं तो मरघट पहुंच जाओगे।

फकीर की बात मान कर लोग बाएं चले जाते, दो-चार मील चलने के बाद मरघट पहुंच जाते। वह मरघट का रास्ता था। लौट कर बड़े नाराज आते कि यह भी कोई मजाक की बात है। हम थके-मांदे यात्री, दूर से आए यात्री और तुमने कहा बाएं ही जाना तो बस्ती पहुंचोगे और हम मरघट पहुंच गए!

तो इब्राहिम कहताः तो हमारी भाषाओं में कुछ भेद है। क्योंकि वहां मरघट जिसको तुम कह रहे हो, जो लोग बसे हैं वे कभी उखड़ते नहीं। इसलिए मैं उसे बस्ती कहता हूं--जो बस गया सो बस गया। बस्ती उसको कहना चाहिए, जहां से लोग कभी उखड़ते न हों। बस गए तो बस गए! तो फिर तुम मरघट की पूछते थे, लेकिन तुमने बस्ती क्यों कहा? तो मरघट इस तरफ है, दाईं तरफ चले जाओ। जिसको तुम बस्ती कह रहे हो वह मरघट है, क्योंकि वहां सब आदमी मरने को तत्पर हैं। आज कोई मरा, कल कोई मरा, परसों कोई मरा!

यहां इक खिलौना है इन्सां की हस्ती

यह बस्ती है मुर्दा-परस्तों की बस्ती

यहां पर तो जीवन से मौत सस्ती

यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

लेकिन दौड़ रहे हैं लोग... । कितनी आपा-धापी है इस दुनिया को पा लेने के लिए! और इस पाने में सिर्फ एक बात घटती है--खुद लुट जाते हैं। कंकड़-पत्थर इकट्ठे हो जाते हैं, आत्मा बिक जाती है। खुद को बर्बाद कर लेते हैं। हां, कुछ चीजें छोड़ जाते हैं। कुछ मकान बना जाते हैं। कुछ पत्थरों पर नाम खोद जाते हैं। इससे जो सावधान होता है वही व्यक्ति धर्म के जगत में प्रवेश करता है। इस वस्तुस्थिति के प्रति जो जागरूक होता है वही धार्मिक है।

धर्म का मंदिर-मस्जिदों और गिरजों से कुछ लेना नहीं; गीता-कुरान और बाइबिल से कुछ लेना नहीं। धर्म का संबंध है इस बोध से--यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है! तीर की तरह यह बात चुभ जाए भीतर, तो जीवन में एक झरना फूटता है। तुम्हारे ही प्राणों में, तुम्हारे ही अंतःकरण में एक संगीत उमगता है--तुम्हारे भीतर ही एक ज्योति जलनी शुरू होती है--जो शायद जल ही रही थी, लेकिन तुम्हारी आंखें चूंकि बाहर भटक रही थीं, चूंकि तुम दुनिया की तलाश पर निकले थे और तुमने कभी पीछे लौट कर अपने भीतर नहीं देखा था, इसलिए पता न चला था। इसलिए प्रत्यभिज्ञा न हो सकी थी।

जिस दिन दिखाई पड़ जाता है कि यह पूरी दुनिया भी मिल जाए तो कुछ मिलेगा नहीं, उस दिन आदमी आंख बंद करता है और अपने भीतर देखता है। तब अपना स्वरूप दिखाई पड़ता है--मैं कौन हूं! और जिसने जान लिया मैं कौन हूं, उसने सब जान लिया। जो भी जानने योग्य है सब जान लिया। जो भी पाने योग्य है सब पा लिया।

स्वयं को जानते ही तृप्ति की वर्षा हो जाती है, अमृत के मेघ घिर आते हैं। शाश्वत जीवन का द्वार खुल जाता है। बाहर तो जो कुछ है सब क्षणभंगुर है। पानी के बबूले हैं। इंद्रधनुष हैं। क्षितिज की तरह जो कुछ भी है सब झूठ है; दिखाई पड़ता है और फिर भी नहीं है।

देखते नहीं, थोड़ी ही दूर पर आकाश पृथ्वी से मिलता हुआ दिखाई पड़ता है--और कहीं मिलता नहीं! दौड़ते रहो, दौड़ते रहो, दौड़ते रहो... दौड़ते-दौड़ते गिर जाओगे। दौड़ते-दौड़ते कब्र में पड़ जाओगे। झूले से लेकर कब्र तक दौड़ते ही रहोगे और क्षितिज कभी आएगा नहीं।

इस दुनिया के मिल जाने से भी कुछ मिलता नहीं है, ऐसी प्रतीति... और एक क्रांति घटती है। कंकड़-पत्थरों से नजर हट जाती है और आत्मा की तलाश शुरू होती है। धन मूल्यहीन हो जाता है, ध्यान का मूल्य प्रतिष्ठित होता है। उसी ध्यान के मूल्य के ये सूत्र हैं।

हंसा तो मोती चुगैं! हंस बनो! चुगना हो तो मोती चुगो। कब तक कंकड़-पत्थरों को इकट्ठा करते रहोगे? कब तक ठीकरों में उलझे रहोगे? कब तक व्यर्थ को ही सार्थक समझ कर दौड़ते रहोगे? कब जागोगे मृग-

मरीचिका से? कब स्मरण करोगे कि हंस हो तुम, कि मानसरोवर तुम्हारा देश है! कि मोती ही तुम्हारा भोजन हो सकते हैं! कि मोती चुगो तो ही तृप्ति है, तो ही तोष है, तो ही मुक्ति है, तो ही मोक्ष है! कि मोती ही चुगो तो निर्वाण है।

चहल-पहल की इस नगरी में हम तो निपट बिराने हैं,
हम इतने अज्ञानी, निज को हम ही स्वयं अजाने हैं!

इसीलिए हम तुमसे कहते
दोस्त हमारा नाम न पूछो!
हम तो रमते-राम सदा के
दोस्त हमारा गाम न पूछो!
एक यंत्र-सा, जो कि नियति के
हाथों से संचालित होता
कुछ ऐसा अस्तित्व हमारा,
दोस्त हमारा काम न पूछो!
यहां सफलता या असफलता, ये तो सिर्फ बहाने हैं।
केवल इतना सत्य कि निज को हम ही स्वयं अजाने हैं।

चरणों में कंपन है, मस्तक पर शत-शत शंकाएं हैं,
अंधकार आंखों में, उर में चुभती हुई व्यथाएं हैं!
अपनी इन निर्बलताओं का,
हम कहते हैं--हमें ज्ञान है,
इसीलिए हम ढूंढ रहे हैं
जो शाश्वत है, जो महान है!
जितने देखे--मिटने वाले।
जितने देखे--मरने वाले।
जीवन औ" निर्माण लिए जो
प्रेम अकेला शक्तिवान है!
बुरा न मानो, जनम-जनम के हम तो प्रेम दीवाने हैं,
इसीलिए हम तुमसे कहते, हम तो निपट बिराने हैं!

चहल-पहल की इस नगरी में हम तो निपट बिराने हैं,
हम इतने अज्ञानी, निज को हम ही स्वयं अजाने हैं!

अपने से ही परिचय नहीं है, दूसरे का परिचय हम करने चले हैं। अपने से संबंध नहीं है, दूसरों से संबंध बनाने चले हैं। इसलिए हमारे सारे संबंध विषाद लाते हैं, संताप लाते हैं।

जिसे हम प्रेम कहते हैं वह सच्चा नहीं हो सकता, क्योंकि जब तक ध्यान से न उमगे तब तक कैसे सच्चा होगा? जो अपने से ही संबंध नहीं बना पाया, वह किस और से संबंध बना सकेगा? पति पत्नी से, भाई बहन से, मित्र मित्र से, मां बेटे से, किससे संबंध बनाओगे? कैसे बनाओगे? अभी तो प्राथमिक संबंध का पाठ भी पूरा नहीं हुआ। अभी तो तुम पहली सीढ़ी भी नहीं चढ़े।

ध्यान पहली सीढ़ी है। ध्यान का अर्थ होता हैः अपने से संबंध। ध्यान को ठीक से समझो तो ध्यान का अर्थ होता हैः अपने से प्रेम। और जो निज के प्रेम में डुबकी मारता है, उसे पता चलता है कि वहां मैं जैसी कोई इकाई नहीं है। लहर हूं सागर की। जिसने मैं में डुबकी मारी वह पाता है कि मैं तो हूं ही नहीं। तब एक नये अर्थों में, एक नये आयाम में, एक नई भाव-भंगिमा में प्रेम का उदय होता है। वह प्रेम संबंध नहीं है, वह प्रेम तुम्हारी स्वयं की सहज, स्वस्फूर्त अवस्था है। लाल के सूत्र ध्यान से प्रेम कैसे जन्में, इसके सूत्र हैं।

अवल गरीबी अंग बसै, सीतल सदा सुभाव।

पावस बूटा परेम रा, जल सूं सींचो जाव।।

अवल गरीबी अंग बसै...

सबसे पहले तो यह समझ लो कि तुम हो ही नहीं। इतने गरीब हो कि तुम हो ही नहीं। यह मैं जब तक है तब तक तुम अपने को कुछ न कुछ समझे बैठे हो--कुछ न कुछ अमीरी का दावा। मैं तुम्हारी सबसे बड़ी संपदा है, शेष सारी संपदाएं तो मैं का ही विस्तार हैं। मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरा मंदिर, मेरा धन, मेरा पद, मेरी प्रतिष्ठा--यह सारा मेरा "मैं" का ही विस्तार है। और हम मेरे का विस्तार इसीलिए तो करते हैं ताकि मैं मजबूत होता जाए, सघन होता जाए, सुदृढ़ होता जाए। "मेरा" "मैं" का रक्षण करता है। "मेरा" जैसे जल बन जाता है "मैं" की मछली को जिलाए रखने को। लेकिन "मेरे" के पीछे छिपा हमेशा ही "मैं" है।

और अगर अपने में उतरो तो पाओगे पहली बात कि मैं तो है ही नहीं। इसलिए प्रथम ही भूल हो गई। इसलिए यात्रा का पहला कदम ही गलत दिशा में पड़ गया। फिर तुम मंजिल तक न पहुंचो तो आश्चर्य क्या!

अवल गरीबी अंग बसै...

सबसे पहले तो अपने अंतर में, अंतर्तम में, अपने भीतर से भीतर एक बात को समझ लेना कि मैं नहीं हूं। ऐसे गरीब हो जाना कि मैं नहीं हूं। ऐसे निर्बल हो जाना कि मैं नहीं हूं। और जो इतना निर्बल हो जाता है, उसे बहुत कुछ मिलता है। निर्बल के बलराम! जो इतना भीतर शून्य हो जाता है, वह पूर्ण को पाने का पात्र हो जाता, अधिकारी हो जाता है। जिसने अपने को मिटा ही दिया, वह मंदिर बन गया। उसके भीतर परमात्मा को उतरना ही होगा, अपरिहार्य रूप से उतरना होगा।

अवल गरीबी अंग बसै...

तो सबसे पहले तो अंग-अंग में यह "मैं-भाव" मर जाए, यह अहंकार चला जाए कि मैं पृथक हूं, कि मैं विशिष्ट हूं, कि मैं दूसरों से ऊपर हूं, कि मैं कुछ खास हूं। और यह "मैं-भाव" इतना सूक्ष्म है और इतना चालबाज है कि बड़े बारीक रास्ते खोज लेता है। धन हो तो अकड़ जाता है, पद हो तो अकड़ जाता है। इतना ही नहीं, पद छोड़ दे तो अकड़ जाता है--कि मैंने पद का त्याग कर दिया! धन छोड़ दे तो अकड़ जाता है--कि मैंने धन का त्याग कर दिया। बाजार में होता है तो अकड़ा, बाजार छोड़ कर पहाड़ की गुफा में बैठ जाता है तो अकड़ा--कि

मैंने लाखों पर लात मार दी! मगर अकड़ अपनी जगी खड़ी रहती है। रस्सी जल भी जाती है तो भी ऐंठन नहीं जाती।

इस "मैं" के प्रति बड़ी सचेतना चाहिए। इसके एक-एक ढंग को पहचानना होगा। पर्त-पर्त इसको उघाड़ना होगा। इसका साक्षात्कार करना होगा। इसे देखना होगा--इसकी हर भाव-भंगिमा में, हर मुद्रा में। यह कभी पीछे के दरवाजों से भी आता है, वहां भी जांच-पड़ताल रखनी होगी। सावचेत रहना होगा।

अवल गरीबी अंग बसै, सीतल सदा सुभाव।

और जिस दिन तुम पाओगे कि यह मैं मर गया और तुम मैं से गरीब हो गए, उसी दिन तुम्हारे जीवन में एक शीतलता उतर आएगी। तुम्हारा स्वभाव एकदम शीतल हो जाएगा। क्योंकि सारी उष्णता और गरमी अहंकार की है। सारा क्रोध, सारा उत्ताप अहंकार का है। तुम जो जले-भुने जाते हो, सारा बुखार अहंकार का है। अहंकार गया तो रोग गया।

तुम ख्याल करो, जितना अहंकार हो उतनी ही जीवन में ज्वालाएं सहनी पड़ती हैं; उतना ही उत्ताप झेलना पड़ता है; उतने ही घाव... । जितना अहंकार कम हो उतने ही घाव नहीं। अहंकार ही नहीं तो घाव लगेंगे कैसे? अहंकार ही नहीं तो कोई गाली भी दे जाएगा तो फूल जैसी पड़ेगी। और अहंकार हो तो फूल भी मार दो किसी को, तो पत्थर जैसा लगेगा।

अहंकार के कारण ही तुम्हारा जीवन आग की लपटों में झुलसा जा रहा है। तुम शीतल नहीं हो पा रहे। तुम शांत नहीं हो पा रहे। तुम जीवन का परम आनंद नहीं अनुभव कर पा रहे। तुम अपने ही हाथों नरक में हो। स्वर्ग तुम्हारा हो सकता है। स्वर्ग तुम्हारा अधिकार है, तुम्हारा स्वरूप-सिद्ध अधिकार है। मगर शर्त पूरी करनी होगी।

मेरी भूलों से मत उलझो, जनम-जनम का मैं अज्ञानी!
कांटों से निज राह सजा कर,
मैंने उस पर चलना सीखा,
श्वासों में निःश्वास बसा कर
मैंने उस पर पलना सीखा

गलना सीखा मैंने निशि-दिन
निज आंखों का पानी बन कर,
अपने घर में आग लगा कर
मैंने उसमें जलना सीखा।
मुझे नियति ने दे रक्खी है पागलपन से भरी जवानी!
मेरी भूलों से मत उलझो, जनम-जनम का मैं अज्ञानी!

लगातार मैं पीता जाता, भरता जाता मेरा प्याला!
मैं क्या जानूं क्या है अमृत?
क्या जानूं क्या यहां हलाहल?

खारा-खारा नीर उदधि का,
मीठा-मीठा है गंगा-जल!
सुनने को तो सुन लेता हूं,
कड़वे-मीठे बोल जगत के,
तड़प-तड़प उठती है बिजली,
बरस-बरस पड़ते हैं बादल!
कौन पिलाने वाला, बोलो, कौन यहां पर पीने वाला?
लगातार मैं पीता जाता, भरता जाता मेरा प्याला!

सीधा-सादा ज्ञान तुम्हारा, बहकी-बहकी मेरी बातें!
एक तरफ उसकी हर धड़कन,
जिसको तुम सब कहते हो दिल,
और स्वयं मैं एक लहर हूं,
मैं क्या जानूं क्या है साहिल?
मेरे मन में नई उमंगें,
मेरे पैरों में चंचलता,
पिछली मंजिल छोड़ चुका हूं,
ज्ञात नहीं है अगली मंजिल!
सबके सपने अलग-अलग हैं, यद्यपि वही हैं सबकी रातें!
सीधा-सादा ज्ञान तुम्हारा, बहकी-बहकी मेरी बातें!

जरा मनुष्य को देखो। उसके डांवाडोल होते पैरों को देखो। ऐसे चलता है जैसे शराबी चल रहा हो। चलता जाता है। गिरता है, उठता है, चलने लगता है। मगर कुछ स्पष्ट नहीं है। न कोई दिशा-बोध है। न कोई जीवन में क्रम है। अगर किसी को झकझोर कर पूछो कि कहां जा रहे हो, तो किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रह जाता है। कंधे बिचकाता है।

इसलिए लोग इस तरह के प्रश्न पूछते भी नहीं एक-दूसरे से। अशिष्टाचार मालूम होगा ऐसे प्रश्न पूछो तो। लोग फिजूल की बातें करते हैं, मौसम की बातें करते हैं--कि आज बादल घिरे हैं, कि आज सूरज निकला है, कि तबीयत कैसी है, कि स्वास्थ्य कैसा है? लोग फिजूल की बातें पूछते हैं। मतलब की कोई बात पूछता नहीं।

रवींद्रनाथ ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब गीतांजलि, उनकी प्रसिद्ध कृति प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने ठीक वैसे अमृत-वचन लिखे हैं जैसे उपनिषदों के वचन हैं, तो एक पड़ोस का व्यक्ति, एक बूढ़ा आदमी सुबह-सुबह घूमते उन्हें पकड़ लिया, दोनों कंधे हिला कर बोलाः ईश्वर को देखा है? उसकी आंखें बड़ी पैनी कि भेद जाएं भीतर तक। और जिस ढंग से उसने पूछा और जिस बेवक्त पकड़ कर पूछा, रवींद्रनाथ न कह सके कि देखा है। चुप खड़े रह गए। वह आदमी खिलखिला कर हंसने लगा। उसकी खिलखिलाहट छाती में छुरी की तरह चुभ गई। और फिर वह आदमी जब भी मिलता और अक्सर मिल जाता, पड़ोस में ही था, कहीं भी आते-जाते मिल जाता--तो वह छोड़ता नहीं था मौका, पकड़ लेताः ईश्वर को देखा है? ईमान से बोलो, ईश्वर को देखा है?

रवींद्रनाथ ने एक दिन उससे कहाः भई, यह प्रश्न मुझसे बार-बार क्यों पूछते हो? उसने कहाः गीतांजलि क्यों लिखी? अगर ईश्वर को देखा नहीं है तो क्यों ये गीत लिखे? कैसे ये गीत लिखे? ये सब गीत झूठे हैं!

रवींद्रनाथ बचते थे। अगर उनको निकलना भी होता तो चक्कर मार कर जाते उसके घर के आस-पास से न निकलते। तो वह आदमी उनके घर आने लगा। दरवाजा खटखटाने लगा। सुबह से ही आकर बैठ जाता। जब तक मिल न ले तब तक जाता नहीं। और मिलता तो वही सवाल, वही तीखी आंखें, जिनके सामने झूठ न बोला जा सके।

लेकिन एक सुबह रवींद्रनाथ सागर तट पर गए थे। वहां उन्होंने सूरज को सागर पर चमकते देखा; सुबह होती थी और सूरज निकलता था। और सूरज की लालिमा आकाश में भी फैल गई थी और सागर में भी। रात वर्षा हुई थी। रास्ते के किनारे गड्ढों में जल भर गया था। जब लौटने लगे तो एक अपूर्व बोध हुआ। सूरज में जो सौंदर्य था, वह सागर में भी झलक रहा था, विराट सागर में! और रास्ते के किनारे गंदे डबरों में भी चमक रहा था, उतना ही सुंदर! कुछ भेद न था डबरों में और सागर में। सूरज के लिए कोई भेद न था, बिल्कुल अभेद था। सूरज के लिए सब एक था, कोई बुरा न था, कोई भला न था। डबरे भी वैसे ही थे जैसे सागर। गंदे थे डबरे और सागर स्वच्छ था। लेकिन सूरज का जो प्रतिबिंब बन रहा था, वह न तो गंदा होता है और न स्वच्छ होता है। प्रतिबिंब गंदा नहीं होता। गंदे पानी में भी बने, तो भी प्रतिबिंब गंदा नहीं होता। गंदगी प्रतिबिंब को कैसे छुएगी? प्रतिबिंब तो अछूता रहता है। प्रतिबिंब तो संन्यासी है। उसे कुछ भी नहीं छूता।

यह भाव-बोध और जैसे एक द्वार खुल गया! अब तक जो मन में ख्याल था बुरे आदमी और अच्छे आदमियों का; सज्जन का, दुर्जन का; साधु का, असाधु का--गिर गया, एक क्षण में गिर गया! और वह आदमी सामने मिल गया। आज पहली बार उस आदमी से भय नहीं लगा। और आज पहली बार उस आदमी पर क्रोध नहीं आया। उलटा रवींद्रनाथ आगे बढ़े और उस आदमी को गले लगा लिए। और वह आदमी हंसने लगा। तो उसने कहा कि फिर, दर्शन हुआ! तो लगता है दर्शन हुआ! तो लगता है झलक मिली! अब बात ठीक हुई। अब तुम गीतांजलि के गीत गाने के योग्य हुए।

क्या हो गया उस दिन? बुरे-भले का भेद मिट गया। पदार्थ-परमात्मा का भेद मिट गया। संसार-संन्यास का भेद मिट गया। भेद मिट गया!

जिस दिन तुम्हारे भीतर अहंकार गिर जाएगा, उस दिन तुम्हारे भीतर से सारे भेद मिट जाएंगे, क्योंकि सारे भेदों का निर्माता अहंकार है। जिस दिन अहंकार गया, तुलना गई। फिर तुम तौलोगे नहीं--कौन अच्छा, कौन बुरा; कौन ऊपर, कौन नीचे।

अवल गरीबी अंग बसै, सीतल सदा सुभाव।

पावस बूटा परेम रा, जी सूं सींचो जाव।।

जैसे खेत, जैसे भूमि--जैसे ग्रीष्म की उत्तप्त भूमि बादलों की प्रतीक्षा करती है, निमंत्रण भेजती है, नेह-निमंत्रण मेघों को कि आओ, बरसो! ऐसे ही जिस दिन तुम्हारे भीतर शून्य होगा, परमात्मा को नेह-निमंत्रण मिलेगा कि आओ, बरसो! जैसे सूखी धरती बादलों को खींच लेती अपने पास, बरसा करवा लेती है, वैसे ही जो भीतर अहंकार से शून्य हो गया, वही गरीब है।

गरीब से तुम यह अर्थ मत ले लेना कि जिसके पास खाने-पीने को नहीं है, झोपड़ा नहीं है, रहने को मकान नहीं है, कपड़े-लत्ते नहीं हैं। अगर ऐसी गरीबी से परमात्मा मिलता होता तो इस देश में सभी को मिल गया

होता। ऐसी गरीबी से परमात्मा के मिलने का कोई संबंध नहीं है। और तुम अगर धन को छोड़ कर इस तरह गरीब भी हो जाओ तो यह मत सोच लेना कि परमात्मा मिल जाएगा।

एक और तरह की गरीबी है। जीसस ने उसके लिए ठीक शब्दों का उपयोग किया है--पुअर इन स्प्रिट! अंतर्तम में दरिद्र हो जाओ। ब्लैसिड आर द पुअर इन स्प्रिट। धन्यभागी हैं वे जो अंतर्तम में दरिद्र हैं--जो आध्यात्मिक अर्थों में दरिद्र हैं। और क्यों वे धन्यभागी है? ... फॉर देयर्स इ.ज द किंग्डम ऑफ गॉड। क्योंकि उनका ही है प्रभु का राज्य।

जैसे उत्तप्त गरमी की भूमि एक ही प्यास जानती है और एक ही प्रेम--कि जल बरसे! ऐसे ही अहंकार से शून्य व्यक्ति के भीतर एक अपूर्व प्यास उठती है, एक अदम्य प्यास उठती है कि परमात्मा बरसे। फिर प्रार्थना करनी नहीं होती, फिर प्रार्थना होती है--उठते, बैठते, चलते, सोते, जागते। उस प्यास का नाम ही प्रार्थना है। और जिसके भीतर वैसी प्यास वाली प्रार्थना पैदा हो गई, जल बरसता है, निश्चित बरसता है। पक्का आश्वासन है! क्योंकि सदा बरसा है। एक बार भी अपवाद नहीं हुआ। एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि जल न बरसा हो। अगर न बरसे जल तो एक ही बात का सबूत समझना कि तुम्हारे भीतर अभी वह प्यास पैदा नहीं हुई, जो निर-अहंकारिता से जन्मती है।

बहुत लोग हैं जो ईश्वर को पाना चाहते हैं, मगर इस पाने में भी अहंकार की ही दौड़ है। तो फिर ईश्वर नहीं मिलेगा। बहुत लोग हैं जो ईश्वर को भी वैसे ही पाना चाहते हैं जैसे बड़ा मकान, धन-दौलत... । जैसे उन्होंने सब चीजें मुट्ठी में कर ली हैं, वे ईश्वर को भी मुट्ठी में कर लेना चाहते हैं। वे चाहते हैं यह दावा भी कर सकें कि हमने ईश्वर को भी पा लिया।

ईश्वर को इस ढंग से नहीं पाया जाता। ईश्वर को पाया जाता है, यह भाषा ही गलत है। ईश्वर तो मिलता है, पाया नहीं जाता। और मिलता तब है जब पाने वाला खो जाता है।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाइ।।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ।।

कबीर कहते हैं कि खोजते-खोजते खोजने वाला खो गया, तब मिलन हुआ। अटपटी बात है। क्योंकि हम तो चाहेंगे कि मिलन का तो अर्थ ही यह होना चाहिए कि खोजने वाला हो। मिलन तो दो का होना चाहिए। लेकिन यह जो परमात्म-मिलन है यह दो का मिलन नहीं है; यह एक का मिलन है।

झेन फकीर कहते हैं--ऐसी ताली, जो एक हाथ से बजती है। अब एक हाथ से कोई ताली नहीं बजती। मगर एक ताली है, परम अनुभव की, जो एक हाथ से बजती है। वहां दो नहीं होते। वहां एक ही बचता है। वहां देखने वाला भी वही और दिखाई पड़ने वाला भी वही। द्रष्टा भी वही, दृश्य भी वही। वहां द्रष्टा और दृश्य एक हो जाते हैं।

कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैंः दि आब्जर्वर इ.ज दि आब्जर्वड। वहां दोनों एक हो गए हैं। वहां भक्त और भगवान अलग-अलग नहीं हैं। वहां भक्त ही भगवान है। वहां भगवान स्वयं भक्त है।

लागू हे बोला जणा, घर घर माहीं दोखी।
गुज कुणा सो कीजिए, कुण हे थारो सोखी।।

लाल कहते हैं कि यहां लाग-डांट रखने वाले लोगों से तो संसार भरा है--ईर्ष्या से, जलन से भरे हुए लोगों से। यहां दोष देखने वाले तो घर-घर हैं।

लागू हे बोला जणा, घर घर माहीं दोखी।

यहां दोष देखने वाली आंख तो सबके पास है। यहां कांटों को गिनने वाले लोग तो अनंत हैं। यहां फूलों को देखने वाले लोग बड़े मुश्किल। और परमात्मा तो परम फूल है।

इसलिए जो दोष देखने की आदत में घिरा है, वह परमात्मा से वंचित रह जाएगा। दोष देखना भी अहंकार का ही एक अंग है। हम दोष देखते क्यों हैं? हम दोष देखते इसीलिए हैं ताकि अहंकार रस ले सके कि देखो, मैं तुमसे अच्छा! तुम चोर, मैं ईमानदार! तुम असाधु, मैं साधु! हम दोषों को खूब बढ़ा-चढ़ा कर देखते हैं, क्योंकि जितना दोष बढ़ा-चढ़ा कर देखा जाए उतने ही हम अपनी आंखों में पवित्र हो जाते हैं।

तुमने कहानी तो सुनी न, अकबर ने एक दिन दरबार में एक लकीर खींच दी आकर दीवाल पर और दरबारियों से कहाः इसे बिना छुए छोटा कर दो। कोई कर न सका। फिर बीरबल उठा और उसने एक और बड़ी लकीर उस लकीर के नीचे खींच दी। उस लकीर को नहीं छुआ। हाथ नहीं लगाया। बिना छुए उसे छोटा कर दिया। एक बड़ी लकीर खींच दी।

यही हमारा गणित है--भीतरी अहंकार का गणित। हम हर आदमी में दोष देखते हैं। हम हर स्थिति में दोष देखते हैं। क्यों? क्योंकि दोष की बड़ी-बड़ी लकीरें खिंच जाएं तो खुद के दोष छोटे दिखाई पड़ने लगते हैं। दूसरे का दोष देखना हो तो हम उसे अनंत गुना बड़ा करके देखते हैं। और अगर दूसरे का गुण देखना ही पड़े मजबूरी में, कि कोई उपाय ही न हो, तो हम उसे बहुत छोटा करके देखते हैं। जितना छोटा कर सकें उतना छोटा करके देखते हैं। दूसरे का दोष देखना हो तो राई का पर्वत बनाते हैं। और दूसरे का गुण देखना हो तो पर्वत को राई बनाते हैं। यह हमारे अहंकार का ही हिसाब है। इसके भीतर हमारी अस्मिता बैठी है। वह कह रहीं है--मुझसे और अच्छा कोई कैसे हो सकता है!

फ्रेडिक नीत्शे ने लिखा कि ईश्वर नहीं है, क्योंकि मेरे रहते और कोई ईश्वर कैसे हो सकता है? बात उसने पते की कहीं है।

दुनिया में जो नास्तिक हैं, जो कहते हैं, ईश्वर नहीं है, उन्हें ईश्वर का "नहीं है" ऐसा पता नहीं चल गया है। लेकिन उनके रहते और ईश्वर हो, यह बरदाश्त के बाहर है। दुनिया में जो आस्तिक हैं, वे भी बड़े मजेदार लोग हैं, नास्तिकों से बहुत भिन्न नहीं हैं। वे भी कहते हैंः राम ईश्वर थे, क्योंकि राम अब मौजूद नहीं। मरों की प्रशंसा तो सभी करते हैं। राम की तो बात ही छोड़ दो, गांव का बुरा से बुरा आदमी भी मर जाए तो भी हम उसकी प्रशंसा करते हैं।

एक गांव में एक आदमी मरा। बड़ा दुष्ट था। राजनेता था। बड़ा हिंसक था, बड़ा बेईमान, बड़ा चोर, दगाबाज... सब गुण थे जो राजनेता में होने चाहिए। गांव में एक आदमी नहीं था जो उससे परेशान न हुआ हो; एक आदमी नहीं था जिसको उसने सताया न हो। वह मरा... लेकिन उस गांव का रिवाज था कि जब कोई मर जाए तो उसकी प्रशंसा में दो शब्द कहने चाहिए, तब उसको दफनाया जा सकता है। अब सारा गांव इकट्ठा है और कैसे उसको दफनाएं, क्योंकि कोई आदमी उसके संबंध में दो प्रशंसा के शब्द कहने को तैयार नहीं। और वह रिवाज है, बिना प्रशंसा में बोले उसे दफनाया नहीं जा सकता। फिर गांव के एक पंडित को लोगों ने कहाः अब आप ही कुछ करिए, कुछ सोचिए। कुछ दो शब्द कहिए किसी तरह से।

पंडित खड़ा हुआ और पंडित ने कहाः भाइयो, ये सज्जन जो चल बसे, ये अपने पीछे पांच भाई छोड़ गए हैं। उनके मुकाबले ये देवता थे।

तब उनको दफनाया जा सका।

तुलना--अहंकार का सूत्र है। तुम तौलते रहते हो कि अरे, पड़ोसी के मुकाबले तो मैं देवता हूं, कि फलां के मुकाबले तो मैं देवता हूं। रोज अखबार पढ़ कर आत्मा को बड़ी तृप्ति मिलती है कि देखो दंगा-फसाद, गुंडागिरी, जोर-जुल्म, व्यभिचार, बलात्कार, आगजनी, हत्या सब हो रहा है। इससे तो मैं ही भला। छोटी-मोटी रिश्वत ले लेता हूं, क्या रखा है रिश्वत में? जहां यह सब हो रहा है। अगर नरक मिलेगा तो इन सबको मिलेगा, मुझको तो जगह भी कहां मिलेगी नरक में! हमारी तो पूछ ही कहां होगी वहां! हमको तो बाहर ही निकाल देंगे, भगा ही देंगे--भाग जा! दो-चार-दस रुपये रिश्वत लिए थे, नरक चले आए। उठाया मुंह और नरक चले आए! कुछ अपनी हैसियत का भी ख्याल करो, जाओ स्वर्ग में।

रोज अखबार पढ़ कर बड़ी तृप्ति मिलती है। जिस दिन अखबार में व्यर्थ की खबरें न हों--लूट-पाट, दंगा-फसाद, आगजनी, हिंदू-मुस्लिम दंगे, हरिजनों पर बलात्कार, उनके झोपड़ों का जलाया जाना--जिस दिन इस तरह की बातें न हों, उस दिन तुम्हें बड़ी उदासी होती है कि आज तो कुछ भी खबर नहीं। अखबार को तुम ऐसे पटक देते हो कि आज कुछ भी खबर नहीं। कोई पूछे क्यों भाई, क्या खबर है, तो बड़े उदास, कहते हो कोई खबर नहीं।

जरा एक दिन सोचो तो कि अखबार आए जिसमें अच्छी ही अच्छी खबरें हों, फूलों ही फूलों की चर्चा हो, कांटों का पता ही न चले--तुम अखबार ही लेना बंद कर दोगे! इसीलिए तो अखबार बुरे आदमी के आधार पर जीते हैं। अखबारों को बुरे आदमी चलवाते हैं। अच्छे आदमी की कोई कहानी ही नहीं होती। और अच्छे आदमी की कहानी भी हो तो सुनने को कौन राजी?

तुम जरा सुनो, अच्छे आदमी की क्या कहानी होती है? किसी अच्छे आदमी की जिंदगी पर कहानी लिखो, कहानी न लिख सकोगे। किसी अच्छे आदमी की जिंदगी पर फिल्म बनाओ, फिल्म न बन सकेगी। जरा तुम सोचो तो कि राम की जिंदगी में से रावण को हटा दो, फिर रामलीला खत्म। राम की थोड़े ही है रामलीला; राम नहीं हैं उसके नायक, रावण है। क्योंकि रावण के बिना खेल खत्म हो जाता है। न चुराएगा राम की सीता को रावण... रामलीला खत्म।

एक गांव में ऐसा हो गया था। रामलीला हुई। मैनेजर से कुछ झगड़ा हो गया रावण का। रोज रामलीला के बाद जो मिठाई वगैरह बंटती थी उनको, उसको कुछ कम मिली। कुछ बातचीत हो गई। उसने कहाः देख लेंगे। मैनेजर ने सोचा भी नहीं था कि यह कहां देखेगा। उसने देखा रामलीला में। जब परदा उठा और स्वयंवर रचा गया तो सारे लोग इकट्ठे हुए हैं, सारे राजा-महाराजा, सीता को वरने आए हैं, राम-लक्ष्मण भी आए हैं, रावण भी आया है। और तभी लंका से भागा हुआ दूत आता है, और वह कहता है कि हे रावण, तू यहां क्या कर रहा है, लंका में आग लग गई, घर चल! तो रावण लंका चला जाता है आग बुझाने और तब तक राम धनुष को तोड़ देते हैं, स्वयंवर हो जाता है। सीता से विवाह हो जाता है।

आया दूत, उसने रावण को कहा कि हे रावण, लंका में आग लगी है। उसने कहाः लगी रहने दो। जनता बड़ी हैरान हुई। जनता भी हर साल देखती थी रामलीला, यह कोई... यह क्या कह रहा है कि लगी रहने दो! दूत भी बड़ा चौंका।

दूत ने कहाः सुनते हो? लंका में आग लगी है। आपका आना आवश्यक है।

उसने कहाः लंका जाए भाड़ में। इस बार सीता का स्वयंवर करके ही आऊंगा।

अब तो बड़ी घबड़ाहट फैल गई। अब कहानी आगे कैसे बढ़े? और उसने आव देखा न ताव, उठा और धनुष उठा कर, तोड़ कर, टुकड़े-मुकड़े करके फेंक दिया। धनुष तो धनुष ही था, कोई असली, कोई शिवजी का तो धनुष था नहीं। रामलीला रामलीला ही थी। और जनक से कहाः ला, कहां है तेरी सीता? निकालो सीता को! सीता को लेकर ही जाएंगे, फिर आग बुझाएंगे। और एक से दो भले!

जनक बूढ़ा आदमी था। कई दफे रामलीला में जनक का काम कर चुका था। होशियार था। उसको भी एक दफे तो कुछ समझ में नहीं आया। आंखें चकरा गईं कि अब क्या करना! और जनता है कि ताली पीट रही है। लोग जो सोए थे, जो रोज सोए रहते थे, वे भी जाग गए और खड़े हो गए। उनको लगा कि आज हो रही है रामलीला! ऐसी न देखी, न सुनी; न आंखों देखी, न कानों सुनी! गजब हो रहा है!

वह तो जनक बूढ़ा आदमी था, उसने कहाः भृत्यो, परदे गिराओ! यह तुम कहां मेरे बच्चों के खेलने का धनुष उठा लाए! शिवजी का धनुष लाओ।

परदा गिरवाया। बामुश्किल किसी तरह रावण को धक्का देकर निकाला बाहर। क्योंकि रावण, जो गांव का सबसे मजबूत आदमी था, उसको ही रावण बनाते थे। वह दो-चार को तो वैसे ही धक्का देकर गिरा दे। रामचंद्र जी और लक्ष्मण जी और जनक जी और सब लगे, बामुश्किल उसको पीछे घसीट कर ले गए कि भई, तू कैसा आदमी! मैनेजर से तेरा झगड़ा हुआ तो रामलीला तो खराब मत कर। ज्यादा मिठाई ले लेना। सबकी मिठाई आज तू ही ले लेना, मगर सीता को तो मत ले जा ऐसे! नहीं तो फिर कल क्या होगा?

तत्क्षण दूसरे आदमी को रावण बनाया, क्योंकि उसका क्या भरोसा, वह फिर गड़बड़ करने लगे!

रावण असली नायक है। ... रामलीला को असल में रावण-लीला कहनी चाहिए। राम तो बेचारे दर्शक मात्र हैं। अच्छे आदमी की कोई कहानी नहीं होती। और अगर अच्छे आदमी की भी कोई कहानी होती है तो वह बुरे आदमियों के कारण होती है। अच्छे आदमी की जिंदगी में कुछ लिखावट नहीं होती--कोरा कागज होता है। कोरे कागज को पढ़ोगे तो क्या पढ़ोगे?

बुरे आदमी की जिंदगी में बहुत लिखावट होती है, बहुत इरछी-तिरछी, बहुत उलझी, बहुत दांव-पेंच वाली। तुम बुरे आदमी को देख कर खुश होते हो, अच्छे आदमी को देख कर उदास हो जाते हो। इस पर ध्यान करना। अगर कोई तुमसे कहे कि फलां आदमी बड़ा साधु है और तुम फौरन कहोगेः अरे, वह क्या साधु होगा! देख लिए सब साधु, वह साधु नहीं है! तुम हजार प्रमाण इकट्ठे करोगे कि क्यों वह साधु नहीं है। अगर कोई तुमसे कहे कि फलां आदमी चोर है तो तुम बिल्कुल एकदम राजी हो जाते हो, एक भी प्रमाण नहीं मांगते। तुम कहते हो कि होना ही चाहिए। मुझे पहले ही शक था। मुझे संदेह तो था ही, आज तुमने समर्थन कर दिया। अगर कोई तुमसे कहे कि फलां आदमी बड़ी सुंदर बांसुरी बजाता है, तुम कहोगेः अरे, वह क्या खाक बांसुरी बजाएगा! जमाने भर का झूठ बोलने वाला, चोर, बेईमान! अनुभव से कह रहे हैं, वह क्या खाक बांसुरी बजाएगा!

लेकिन इससे उलटी बात कहीं तुमने सुनी है कि कोई आदमी कहे कि वह आदमी बड़ा चोर है, बड़ा बेईमान है--तुम कहोगे कि नहीं-नहीं, वह चोर-बेईमान कैसे हो सकता है, इतनी अच्छी बांसुरी बजाता है! यह कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता है। इतनी अच्छी बांसुरी बजाने वाला कैसे चोर, कैसे बेईमान होगा?

नहीं; ऐसी बात नहीं सुनने में आएगी। कौन कहता है ऐसी बात? जिस दिन लोग ऐसी बात कहने लगेंगे, यह पृथ्वी स्वर्ग होगी। यहां हम बुरे को बढ़ाते हैं, अच्छे को गिराते हैं, क्योंकि इसी में हमारे अहंकार की तृप्ति है।

लागू हे बोला जणा...

यहां जलन-ईर्ष्या से भरे हुए लोग तो जगह-जगह हैं।

... घर घर माहीं दोखी।

और दोष देखने वाले लोग घर-घर बैठे हुए हैं, उनकी कोई कमी नहीं है।

आत्माएं गिरवी रख
सुविधाएं ले आए।
लोथड़ा कलेजे का, वनबिलाव चीलों में,
गंगा की गोदी में या कि ताल-झीलों में,
क्वांरी मां जैसे
अपना बच्चा दे आए।
देकर के जन्म जन्म के कर्जे ब्याज सहित,
मांग रहे यौवन, कुछ वय भोरी राज सहित।
यज्ञ फल उन्हें दे
हम समिधाएं ले आए।
उजालों भरी आंखें, मुंह पर पट्टी बांधे,
अपनों पर अपने ही आज निशाने साधे।
शांति वनों से लौटे
दुविधाएं ले आए।
आत्माएं गिरवी रख
सुविधाएं ले आए।

लोगों ने आत्माएं बेच दी हैं--छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए! जीवन का पाप क्या है? छोटी-छोटी सुविधाओं के लिए आत्माओं को बेच देना। समझौता एकमात्र पाप है। किसी भी कीमत पर आत्मा को बेचना पाप है। और किसी भी कीमत पर आत्मा को न बेचना पुण्य है।

संन्यास की यही मेरी व्याख्या है कि जो आदमी आत्मा को बेचने को राजी नहीं--चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े; चाहे लोग उसे पापी कहें, दुश्चरित्र कहें; चाहे लोग उसे सब तरह से त्याग दें; चाहे लोग उसे सब तरह से बहिष्कृत कर दें; चाहे लोग पत्थर मारें और सूली चढ़ा दें--मगर सुविधाओं के लिए जो अपनी आत्मा न बेचे, वह पुण्यात्मा है।

लेकिन इतनी सामर्थ्य तो उसी में हो सकती है जिसने अपने भीतर शून्य देखा हो। शून्य ही इतना सहने की क्षमता रख सकता है। अहंकार की सहने की क्षमता ज्यादा नहीं होती। होती ही नहीं। ज्यादा तो क्या, कम भी नहीं होती।

देखो, सोचो, समझो, सुनो, गुनो और जानो!
इसको, उसको संभव हो निज को पहचानो!

लेकिन अपना चेहरा जैसा है रहने दो!
जीवन की धारा में अपने को बहने दो!

तुम जो कुछ हो वही रहोगे, मेरी मानो!
वैसे तुम चेतन हो, तुम प्रबुद्ध ज्ञानी हो!
तुम समर्थ, तुम कर्ता, अतिशय अभिमानी हो!

लेकिन अचरज इतना, तुम कितने भोले हो!
ऊपर से ठोस दिखो, अंदर से पोले हो!

बन कर मिट जाने की एक तुम कहानी हो!
पल में रो देते हो, पल में हंस पड़ते हो!
अपने में रम कर तुम अपने से लड़ते हो!

पर यह सब तुम करते--इस पर मुझको शक है!
दर्शन, मीमांसा--यह फुरसत की बकझक हैं!

जमने की कोशिश में तुम रोज उखड़ते हो!
थोड़ी सी घुटन और थोड़ी रंगीनी में,
चुटकी भर मिरचे में, मुट्ठी भर चीनी में,

जिंदगी तुम्हारी सीमित है, इतना सच है;
इससे जो कुछ ज्यादा, वह सब तो लालच है;

दोस्त उम्र कटने दो इस तमाशबीनी में!
धोखा है प्रेम-बैर, इसको तुम मत ठानो!
कड़वा या मीठा, रस तो है छक कर छानो,

चलने का अंत नहीं, दिशा-ज्ञान कच्चा है!
भ्रमने का मारग ही सीधा है, सच्चा है!

जब-जब थक कर उलझो, तब-तब लंबी तानो!

ऐसा समझाने वाले चारों तरफ मौजूद हैं।
चलने का अंत नहीं, दिशा-ज्ञान कच्चा है!

भ्रमने का मारग ही सीधा है, सच्चा है!

छोड़ो सत्य की चिंता। जब सारे लोग ही भ्रमित हो रहे तो तुम भी उन्हीं के साथ चलते रहो--भेड़चाल... भीड़ में बने रहो। भीड़ के साथ सुरक्षा है। भीड़ से हट कर चले तो भीड़ नाराज होती है। भीड़ व्यक्तियों को बरदाश्त नहीं करती, क्योंकि व्यक्तित्व विद्रोह है। भीड़ चाहती है आज्ञा मानो उसकी। भीड़ चाहती है तुम्हारे पास कोई आत्मा न हो।

ख्याल करना, भीड़ अहंकार तो देती है तुम्हें, आत्मा छीन लेती है। भीड़ कहती हैः अहा, कितने सच्चरित्र! भीड़ कहती हैः कैसे पवित्र! भीड़ कहती हैः कैसे ज्ञानवान! अगर भीड़ की मानो तो भीड़ अहंकार को खूब सम्मानित करती है। और अगर भीड़ की न मानो तो भीड़ दुर्जन कहती है, दुश्चरित्र कहती है; अहंकार को अपमानित करती है। वह भी तरकीब है भीड़ की।

भीड़ के पास एक ही तरकीब है अहंकार को फुसलाए, बढ़ाए; या अहंकार को काटे, छेदे, गिराए। जो आदमी अपना अहंकार बचाना चाहता है वह भीड़ की मान कर चलता है। जो आदमी अपना अहंकार खंडित होना नहीं देखना चाहता, वह सब तरह के समझौते कर लेता है। और कौन अहंकार का खंडित होना देखना चाहता है? दुर्जन भी नहीं चाहता कि उसका अपमान हो। झूठ बोलने वाला भी लोगों को यही प्रतीति कराए रखता है कि मैं सच बोलता हूं। झूठ के भी पैर नहीं होते, सच के ही पैर उधार लेकर चलता है। झूठ भी सच का मुखौटा ओढ़ता है।

पापी भी पुण्यात्मा बनने की घोषणाएं करते हैं और भोगी साधुओं के आवरण बना लेते हैं। चाहे उनके भोग की आकांक्षा स्वर्ग में ही क्यों न हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? मगर भोग की आकांक्षा ही साधुता का आवरण बन जाती है।

भीड़ एक ही बात चाहती है कि तुम्हारे पास निजता न हो, आत्मा न हो। भीड़ चाहती है तुम सोए रहो। तुम सोए रहो, भीड़ की मानते रहो। भीड़ जैसी जीती है वैसी छाया की तरह उसका अनुगमन करते रहो--तुम भले आदमी हो, तुम सज्जन हो।

तुम देखते नहीं, जीसस जैसे आदमी को भीड़ ने सूली दे दी! महात्मा नहीं कहा, सूली दी। सुकरात को जहर पिलाया, महात्मा नहीं कहा। बुद्ध को पत्थर मारे। महावीर के कानों में सलाखें ठोक दीं, महात्मा नहीं कहा। और महावीर के समय में पंडित थे, पुरोहित थे--जो महात्मा थे। और जीसस को जिन लोगों ने सूली दी, बड़े-बड़े रबाई, बड़े पुरोहित, वे सम्मानित थे, वे आदृत थे।

भीड़ दो कौड़ी के लोगों का तो आदर करती है, लेकिन जिनकी आत्मा प्रकट हुई है और जिनका अहंकार विलीन हुआ है, उनको नष्ट करना चाहती है, क्योंकि उनकी मौजूदगी भीड़ के लिए खतरा है। भीड़ के लिए सबसे बड़ा खतरा है आत्मवान व्यक्ति!

इसलिए ख्याल रखो, निंदा करने वाले बहुत मिलेंगे। तुम्हारा सम्मान नहीं करेगा कोई। अगर तुम सच्चे हो, अगर तुम चले हो सत्य की तलाश में, तो तुम्हें बहुत कष्ट झेलने होंगे। दुर्गम है मार्ग।

गुज कुणा सो कीजिए, कुण हे थारो सोखी।

और जिंदगी इतनी अजीब है, लाल कहते हैं कि यहां अपने हृदय की बात किससे कहो? यहां कोई संगी-साथी भी नहीं है। जिस दिन तुमने अपनी आत्मा की घोषणा की, सब तुम्हारे दुश्मन हैं। कौन तुम्हारी गुप्त बात सुनेगा? कौन तुम्हारे अंतर्तम का संवाद सुनेगा? थोड़े से ही लोग, बहुत चुने हुए लोग, अंगुलियों पर गिने जा

सकें इतने लोग--तुम्हारी बात सुनने को राजी होंगे। खतरा ले सकें जो, जोखिम उठा सकें जो, वे थोड़े से लोग सत्य की बात सुनेंगे। शेष सब तो असत्य की चादर ओढ़ कर ताने सोए रहेंगे।

जोबन हा जद जतन हा, काया पड़ी बुढ़ांण।

सूकी लकड़ी न लुलै, किस बिध निकसे काण।।

लाल कहते हैंः और जल्दी करो, क्योंकि जल्दी ही बुढ़ापा आ जाएगा। देह सूख जाएगी जैसे लकड़ी सूख गई। और सूखी लकड़ी को झुकाना मुश्किल हो जाता है। जल्दी करो! समय बीता जाता है। जब जीवन में लोच है, जब जीवन युवा है और जब चेतना बूढ़ी नहीं हो गई है, तब क्रांति को घटित कर लो। तब रूपांतरण कर लो।

रूपांतरण का समय युवावस्था है। जितने जल्दी हो सके, उतने जल्दी अहंकार को छोड़ दो और आत्मा को पकड़ लो। भीड़ को छोड़ दो और स्वयं के दीये के पीछे चल पड़ो। अप्प दीपो भव! अपने दीये बन जाओ।

यह जितनी जल्दी हो सके, क्योंकि लोच धीरे-धीरे खो जाती है। बच्चों में सर्वाधिक लोच होती है, ब.ूढों में सबसे कम लोच रह जाती है। मगर वे बूढ़े जो अपनी चेतना को सजग रखते हैं, उनमें उतनी ही लोच रहती है जितनी बच्चों में। जो अपनी चेतना को अतीत से विमुक्त रखते हैं; जो रोज-रोज अतीत के प्रति मरते हैं, मरते जाते हैं; जो अतीत के कूड़े-कर्कट को इकट्ठा नहीं करते; जो एक अर्थों में जवान ही बने रहते हैं, एक अर्थ में युवा ही बने रहते हैं; जिनकी चेतना के दर्पण पर धूल नहीं जमती समय की--वे कभी भी मुड़ सकते हैं।

पर साधारणतः लाल ठीक कहते हैंः

जोबन हा जद जतन हा, काया पड़ी बुढांण।

जैसे-जैसे बुढ़ापा आएगा, सूखी लकड़ी की तरह हो जाओगे, सख्त--झुकना मुश्किल हो जाएगा। जैसे-जैसे बुढ़ापा आएगा वैसे-वैसे पुरुषार्थ भी कम हो जाएगा। वैसे-वैसे संकल्प की क्षमता भी क्षीण हो जाएगी। वैसे-वैसे साहस करना भी मुश्किल हो जाएगा, जोखिम उठानी मुश्किल हो जाएगी।

लोग मुझसे पूछते हैं कि आप जवानों को क्यों संन्यास देते हैं? जवान ही सदा से संन्यासी होता रहा है। फिर जवान चाहे पचहत्तर साल का और चाहे पच्चीस साल का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जवान ही संन्यासी होता रहा है। बूढ़ा तो संन्यासी हो ही नहीं सकता। फिर बूढ़ा चाहे पच्चीस साल का हो और चाहे पचहत्तर साल का; उम्र से बुढ़ापे का कोई संबंध नहीं है। कुछ लोग तो पच्चीस साल में ही ऐसे जड़ हो जाते हैं कि उनकी लोच खो जाती है। पच्चीस साल में ही निष्कर्षों पर पहुंच जाते हैं। पच्चीस साल में ही सिद्धांतों से जकड़ जाते हैं। कोई हिंदू हो गया, कोई मुसलमान, कोई जैन, कोई ईसाई; इसका अर्थ है, ये सब बूढ़े हो गए। इनकी खोज समाप्त हो गई। बिना खोजे मान कर बैठ गए। जिसने भी विश्वास किया वह बूढ़ा हो गया।

खोजी विश्वास नहीं करता, जब तक जान न ले। जानने की सतत चेष्टा करता है। और जानने के लिए जिन रास्तों पर चलना हो चलता है और जो जोखिम उठानी हो उठाता है। और जानने के लिए जो कीमत चुकानी हो चुकाता है।

लेकिन यहां तो पैदा होते से ही लोग जैन हो गए, हिंदू हो गए, मुसलमान हो गए। मां-बाप ने किसी को हिंदू बना दिया, किसी को मुसलमान बना दिया। बूढ़े हो गए। पैदा होते से ही बूढ़े हो गए। खोज का समय ही न मिला। अन्वेषण की सुविधा ही न मिली। जिज्ञासा कभी की ही नहीं। जिज्ञासा के पहले ही उत्तर पकड़ लिए। प्रश्न पूछे ही नहीं।

यह हालत वैसी है जैसे स्कूल में बच्चे चोरी करते हैं। उनको सवाल देते हैं, वे गणित की किताब को उलटा कर पीछे उत्तर देख लेते हैं। उत्तर तो लिख देंगे वे लेकिन उत्तर तक कैसे पहुंचे, वहां अटक हो जाएगी, वहां मुश्किल हो जाएगी। प्रश्न भी उन्हें मालूम है, उत्तर भी उन्हें मालूम है; लेकिन प्रश्न और उत्तर को जोड़ने वाला सेतु उनके पास नहीं है।

वही हालत है लोगों की। किताब उलट कर उत्तर ले लिया। गीता उलट कर उत्तर देख लिया। कुरान उलट कर उत्तर देख लिया। उत्तर पकड़ कर बैठ गए। लेकिन तुम जब तक उत्तर तक न पहुंचो तब तक कोई उत्तर तुम्हारा उत्तर नहीं है। और पराए, बासे उत्तर काम नहीं आते। दूसरे का सत्य तुम्हारे लिए असत्य है। तुम्हारा सत्य ही केवल तुम्हारे लिए सत्य होता है।

सूकी लकड़ी न लुलै, किस बिध निकसे काण।

और एक दफा लकड़ी सूख गई, उसने निष्कर्ष ले लिए, नतीजे ले लिए, सिद्धांत पकड़ लिए, पक्षपाती हो गए--फिर बहुत मुश्किल है। फिर झुकाना असंभव हो जाएगा। और फिर जो तिरछापन रह जाएगा लकड़ी में उसको सीधा करना कैसे संभव हो? लकड़ी टूट जाए, लेकिन झुके नहीं।

लोच जिंदा रखो!

धार्मिक व्यक्ति में लोच होती है। अधार्मिक व्यक्ति में मतांधता होती है। अधार्मिक व्यक्ति सूखा होता है, बिल्कुल सूखा होता है। उसमें जलधार होती ही नहीं, क्योंकि उसमें प्रेम की धारा ही नहीं होती। लेकिन यही अधार्मिक लोग धार्मिक समझे जाते हैं। जो मंदिरों को जलाते हैं और मस्जिदों में आग लगाते हैं, ये अधार्मिक लोग हैं। इनको धार्मिक मत समझ लेना। जो जेहाद को चले जाते हैं, जो धर्म-युद्ध खड़े करते हैं--ये धार्मिक लोग नहीं हैं। इनसे ज्यादा अधार्मिक और कौन होगा?

तुम्हें अगर अधार्मिक लोग देखने हो तो मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में, गिरजों में मिलेंगे। वहां चले जाना। वहां देख लेना, कौन-कौन अधार्मिक आदमी है। जिस गांव के अधार्मिक आदमियों की तुम्हें गणना करनी हो, उस गांव के मंदिर-मस्जिदें में जाकर हिसाब लगा लेना। तुम्हें पक्का पता चल जाएगा कितने लोग अधार्मिक हैं।

धार्मिक व्यक्ति खोज करता है, मानता नहीं। जिज्ञासा करता है। जरूर एक दिन श्रद्धा को उपलब्ध होता है, लेकिन उसकी श्रद्धा संदेह के विपरीत नहीं होती, संदेह से छन-छन कर आती है। उसकी श्रद्धा संदेह को दबा कर नहीं आती, संदेह के निखार से आती है।

संदेह बड़ा शुभ है। संदेह अदभुत कीमिया है। संदेह की क्षमता धन्यभाग है। जो संदेह करना जानता है वह एक दिन श्रद्धा पर पहुंच जाएगा। न तो आस्तिक संदेह करते, न नास्तिक संदेह करते। एक ने मान लिया ईश्वर है; एक ने मान लिया ईश्वर नहीं है। दोनों ने खोजा नहीं। धार्मिक न तो आस्तिक होता है, न नास्तिक होता है। धार्मिक तो सिर्फ खोजी होता है, जिज्ञासु होता है, मुमुक्षु होता है। वह कहता हैः मैं खोज पर निकला हूं। और पूरे संदेह का उपयोग करूंगा, ताकि कोई गलत चीज पकड़ में न आ जाए।

संदेह तो ऐसे है जैसे सोने को कसने का पत्थर होता है। सोने को कसौटी पर कसते हैं। पक्का पता चल जाता है कि असली है या नकली है। ऐसे ही संदेह पर कसता है खोजी--अपनी हर खोज को, अपनी हर अनुभूति को। और जो संदेह पर खरी उतरती है, जिसको संदेह इनकार नहीं कर पाता, जिसको संदेह को भी स्वीकार करना पड़ता है--वही श्रद्धा है। संदेह भी जिसके समर्थन में खड़ा होता है, वही श्रद्धा है।

श्रद्धा जीवन की परम दशा है। मगर संदेह की सीढ़ियों से पहुंचा जाता है उस मंदिर तक।

लाय लगी घर आपणे, घट भीतर होली।

शील समंद में न्हाइए, जहं हंसा टोली।।

होना तो क्या था और हो क्या गया है! होना तो यह था कि तुम्हारे भीतर आनंद का सागर होता; शांति का, शील का सागर होता--कि तुम उसमें नहाते, कि तुम उसमें डुबकी मारते, कि हंसों की टोली में बैठते, कि परमहंसों के साथ उड़ते! होना तो यह था, मगर हो क्या गया?

लाय लगी घर आपणे...

आग लगी है घर में। कहां की शीतलता? कहां का आनंद? सिवाय दुख, सिवाय पीड़ा के हमारा अनुभव ही कुछ और नहीं।

... घट भीतर होली।

होली जल रही है भीतर! तुम जल रहे हो उस होली में। होना तो क्या था! होना था स्वर्ग! होना था खिलते मोक्ष के फूल! और हो क्या रहा है? नरक की आग जल रही है!

और कौर जिम्मेवार है? सिवाय तुम्हारे और कोई जिम्मेवार नहीं है। यह तुम्हारा ही चुनाव है। तुमने समझौते कर लिए हैं। तुम सस्ती बातों के लिए महंगी बातें गंवा बैठे। तुमने कचरा इकट्ठा कर लिया और आत्मा बेच दी।

स्वामी शिव साधक गुरु, अब इक बात कहूं।

कूंकर हो हम आवणू, बिच में लागी दूं।।

लाल कहते हैं कि एक प्रश्न पूछूं, एक प्रश्न उठाऊं?

कूंकर हो हम आवणू...

इतने आनंद के स्वभाव में, ऐसे सच्चिदानंद रूप में।

... बिच में लागी दूं।

यह आग बीच में कैसे लग गई? जहां परमानंद होना चाहिए वहां आग कैसे बीच में लग गई?

किसी और ने नहीं लगा दी है। कोई और लगा भी नहीं सकता। यह तुम्हारा ही दायित्व है। यह तुम्हारा ही निर्णय है। तुमने गलत चुन लिया है। चुनाव की तुम्हें स्वतंत्रता है।

लेकिन कुछ लोग गलत को चुनने में रस पाते हैं। क्यों? कुछ क्यों, अधिक लोग गलत को चुनने में रस पाते हैं। क्यों? क्योंकि अहंकार गलत से पुष्ट होता है। राजनीति चुनोगे तुम, नीति न चुनोगे। क्योंकि राजनीति से अहंकार पुष्ट होगा और नीति तो अहंकार को ले जाएगी बहा कर, जैसे बाढ़ में कूड़ा-कर्कट बह जाता है। धन की दौड़ चुनोगे तुम, क्योंकि धन की दौड़ में अहंकार मजबूत होता चलेगा। ध्यान की दौड़ नहीं चुनोगे तुम, क्योंकि ध्यान में तो शून्य हो जाएगा।

कौन मिटना चाहता है! सब बचना चाहते हैं। और पता नहीं तुम्हें कि तुम मिटना भी चाहो तो मिट नहीं सकते। तुम शाश्वत हो! तुम सनातन हो! तुम नित्य हो! मृत्युएं आती रही हैं, होती रही हैं, जाती रही हैं, तुम्हारा कुछ बिगड़ा नहीं। तुम जैसे के तैसे हो--जस के तस! तुम में रत्ती भर भेद नहीं पड़ा। लेकिन तुम्हें अपने स्वभाव का बोध ही नहीं है।

और बचपन से ही तुम्हें जो शिक्षाएं दी जाती हैं, प्रायमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक, वे सारी शिक्षाएं तुम्हारे अहंकार को ही परिपुष्ट करने के उपाय हैं। उन सबके द्वारा तुम्हारे अहंकार की दौड़ को ही

उकसाया जाता है। तुम्हारी आग में घी डाला जाता है। तुम्हारे मां-बाप भी कहते हैं कि देखो, कुल की लाज रखना। कुलीन हो तुम! अपनी वंश-परंपरा का ख्याल रखना कि तुम कौन हो, किसके बेटे हो!

यह सब अहंकार की भाषा है। नहीं तो सब मिट्टी है। कहां की कुलीनता और कहां के कुल! सब मिट्टी में पड़े हैं और मिट्टी में मिल गए हैं। बड़े भी और छोटे भी, प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध भी। जो बहुत उचके-कूदे थे जगत में, वे भी मिट्टी में गिर गए हैं। जो चुपचाप रहे थे वे भी मिट्टी में गिर गए हैं।

नहीं; लेकिन हम चारों तरफ एक हवा पैदा करते हैं--प्रतिष्ठा, सम्मान! हम अच्छे को भी बुरे का सहारा देकर खड़ा करना चाहते हैं। हम कहते हैं झूठ मत बोलना, क्योंकि हमारे कुल में कभी कोई झूठ नहीं बोला। रघुकुल रीति सदा चलि आई! --अहंकार है हमारे कुल का कि हम झूठ नहीं बोले। सत्य बुलवाने के लिए भी अहंकार का सहारा ले रहे हो। और अहंकार का सहारा लेकर जो सत्य बोला जाएगा वह झूठ से बदतर हो जाता है। उससे झूठ ही अच्छा था; कम से कम सरल तो होता, सीधा तो होता।

हम कहते हैं कि सादगी से रहना, क्योंकि सादगी को ही समादर मिलता है। अब ये जरा मजे की बातें सुनो। सादगी से रहना, क्योंकि सादगी को समादर मिलता है। समादर पाने के लिए जो सादगी से रहेगा, यह आदमी सादा है? यह आदमी तो बड़ा तिरछा है। यह आदमी तो बहुत ही उलटा है।

हम कहते हैं कि विद्वान को वहां भी आदर मिलता है जहां सम्राटों को भी आदर नहीं मिलता। इसलिए विद्या को अर्जित करो। विद्वान की तो सर्वत्र पूजा होती है। सम्राट की तो सीमा होती है। उसका जितना राज्य है उतने में पूजा होगी; राज्य के बाहर गया कि दो कौड़ी का है। लेकिन विद्वान सर्वत्र पूजा जाता है। तो विद्वान बनो! ... मगर नजर है पूजा पर।

समझाते हैं हम लोगों कोः त्यागी बनो, व्रती बनो, क्योंकि त्यागी और व्रती को देखो कितना सम्मान मिलता है! हजारों लोग उसके चरणों में झुकते हैं! मगर अगर चरणों में झुकाने के लिए ही कोई त्यागी-व्रती बना है... और अक्सर सौ में निन्यानबे त्यागी-व्रती लोगों को चरणों में झुकाने के लिए ही बने हैं... तो यह त्याग-व्रत क्या हुआ? फिर चाहे ये पहलवान बन जाते, चाहे मुनि बन जाते, कुछ भेद नहीं है। मोहम्मद अली बने कि मुनि बने, एक ही बात है। कोई भेद नहीं है। क्योंकि नजर तो एक है। नजरिया एक है। आधारशिला एक है।

हम लोगों को समझाते हैं कि बना जाओ मंदिर, नाम रह जाएगा। लोग मंदिर भी बना देते हैं ताकि नाम रह जाए। मगर नाम रह जाने के लिए मंदिर बनता है!

अब तुम देखते हो, देश में कितने बिरला मंदिर हैं! अब यह बड़े मजे की बात है। यह पहली दफा हुआ है भारत में। मंदिर तो पहले भी बनते रहे, लेकिन कोई कृष्ण का मंदिर होता था, कोई राम का मंदिर होता था। बिरला मंदिर पहली घटना है! पता ही नहीं चलता कि राम का है कि कृष्ण का है कि किसका है--बिरला मंदिर है! तो बिरला ने खूब मंदिर बना दिए। मंदिर ही मंदिर खड़े कर दिए। मंदिर बना जाओ, नाम रह जाएगा! मगर नाम की आकांक्षा है। तो यह सब झूठ हो जाता है।

हमारी पूरी की पूरी शिक्षा, व्यवस्था, हमारी पूरी संस्कृति और संस्कार और हमारी पूरी सभ्यता रुग्ण है। क्योंकि इस सबके केंद्र में खड़ा हुआ एक ही तत्व है अहंकार का; सब तरह उसको समर्थन देना है।

स्वामी शिव साधक गुरु, अब इक बात कहूं।

कूंकर हो हम आवणू, बिच में लागी दूं।।

हम किस परम लोक से आ रहे हैं! परमात्मा हमारे भीतर बसा है, फिर ये आग की लपटें क्यों जल रही हैं, क्या मैं पूछूं?

बस प्रश्न उठा कर ही छोड़ देते हैं लाल, उत्तर नहीं देते। ठीक किया, उत्तर क्या देना! तुम्हीं सोचना। तुम्हीं सोचना कि तुम्हारे जीवन में आग क्यों लगी है।

यह सूत्र अदभुत है। सिर्फ प्रश्न ही उठाया है, उत्तर नहीं दिया। परम ज्ञानी केवल प्रश्न ही उठा देते हैं, उत्तर नहीं देते। उत्तर तो तुम्हीं को खोजना होगा। उत्तर तो तुम्हारा होगा तभी उत्तर होगा।

करमां सू काला भया, दीसो दूं दाध्या।

देखो तो तुम्हारे कर्म कैसे काले हो गए हैं! और काले कर्म तुम्हें काला कर गए हैं।

दीसो दूं दाध्या...

और दावानल की तरह तुम भीतर जल रहे हो।

इक सुमरण सामूं करो, जद पड़सी लाधा।

लेकिन अगर तुम एक परमात्मा को याद कर लो तो एकदम जल-वर्षा हो जाए, आग बुझ जाए, कालिख धुल जाए। फिर लाभ ही लाभ है--असली लाभ! फिर तृप्ति ही तृप्ति है!

करमां सूं काला भया, दीसो दूं दाध्या।

इक सुमरण सामूं करो, जद पड़सी लाधा।।

एक स्मरण, सिर्फ एक छोटी सी घटना! एक छोटी सी चिनगारी और जीवन और का और हो जाता है। और उस चिनगारी का नाम हैः सुमरण! महावीर ने उसे कहा हैः विवेक। बुद्ध ने उसे कहा हैः सम्मासति। कबीर और नानक ने उसे कहा हैः सुरति। उसी का लाल कह रहे हैंः सुमरण। एक स्मरण कर लो कि मैं कौन हूं?

रमण महर्षि के पास जो भी जाता था, अनेक-अनेक तरह के लोग अनेक-अनेक तरह के प्रश्न लेकर जाते थे। मगर उनका उत्तर सदा एक था, वे कहते हैं कि शांत बैठ कर एक प्रश्न पूछो अपने से--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? कई बार लोगों ने कहा भी, कि अलग-अलग हम प्रश्न लाते हैं मगर आप उत्तर एक ही देते हैं? सब बीमारों को एक ही दवा? तो वे कहतेः यह रामबाण दवा है। यह सब बीमारियों पर लागू होती है।

किसी की बीमारी क्रोध है और किसी की बीमारी लोभ है और किसी की बीमारी काम है और किसी की बीमारी कुछ और है। बीमारियां तो बहुत हैं। बीमारियां तो अनंत हैं। लेकिन इलाज एक है। उसे ध्यान कहो, सुरति कहो, स्मरण कहो... जो शब्द तुम्हें प्रीतिकर लगे। मगर अर्थ तो सभी शब्दों का एक है कि किसी तरह शांत बैठ कर स्मरण करो कि मैं कौन हूं।

और ध्यान रखना, स्मरण का यह अर्थ नहीं है कि तुम भीतर बैठ कर यंत्रवत दोहराने लगो--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? उससे कुछ भी न होगा। रमण महर्षि के आश्रम में यही चल रहा है अब। लोग यंत्रवत बैठे हुए हैं और दोहरा रहे हैं कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? रमण महर्षि ने कहा थाः यह भाव होना चाहिए, कि मैं कौन हूं! शब्दों में दोहराने से क्या होगा? शब्द तो खोपड़ी में गूंजते रहेंगे, शोरगुल मचाते रहेंगे। उनसे शांति भी नहीं होगी। उनसे अड़चन ही पड़ेगी। यह तो निःशब्द भाव होना चाहिए कि मैं कौन हूं।

मुझे तुमसे कहना पड़ रहा है तो शब्दों का उपयोग कर रहा हूं। लेकिन तुम जब अपने भीतर बैठो तो तुम्हें शब्दों की कोई उपयोग करने की जरूरत नहीं। तुम किसी से कुछ कह थोड़े ही रहे हो। यह तो भाव की दशा हो--सघन भाव, कि मैं कौन हूं! यह भाव इतना एकाग्र हो जाए कि और सारी चीजें गौण हो जाएं, सारा अस्तित्व खो जाए। संसार कहीं दूर छूट जाए पीछे हजारों मील दूर! फिर धीरे-धीरे मन के विचार भी दूर छूट जाएं--हजारों मील दूर! बस यह एक भाव ही रह जाए।

सूफी फकीर फरीद से एक आदमी ने पूछाः ईश्वर से कैसे मिलूं? फरीद ने कहाः आ, मौका लगा तो मिला दूं। वह आदमी थोड़ा डरा भी। इतनी तैयारी करके आया भी न था। जिज्ञासा ही करने आया था, दार्शनिक जिज्ञासा थी। और ये सज्जन मिलाने ही चले! मगर अब नहीं भी न कर सका। अब इज्जत का भी सवाल था। थोड़ा झिझकने भी लगा, कहा कि कल आऊंगा। फरीद ने कहाः कल का क्या भरोसा? मैं रहूं न रहूं। और कल पर क्यों टालना? जब आज सवाल पूछा है तो आज ही उत्तर होगा। चल मेरे साथ।

उस आदमी ने कहाः लेकिन कहीं जाने की जरूरत क्या, यहीं बैठ कर इसी झाड़ के नीचे उत्तर दे दें।

फरीद ने कहाः यहां मैं उतर देता ही नहीं, मैं तो नदी पर ही उत्तर देता हूं।

डरते-डरते वह आदमी फरीद के साथ नदी पर गया। फरीद ने कहाः उतार कपड़े। उसने कहाः कपड़े पहने उत्तर नहीं देंगे? कहा कि नहीं, पहले नदी में डुबकी मार, स्नान कर, पवित्र हो ले। बस मौका भर मिल जाए मुझे एक। ऐसा उत्तर दूंगा कि सदा के लिए बस फिर कभी नहीं पूछेगा।

आदमी डरा तो बहुत, लेकिन अब भाग भी नहीं सकता। अब यह आदमी सामने खड़ा है, यह भागने भी नहीं देगा। इतना आसान दिखता भी नहीं। और अब यह इसी में सार है। हुज्जत करने में कोई सार भी नहीं। इसी में सार है। और यह मस्त-तड़ंग फकीर था फरीद, कि अगर भागा-भूगी की तो पकड़ कर फेंकेगा पानी में और उसमें हाथ-पैर टूट जाएं!

चुपचाप कपड़े उतार कर उस आदमी ने डुबकी मारी। जैसे ही डुबकी मारी, फरीद उसके ऊपर सवार हो गया और उसको पानी में दबा लिया। और दबाए जाए... और वह तड़पे मछली की तरह और फरीद दबाए जाए। सोचा होगा उस आदमी ने--गए काम से! चले थे राम की तलाश में, यह अपनी जिंदगी गई। किस असमय में इस आदमी से सवाल पूछ लिया! ये सब सवाल उठे होंगे, एक क्षण में सब दौड़ गई होंगी बातें--कि अब भूल कर किसी से न पूछूंगा, सब सोचा होगा। मगर अभी तो सवाल यह है कि कैसे निकलो बाहर। कैसे इसका पिंड छूटे? और यह आदमी मजबूत है और दबाए जा रहा है, दबाए जा रहा है।

लेकिन जब मौत की घड़ी आ जाए, तो कमजोर आदमी भी बड़ा ताकतवर हो जाता है। सारी शक्ति उठ आती है--चुनौती! उसने भी सारी ताकत लगा दी। था तो दुबला-पतला, जैसे कि दार्शनिक होते हैं आमतौर से। था तो दुबला-पतला लेकिन उसने भी सारी ताकत लगा दी। इतनी ताकत कि उसने इस मस्त-तड़ंग फकीर को फेंक दिया और निकल आया पानी के बाहर। हांफ रहा था। आंखें लाल हो गई थीं। फरीद ने पूछा कि एक बात पूछूं? उसने कहा कि अब बिल्कुल न बात हमें पूछनी... आपसे हमें बात ही नहीं करनी है।

नहीं, उसने कहा कि हम कोई उत्तर देंगे नहीं; यह उत्तर था। तो एक सिर्फ सवाल पूछना है कि जब मैंने तुझे दबा लिया पानी में तो क्या हुआ? उसने कहा कि क्या होना था, जान निकलने लगी।

फिर भी विस्तार से बता, फरीद ने कहा।

अब विस्तार से, उसने कहा, क्या बताना! पहले यह कि मारे गए। बहुत विचार उठे मन में कि कैसे बचूं, कैसे निकलूं? फिर धीरे-धीरे विचार भी खो गए। फिर तो एक ही सवाल रहा कि किसी तरह बाहर निकल आऊं। फिर वह भी खो गया। फिर तो भाव ही रह गया बाहर निकलने का, विचार भी नहीं।

बस, फरीद ने कहा, तू समझ गया। आदमी होशियार है। तू उत्तर पा गया। जिस दिन परमात्मा को पाने का भाव ही रह जाएगा--शब्द नहीं, विचार नहीं--उस दिन मिल जाएगा। और अगर भूल जाए कभी भी, फिर आ जाना। मगर उत्तर मैं हमेशा नदी में देता हूं। ऐसे कम ही लोग आते हैं, कभी-कभी आते हैं। जो एक दफा

आता है दुबारा नहीं आता। या तो उत्तर मिल ही जाता है उसको या फिर वह उत्तर की तलाश ही छोड़ देता है। तू जब भी चाहे हम हाजिर हैं।

मैं कौन हूं, यह नहीं दोहराना है। मैं कौन हूं, यह भाव रह जाए। बस भाव! भाव सघन होता जाए। संसार भी छूट जाएगा दूर, मन भी छूट जाएगा दूर। और तब उसी भाव के मध्य में दीया जलेगा। उसी भाव के मध्य में शाश्वत ज्योति जलेगी--बिन बाती बिन तेल! उसे सुमरण कहते हैं।

इक सुमरण सामूं करो...

बस उस दीये के सामने हो जाओ, आमने-सामने हो जाओ।

... जद पड़सी लाधा।

फिर लाभ ही लाभ है। फिर संपदा ही संपदा है। फिर साम्राज्य ही साम्राज्य है। फिर तुम सम्राट हो; अभी तुम भिखारी हो। फिर तुम मालिक हो; अभी तुम गुलाम हो।

बोया था आम जो, बबूल हो गया
सोने-सा सपना था, धूल हो गया!
बाग में गुलाब
कांपने लगा
बेला पर काली छाया पड़ी
चंपे की टूट गईं टहनियां
सूख गईं
सोनजुही खड़ी-खड़ी
सारा मौसम ही प्रतिकूल हो गया!
दिग्गज आपस में
टकरा गए
सिहर उठा सारा वातावरण
असमय ही विग्रह के ज्वार उठे
मुश्किल है
सागर का संतरण
किश्ती से गायब मस्तूल हो गया!
गांव-गांव जाकर
बांटे गए
आखिर उन वादों का क्या हुआ?
घर-आंगन जगमग करने वाले
निश्चयी इरादों का
क्या हुआ?
हर कोई खुद में मशगूल हो गया!

बस यह खुद, यह खुदी खुदा को अटकाए है।

हर कोई खुद में मशगूल हो गया!
किश्ती से गायब मस्तूल हो गया!
सारा मौसम ही प्रतिकूल हो गया!
बोया था आम, बबूल हो गया
सोने-सा सपना था, धूल हो गया!

यह जिंदगी स्वर्ण की हो सकती है; धूल हुई जा रही है! फूल हो सकती है; धूल हुई जा रही है! आम हो सकती है; बबूल हुई जा रही है! नाव तो डूबेगी, क्योंकि मस्तूल खो गया है। नाव तो डूबेगी, क्योंकि तुम्हारा स्मरण ही, आत्म-स्मरण ही खो गया है। वही मस्तूल है। वही पतवार है। वही उस पार ले जाने का साधन है।

अलख पुरी अलगी रही, ओखी घाटी बीच।

वह जो परमात्मा का नगर है, दूर का दूर रह गया।

... ओखी घाटी बीच।

और बीच में भयंकर घाटी बन गई।

आगैं कूंकर जाइए, पग पग मांगैं रीच।

और आगे कैसे जाएं? एक-एक पग पर प्रमाणपत्र मांगा जाता है पात्रता का।

अलख पुरी अलगी रही...

दूर ही रही उस अलख की नगरी, उस परमात्मा का देश। और बीच में बन गई एक बड़ी घाटी--जिसका कोई सेतु नहीं बनता; जिसको पार करने जाओ तो पग-पग पर पात्रता का प्रमाणपत्र मांगा जाता है।

कौन सी पात्रता? एक ही पात्रता है परमात्मा के मार्ग पर--शून्य की, समाधि की, ध्यान की, स्मरण की।

प्रेम कटारी तन बहे, ज्ञान सेल का घाव।

प्रेम की कटारी को छिद जाने दो। प्रार्थना की कटारी को छिद जाने दो। बोध का, ज्ञान का, ध्यान का भाला प्राणों में उतर जाने दो।

सनमुख जूझैं सूरवां, से लोपैं दरियाव।

अगर हो हिम्मतवर, अगर शूरवीर हो, अगर शूरमा हो, तो जूझो! भागो मत। भगोड़े मत बनो। जीवन की समस्याओं से जूझो। तो यह संसार-सागर को पार करना कठिन नहीं है। यह संसार-सागर पार हुआ जा सकता है। और जूझना है तो स्मरण को जगाना होगा। जूझना है तो साहस, जोखम... जीवन को दांव पर लगाना होगा।

मत दुखी हो मुक्ति की आकांक्षाओं,
क्योंकि मेरा धैर्य तो हारा नहीं है।

जी रहे हैं और हम जीना सिखाते,
दर्द पीकर दर्द को पीना सिखाते,
क्या हमारी राह में रोड़े अड़ेंगे

जब कि रोड़ों को स्वयं ठोकर लगाते,

जो स्वयं के ताप से ऊपर चढ़ेगा,
वह अडिग संकल्प है पारा नहीं है।

आज तक हमने उठाया है गिरों को,
और अपना कर चले हैं सहचरों को,
सामने जब पर्वतों ने राह रोकी
कर दिया तब चूर ऐसे पत्थरों को,

शौर्य की उत्तालता क्यों देखते हो,
सिंधु है यह सूखती धारा नहीं है।
गीत में जो लय न बांधे छंद कैसा,
एकता लाए न वह संबंध कैसा,
जन्म से स्वाधीनता पर स्वत्व सबका
व्यक्ति पर संगीन का प्रतिबंध कैसा,

कोकिला उन्मुक्त गाती है विपिन में,
स्वर-लहरियों को कहीं कारा नहीं है।

लोक में आलोक ही करता रहेगा,
युद्ध में तमतोम को हरता रहेगा,
है मनुजता की जहां भी मांग सूनी,
उस जगह आदर्श को भरता रहेगा,
सूर्य तो सन्मुख उदय लेकर चला है,
यह अमावस से घिरा तारा नहीं है।

सूर्य बनो--स्मरण के सूर्य, सुरति के सूर्य! जागरण के दीये बनो।

सूर्य तो सन्मुख उदय लेकर चला है,
यह अमावस से घिरा तारा नहीं है।

कोकिला उन्मुक्त गाती है विपिन में,
स्वर-लहरियों को कहीं कारा नहीं है।

शौर्य की उत्तालता क्यों देखते हो,
सिंधु है यह सूखती धारा नहीं है।

जो स्वयं के ताप से ऊपर चढ़ेगा,
वह अडिग संकल्प है पारा नहीं है।

मत दुखी हो मुक्ति की आकांक्षाओं,
क्योंकि मेरा धैर्य तो हारा नहीं है।

हारो मत! धीरज को छोड़ो मत! अडिग अनंत धैर्य चाहिए, तो ही परमात्मा की परम संपदा उपलब्ध होती है।

लाल के इन वचनों पर खूब ध्यान देना, खूब मनन करना। पर मनन पर ही रुक न जाना। ये वचन साधन बनने चाहिए। ये वचन निदिध्यासन बनने चाहिए। ये वचन जैसा उन्होंने कहाः

प्रेम-कटारी तन बहे...

छिद जाएं प्रेम की कटारी की तरह।

... ज्ञान सेल का घाव।

ये वचन भाले की तरह प्राणों में उतर जाएं।

सनमुख जुझैं सूरवां, से लोपैं दरियाव।

जुझो! यह संसार सागर विलीन हो जाता है। विलीन हुआ है। अगर बुद्ध का हुआ, महावीर का, कृष्ण का, मोहम्मद का, कबीर का, लाल का--तो तुम्हारा भी होगा। तुम्हारी भी उतनी ही क्षमता है जितनी किसी और बुद्ध की। भेद है तो इतना कि तुमने अपनी क्षमता को पुकारा नहीं। भेद है तो इतना कि तुम सोए पड़े हो और वे जाग गए हैं। बस इससे ज्यादा भेद नहीं है।

जगाओ अपने को! बहुत हो चुके ये सपने--धन के, दौलत के, व्यर्थ की आपाधापी के। अब छोड़ो इन सपनों को।

यह महलों, यह तख्तों, यह ताजों की दुनिया
यह इन्सां के दुश्मन समाजों की दुनिया
यह दौलत के भूखे रिवाजों कि दुनिया
यह दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है!

आज इतना ही।